राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक—पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य

सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर)

ग्रन्थाङ्क ७५

जाचीक जीवरण कृत

प्रताप-रासो



प्र का श क

राजस्थान राज्य संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR.

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक—पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य

(सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर)

ग्रन्थाङ्क ७५

जाँचीक जीवण कृत

प्रताप-रासो

प्र का श क

राजस्थान राज्य संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR.

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिल भारतीय तथा विशेषतः राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषानिबद्ध
विविध वाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावलि

प्रधान सम्पादक

पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य

सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर;
ऑनरेरि मेम्बर ऑफ जर्मन ओरिएण्टल सोसाइटी, जर्मनी;
निवृत्त सम्मान्य नियामक (ऑनरेरि डायरेक्टर),
भारतीय विद्याभवन, बम्बई; प्रधान सम्पादक,
सिंघी जैन ग्रन्थमाला, इत्यादि ।

ग्रन्थाङ्क ७५

जाचीक जीवण कृत

प्रताप-रासो

प्रकाशक

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

जाचीक जीवण कृत

प्रताप-रासो

सम्पादक

डॉ० मोतीलाल गुप्त, एम०ए०, पी-एच०डी०,
हिन्दी विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर.

प्रकाशनकर्त्ता

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

विक्रमाब्द २०२१ प्रथमावृत्ति १०००	भारतराष्ट्रीय शकाब्द १८८५	ख्रिस्ताब्द १९६५ मूल्य रु० ६.७५

मुद्रक। जगदीशचन्द्र स्वर्णकार, अजन्ता प्रिण्टर्स, जोधपुर.

PRATAPA-RASO
OF
JACHIKA JIVANA

EDITED

(with a linguistic study of the text, historical and literary notes, appendices, variant readings etc.)

BY

Dr. MOTILAL GUPTA, M.A., Ph.D.
Hindi Deptt.,
Jodhpur University, Jodhpur.

PUBLISHED
under the orders of the Government of Rajasthan

BY

The Director, Rajasthan Oriental Research Institute,
JODHPUR (RAJASTHAN).

V.S. 2021] *Price : Rs. 6.75* 1965 A.D.

विषय-सूची

संचालकीय वक्तव्य

राजस्थान–पुरातन–ग्रन्थमाला के अन्तर्गत अब तक संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, प्राचीन राजस्थानी, व्रज, हिन्दी आदि भाषाओं में लिखित पुरातन और अप्रकाशित वैदिक, छन्द-शास्त्र, ज्योतिष, न्याय, व्याकरण, स्तुति-स्तोत्रादि, साहित्य, रसालंकार, काव्यनाटक, चम्पू, सुभाषित, कोश, रत्नपरीक्षादि, ख्यातवार्तादि, भक्ति, शोध-विवरण एवं प्रबन्धादि विषयक अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। भारत में ही नहीं, वरन् विदेश में भी इस ग्रन्थमाला का समादर हुआ है और वहाँ के अनेक नियतकालिक पत्र-पत्रिकाओं में इन ग्रन्थों की समुचित समीक्षा की गई है। ग्रन्थों के प्रकाशन में और सम्पादन में हमारा लक्ष्य सम्बद्ध विषयों के अधिकारी विद्वानों का सहयोग प्राप्त करने का रहा है।

ग्रन्थमाला के संख्यांक ७५ के रूप में प्रकाशित हो रहे प्रस्तुत जाचीक जीवण कृत 'प्रताप-रासो' की एक निजी प्रति प्रतिष्ठान के तत्कालीन कार्यकर्ता श्री रामानन्द सारस्वत ने हमें सन् १९५६-५७ में दिखाई थी। भूतपूर्व अलवर राज्य के इतिहास से सम्बद्ध जान कर उसी समय हमने इसकी एक प्रतिलिपि तैयार करा ली थी और उसके संशोधन व मीलान का कार्य भी आरम्भ करा दिया था। बाद में, जब डॉ० मोतीलालजी गुप्त का 'मत्स्य-प्रदेश की हिन्दी-साहित्य को देन' नामक प्रबन्ध छप रहा था, तो उसमें भी इस कृति का उल्लेख देखने में आया और प्रसंगोपात्त चर्चा हुई। डॉ० गुप्तजी ने इस ग्रन्थ के सम्पादन के लिए जब रुचि एवं उत्सुकता दिखाई, तो हमने यह कार्य इन्हीं के द्वारा सम्पन्न कराना निश्चित किया।

प्रस्तुत कृति कई प्रकार से महत्त्वपूर्ण है। राज्याश्रित कवियों की कृतियाँ, प्रायः सत्य का उल्लंघन करती देखी गई हैं। इतिहास की दृष्टि से उनका उतना मूल्य नहीं होता। परन्तु, विद्वान् सम्पादक द्वारा लिखित प्रस्तावना में दी गई सामग्री के आधार पर स्पष्ट है कि इस पुस्तक का ऐतिहासिक मूल्य भी कम नहीं है। इसमें दिए गए तथ्य, घटनाएँ, तिथियाँ, व्यक्तियों के नाम आदि पूरी तरह इतिहास से मेल खाते हैं। राजस्थान के हस्तलिखित साहित्य में ऐसी अनेक कृतियाँ हैं और हमारा अनुमान है कि यदि उनका वास्तविक रूप में अनुशीलन

किया जाय, तो यह कार्य एक प्रामाणिक इतिहास की तैयारी में सहायक और उपयोगी हो सकता है। सम्पादक महोदय ने पुस्तक में वर्णित परिवारों के मूल दस्तावेजों, परवानों आदि को भी हल्दिया परिवार के उत्तराधिकारियों से प्राप्त करके उपयोग किया है। साथ ही भरतपुर, अलवर और जयपुर से सम्बन्ध रखने वाली अप्रकाशित ऐतिहासिक सामग्री का भी अवलोकन किया है।

सम्पादकजी का ध्यान पुस्तक में प्रयुक्त भाषा पर विशेष रूप से रहा है। एक प्रकार से प्रस्तावना का बहुत बड़ा अंश 'प्रताप-रासो' का भाषाविषयक अध्ययन ही है। रचनाओं का अनुशीलन भाषा के अध्ययन में बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। सम्पादकजी ने इस विषय को स्पष्ट करने के लिए जो प्रयास किया है, वह उनकी भाषाविषयक गहरी जानकारी का परिचायक है। साथ ही, ध्वनि-तत्व तथा रूप-तत्व का भी उपयुक्त रूप से विचार किया गया है, जो प्रस्तावना में सम्मिलित किए गए हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, प्रतिष्ठान द्वारा प्राप्त 'प्रताप-रासो' की केवल दो ही प्रतियों के आधार पर पाठ-सम्पादन का कार्य हुआ है। अनेक पाद-टिप्पणियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि कार्य काफी परिश्रम से किया गया है। यदि कुछ अधिक प्रतियाँ प्राप्त हो जातीं, तो जो पाठ संदिग्ध-सा मालूम होता है और अर्थ-ग्रहण में भी कठिनाई उपस्थित होती है, वह न होती। पुस्तक की प्रामाणिकता को सुरक्षित रखने के अभिप्राय से कल्पना के आधार पर पाठ प्रस्तुत करने की चेष्टा नहीं की गई है। 'प्रताप-रासो' के साथ 'लछिमनगढ़-रासो' भी दे दिया गया है यह एक सम्बन्धित कृति है और घटनाओं के मीलान की दृष्टि से उपयोगी है।

सब मिलाकर यह पुस्तक भाषा और इतिहास सम्बन्धी उपयोगी जानकारी देने वाली है। सम्पादन में अपने सत्प्रयास के लिए सम्पादक महोदय धन्यवादार्ह हैं। हमें आशा है कि पुरातन-ग्रन्थमाला के पाठकों को इस कृति से कुछ विशिष्ट सामग्री प्राप्त हो सकेगी।

—मुनि जिनविजय

विजयादशमी,

संवत् २०२१.



चरित्र नायक महाराव प्रतापसिंहजी
(वि० संवत् १८१३-१८४७)

(राजस्थान राजकीय संग्रहालय, अलवर से प्राप्त एक प्राचीन चित्र)

सम्पादकीय प्रस्तावना

अब से लगभग आठ वर्ष पूर्व मैंने मत्स्य प्रदेश[१] (अलवर, भरतपुर, धौलपुर तथा करौली की भूतपूर्व रियासतों[२]) के हस्तलिखित ग्रन्थों का अनुशीलन किया था। मेरे शोध का विषय था 'मत्स्य प्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन'[३]—इसी प्रसंग में इस प्रदेश के साहित्य का अनुसंधान आवश्यक था। इस प्रदेश का प्रकाशित साहित्य बहुत सीमित है, किन्तु कृतियों के जो हस्तलिखित रूप उपलब्ध होते हैं, वे वास्तव में मूल्यवान हैं।[४,५,६] इस प्रदेश की साहित्यकता यथेष्ट रूप में जागृत रही और राजाओं द्वारा भी कवियों तथा लिपिकारों को समुचित सम्मान प्रदान किया गया।[७,८] प्राप्य हस्तलिखित पुस्तकों में से दो महत्त्वपूर्ण वीर-काव्य उपलब्ध हुए, जिनमें से एक से हिन्दी संसार परिचित है। इस काव्य का नाम है "सुजान चरित्र", जो प्रकाशित हो चुका है, और जिसमें भरतपुर के राजा सूरजमल के शौर्य, पराक्रम तथा साहसिक कार्यों का काव्यमय विवरण है।[९,१०] यह ग्रन्थ प्रकाशित अवश्य हो चुका है, किन्तु इस ओर अभी तक विद्वानों का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है और इस ग्रन्थ-रत्न का विधिवत् अध्ययन किसी जिज्ञासु की अपेक्षा करता

---

१. मत्स्य प्रदेश का विश्लेषणात्मक अध्ययन, देखें मेरी पुस्तक—"मत्स्य प्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन" (प्रकाशित राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर)।

२. स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त इन चारों रियासतों का एक संघ बना, जो कालान्तर में वृहद् राजस्थान में विलीन हो गया।

३. राजस्थान विश्वविद्यालय से सन् १९५५ में पी० एच० डी० के लिए स्वीकृत।

४. इस प्रसंग में देखें मेरा लेख—"राजस्थान के पूर्वी अंचल की काव्य-साधना" (प्रकाशित, सृजन-वेला)।

५. अलवर की "अरावली" पत्रिका का विशेषांक—"अलवर राज्य की काव्य-साधना"।

६. भरतपुर-राज्य से प्रकाशित "व्रजपत्र" की कतिपय प्रतियों के अंतर्गत "भरतपुर के कवियों का विवरण"।

७ देखें—महेशचन्द्र कृत "जय विनोद"।

८. हिन्दी साहित्य समिति, भरतपुर द्वारा प्रकाशित—"भरतपुर-कवि-कुसुमांजलि"।

९. दुर्भाग्य से यह ग्रंथ अधूरा ही है।

१०. "सुजान संवत" (उदयराम कृत) पूर्ण ग्रन्थ है।

है।[1] अलवर राज्य के संस्थापक रावराजा प्रतापसिंह[2] के शौर्य का वर्णन जाचीक जीवण[3] नाम के एक कवि ने प्रतापरासो मे किया है। इस पुस्तक का प्रथम दर्शन मुझे 'अलवर म्यूजियम'[4] में हुआ। मैं इस पुस्तक से वहुत प्रभाविन हुआ था और तब भो मैंने इस पुस्तक को इतना ही महत्वपूर्ण माना था, जितना सुजान-चरित्र को। काव्य की दृष्टि से 'प्रताप रासो' 'सुजान चरित्र' से हलका पड़ सकता है, किन्तु ऐतिहासिक तथ्यों के विचार से यह ग्रन्थ किसी भी प्रकार से कम तथ्यपूर्ण नहीं। मत्स्य प्रदेश से संबंधित अपने कई लेखों में मैंने इस ग्रन्थ का प्रासंगिक विवरण अवश्य दिया, किन्तु कोई अच्छी टिप्पणी नहीं लिखी।

इधर जोधपुर आने पर मेरा संपर्क राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान से स्थापित हुआ, जो वहाँ के अधिकारियों की कृपा से निरन्तर घनिष्ट होता चला गया। इस ओर मेरी रुचि देख कर इस ग्रन्थ के संपादन का कार्य मुझे दिया गया। यह कार्य स्वीकार करते समय मुझे वहुत प्रसन्नता हुई। प्रथम तो मैं इस ग्रन्थ को देखकर पहले ही प्रभावित हो चुका था, दूसरे इसकी भाषा से मेरा व्यावहारिक परिचय है—साथ ही इसकी विषय-वस्तु को मैं कई रूपों में देख चुका हूँ।[5] भरतपुर, अलवर और जयपुर तीनों राज्यों को अपने अंचल में समेटे हुए यह काव्य उस परिवार का भी उल्लेख करता है, जिसका अध्ययन मैंने कुछ विस्तार के साथ किया है।[6]

पुस्तक को लेते समय मैंने संबधित अधिकारियों को बताया था कि मैं इस पुस्तक को भाषा-विश्लेपण की दृष्टि से देखना चाहता हूँ।[7] साहित्यिक अथवा

---

१. कुछ ही दिन पहले देहली विश्वविद्यालय के एक शोध-छात्र का पत्र मिला था, जिससे विदित होता है कि इस ओर कुछ प्रयत्न किया जा रहा है।

२. प्रतापसिंहजी का समय सन् १७५६ से १७९० ई० है।

३. जाचिक जीवण, जाचिग जीवण, जाचिक जीवन कई प्रकार से नाम लिखा मिलता है। 'जाचीक' का सम्बन्ध, संभवतः 'याचक' शब्द से हो और ये काव्यकार 'राणा ढोलिया' रहे हों।

४. अब हस्तलिखित ग्रंथों का विभाग राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के अंतर्गत है।

५. प्रतापरासो का सम्बन्ध तीन राज्यों से है (१) जयपुर, (२) अलवर तथा (३) भरतपुर। इसका सम्बन्ध अलवर-जयपुर के हल्दिया वंश से है जिस पर मैंने कुछ शोधपूर्ण सामग्री एकत्र की है। हल्दिय वंश खण्डेलवाल वैश्यों के अन्तर्गत है—देखें मेरी पुस्तक "खंडेलवाल वैश्य-जाति का इतिहास" (खंडेलवाल जाग्रति पत्रिका में अंशत: प्रकाशित), "खंडेलवाल जाति की उत्पत्ति"– इसी पत्रिका में एक स्वतन्त्र लेख।

६. अधिक जानकारी के लिए जयपुर के ताजीमी सरदार 'राव बहादुर नृसिंहदासजी हल्दिया' से संपर्क-साधन उपयोगी हो सकता है।

७ इस पद्धति की मूल प्रेरणा मुझे एडिनबरा के श्री हैलीडे से मिली।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण के साथ-साथ भाषा-विषयक दृष्टिकोण भी बहुत आवश्यक है और आजकल इस प्रकार के मूल्यवान अध्ययन प्रस्तुत किये जा रहे हैं।[१] विदेशी विद्वानों द्वारा हर प्रकार के विस्तृत विवरणात्मक ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं, जिनमें भाषा-विज्ञान के कुछ सिद्धांतों का विधिवत् प्रतिपादन किया जाता है।[२] अपनी सीमाओं के कारण मैं तो इस कृति पर व्याकरणात्मक दृष्टि से ही कुछ विचार कर सकूँगा, किन्तु मेरा दृष्टिकोण व्याकरण का विवरणात्मक पक्ष होगा। इसका अभिप्राय 'प्रताप-रासो' की भाषा का एक संक्षिप्त विवरण देना होगा, जिससे उस समय, उस स्थान पर काव्य में प्रयुक्त भाषा का सामान्य परिचय भी मिल सकेगा।

भाषा-विषयक विश्लेषण मात्र, संभवतः, सामान्य पाठक को रुचिकर नहीं होता, अतएव मैंने इस विश्लेषण के साथ ऐतिहासिक बातों का भी उल्लेख कर दिया है। मैं इस पुस्तक की ऐतिहासिकता को भी बहुत प्रामाणिक मानता हूँ। इसमें वर्णित घटनायें, व्यक्ति, वस्तु, विवरण, संवत् सभी इतिहास द्वारा प्रमाणित हो चुके हैं और उस दृष्टि से यह कृति बहुत मूल्यवान है।[३] राजस्थान की अनेक कृतियों के बारे में यह धारणा रही है कि इनमें दिए गए प्रसंग और वर्णन इतिहास-सम्मत नहीं हैं।[४] ये दोनों ग्रन्थ—"सुजान-चरित्र" और "प्रताप रासो" इस सामान्य धारणा के अपवाद हैं।[५] जैसा कि निवेदन किया जा चुका है—'प्रतापरासो' से अभी तक विद्वत्समाज परिचित नहीं है, अन्यथा इसका

---

१. देखें, हैलीडे का लिखा 'सीकरेट हिस्ट्री ऑव दि मंगोल्स—भाषा विज्ञान के सुप्रसिद्ध विद्वान (अब स्वर्गीय) श्री फर्थ की देखरेख में प्रस्तुत तथा लंदन की भाषा-विज्ञान-सभा द्वारा प्रकाशित।

२. उदाहरण के लिए 'स्कूल ऑव ओरियंटल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज' के प्रोफेसर फर्थ का 'लंदन स्कूल ऑव लिंग्विस्टिक्स'—जिसके वर्त्तमान विद्वान एलन, रोबिन्स, ह्विटली, शार्प आदि हैं।

३. संबंधित राज्यों के उपलब्ध इतिहास, ऐतिहासिक काव्य, लेख, परवाने आदि से मिलान कर लेने के उपरान्त ये पंक्तियां लिखी जा रही हैं।

४. उदाहरणार्थ वीरगाथा काल का संपूर्ण काव्य अति संदिग्ध और अप्रामाणिक समझा जाता है।

५. देखें, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास पर प्रभाव'—शुकदेव बिहारी मिश्र (पटना यूनि० भाषणमाला) उस पुस्तक का उद्धरण इस प्रकार है—"सूदन का वर्णन सन् १७४५-१७५३ का है बड़ा सजीव। इनका साहित्य बुरा नहीं है, परन्तु ग्रन्थ का ऐतिहासिक मूल्य बहुत बढ़िया है, क्योंकि कवि ने उस काल का सजीव चित्र सामने उपस्थित किया है। सन् १७३९ में नादिरशाह ने दिल्ली पर अधिकार करके लूट एवं कत्लेआम किया था। बादशाह दिल्ली का बल १७१७ से ही मृत-प्रायः था और नादिरशाही आक्रमण से और

[अगले पृष्ठ पर]

ऐतिहासिकता भी 'सुजान चरित्र' के साथ उसो श्रद्धा और प्रामाणिकता से प्रतिपादित होती। प्रतापरासो की ऐतिहासिकता निर्विवाद है और किसी भी दृष्टि से पक्षपात का दर्शन नहीं होता। उपयुक्त प्रशंसा, भर्त्सना आदि स्थान-स्थान पर मिलते हैं। इस पुस्तक में अनेक पुरुषों के साहसिक कार्यों का वर्णन है। जैसे—

१. जयपुर नरेश : (१) माधवसिंह, (२) पृथ्वीसिंह, (३) प्रतापसिंह
२. भरतपुर नरेश : (१) सूरजमल, (२) जवाहरसिंह।
३. अलवर नरेश : (१) प्रतापसिंह, (२) बख्तावरसिंहजी के युवराज काल का किंचित् प्रसंग।
४. मुग़ल सेनापति : (१) नजफखां, (२) कायमखां, (३) अहमदानी।
५. पटेल सिंधिया :
६. हल्दिया बन्धु : (१) खुशालीराम, (२) दौलतराम, (३) नंदराम।

किसी भी व्यक्ति के प्रति कवि का पक्षपात दृष्टिगत नहीं होता। कवि को जितना उत्साह अलवर की वीर-गाथाओं के उल्लेख में होता है,[1] उतना ही किसी अन्य वीर के साहसिक कार्यों में[2] भी। यह एक ऐसा गुण है, जिसका कवियों में तो प्रायः अभाव ही रहता है और विशेषकर उन कवियों में, जिन्हें राज्याश्रय प्राप्त होता है।[3] जाचीक जीवण ने अलवर के वीरों को भी आवश्यकता से अधिक महत्त्व

भी ध्वस्त हो गया। पलासी का युद्ध १७५७ में हुआ और पानीपत का तीसरा युद्ध १७६१ में। अतएव उस काल तक अंग्रेजों की शक्ति नहीं चढ़ी थी और न महाराष्ट्रों की घटी थी। ऐसे समय का सजीव चित्र उपस्थित करने में सूदन कवि धन्यवादार्थ हैं। सूदन तथा ऐसे अन्य कवियों ने हिन्दू शूरवीरों का सजीव वर्णन करके उस काल के हिन्दू समाज की सामरिक शक्ति एवं उत्साह का वर्णन किया। इस प्रकार भारतीय इतिहास के एक अंग का इन लोगों ने न केवल चित्र खींचा, वरन् हिन्दू शक्ति के अथक उत्साहवर्द्धन द्वारा इतिहास पर भी भारी प्रभाव डाला।"

१. विशेष कर प्रतापसिंहजी के साहसिक कार्यों में। पुस्तक के नायक भी प्रतापसिंह ही हैं।

२. उदाहरण के लिए जयपुर-नरेश माधोसिंह, भरतपुर-नरेश सूरजमल, हल्दिया बंधु आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

३ जाचीक जीवण निश्चित रूप से एक आश्रित कवि था। उसने राज्याज्ञा प्राप्त करने पर ही इस ग्रन्थ की रचना की थी। ग्रन्थ के आरंभ में कवि ने स्पष्ट लिखा है :

तास (प्रतापसिंह) तात के बंधु कवर मंगल व्रत धारिय।
जिन दिनो बल हुकम कहो कवि ग्रन्थ उचारिय॥

परन्तु कवि ने अपनी तथ्य-कथन-बुद्धि को राज्याश्रय के बदले बेचा नहीं।

नहीं दिया। स्वयं मंगलसिंहजी का भी संयत रूप में ही चित्रण किया गया है। मंगलसिंहजी इस ग्रंथ का निर्माण कराने वाले थे।

इस स्थान पर मैं एक बात और कहना चाहता हूँ। खंडेलवाल वैश्यों में 'हल्दिया' नाम का एक गोत्र होता है। आज भी इस गोत्र के परिवार अलवर तथा जयपुर में निवास करते हैं। प्रतापरासो में इसी परिवार के तीन भाई[1]—खुशालीराम[2], नंदराम और दौलतराम पर बहुत बल दिया गया है। इन्हें मुग़लकाल के 'किंग मेकर्स' तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह अवश्य है कि जयपुर तथा अलवर दोनों राज्यों में इनकी धाक थी। भरतपुर का जाट राजा भी इन्हें बहुत मानता था[3] तथा दिल्ली का सम्राट भी इनकी वीरता से प्रभावित था और उसने कई बार इस बात की चेष्टा की कि इन भाइयों का शौर्य उसे प्राप्त हो जाय।[4] 'प्रतापरासो' का बहुत बड़ा भाग इन हल्दिया बन्धुओं की गाथा है। उसे इनकी वीर गाथा तो नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कभी ये जयपुर के साथ होते, कभी अलवर के साथ और कभी नजफखाँ के साथ बादशाही दल में। इतना सब-कुछ होने पर भी सब-कोई इन्हें अपने पक्ष में करना चाहते थे। कहीं-कहीं तो ऐसा मालूम होता है—राज्यों के पारस्परिक संबंध भी इन्हीं के आधार पर स्थापित होते थे।[5] न जाने इन 'तीन भाइयों' में कौनसी शक्ति थी कि प्रत्येक शासक इन्हें अपनी ओर रखना चाहता था। वैसे वर्ण से तो ये लोग वैश्य थे, किन्तु किसी भी क्षत्रिय अथवा राजपूत के गुणों से समलंकृत ये तीनों भाई राज्यों को बनाना-बिगड़ाना अपने बाएँ हाथ का खेल समझते थे। कई बार तो मेरा विचार हुआ कि पुस्तक का नाम "प्रतापरासो" न रह कर 'हल्दिया-(बंधु) रासो'

---

१. छाजूराम हल्दिया के पुत्र।

२. ये खुशालीराम बोहरे से अलग हैं। खुशालीराम बोहरा ब्राह्मण थे इस पुस्तक के खुशालीराम खंडेलवाल वैश्य हैं।

३. प्रतापसिंहजी के भरतपुर राज्य में पहुँचने पर हल्दिया मंत्री पर ही विश्वास करके भरतपुर-नरेश ने पूछा :

"मंत्री बुलाय महाराज कैं, यौ पूछी व्रजराज।
उमराव राव आमेरि कै, भेजे हैं किह काज॥"

४. छल-बल करके बादशाह ने हल्दिया बंधु को अपनी तरफ कर भी लिया था, और बादशाही सेना के साथ इन लोगों ने कई स्थानों पर अपनी वीरता दिखाई। वर्णन अन्यत्र देखें।

५. एक बार तो केवल इन लोगों के कारण ही अलवर तथा जयपुर में घमासान युद्ध हुआ।

होता, तो विषय के अधिक निकट होता। इन बंधुओं के बारे में कई स्थानों पर सामग्री उपलब्ध हुई, जिनमें इनके ही वंशजों द्वारा प्रकाशित लेख[1] आदि अधिक मूल्यवान माने जाने चाहिएँ।[2] यह सम्पूर्ण प्रकाशित सामग्री उन लेखों, परवानों तथा पट्टों के आधार पर है, जो इनके वंशजों के अधिकार में आज भी हैं। अनेक वर्षों पूर्व जयपुर के ताजीमी सरदार रावबहादुर नरसिंहदासजी हल्दिया ने अपने पूर्वजों में से कुछ पर स्वतंत्र लेख[3] प्रकाशित कराये थे और उनका कहना है कि उनके पास संबंधित सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। उनका तो यह भी कहना है कि इस सामग्री के आधार पर जयपुर तथा अलवर का विश्वसनीय इतिहास प्रस्तुत किया जा सकता है। मैं इस सामग्री को प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा हूँ और यदि यह सामग्री वास्तव में इतनी महत्त्वपूर्ण हुई, जितना इसके वर्त्तमान अधिकारी इसे बताते हैं, तो इस विषय में रुचि रखने वाले पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हुए मुझे प्रसन्नता होगी।

'प्रताप-रासो' के अध्ययन का आधार

'प्रतापरासो' का अध्ययन करने में मुझे इसकी दो प्रतियों से सहायता मिली—

(१) अलवर म्यूज़ियम की प्रति—जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है और जो मूल रूप में मेरे सामने अब भी उपस्थित है। इस हस्तलिखित प्रति का विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें।

(२) श्री रामानन्दजी की प्रति—जिससे नकल कराई गई प्रति मेरे सामने है। मूल प्रति, कुछ विचित्र कारणों से, नहीं मिल सकी, किन्तु इसकी हूबहू नकल उपलब्ध है। पुस्तक की नकल करते समय पाठ की वास्तविकता की पूर्ण रक्षा

---

१. कमच्छा, बनारस निवासी एक विद्वान् श्री दामोदरदासजी खंडेलवाल ने हल्दिया वंश की काफी छान-बीन की। उनके द्वारा प्रस्तुत युद्ध-विषयक कुछ नोट मेरे पास हैं, जिनके आधार पर इन पंक्तियों के लेखक ने एक लेख भी प्रकाशित कराया है। उन युद्धों की तालिका श्री दामोदरदासजी के अनुसंधान के आधार पर प्रस्तुत हो चुकी है।

२. नीचे लिखे पत्रों में इनके कुछ लेख प्रकाशित हुए हैं:—(१) खंडेलवाल हितैषी। (२) खंडेलवाल। (३) खंडेलवाल पत्रिका आदि। एक लेख खंडेलवाल जाग्रति के परिचयांक में भी छापा गया है।—"हल्दिया वंश"। मुनि कान्तिसागरजी के पास भी कुछ प्रामाणिक सामग्री मैंने देखी थी।

३ प्रमुख रूप से दो: (१) राव बहादुर नृसिंहदासजी हल्दिया, जयपुर, तथा (२) राव श्री नारायणजी हल्दिया, अलवर।

की गई है और इस विषय के अधिकारी विद्वानों की देखरेख तथा विधिवत् मिलान किए जाने के कारण इस प्रतिलिपि को मैं मूल जैसा ही मानता हूँ।

प्रतिलिपियों के देखने पर स्पष्ट है कि—

(अ) नकल बहुत सावधानी से की गई है।

(आ) दोनों प्रतियाँ (अलवर म्यूज़ियम वाली तथा श्री रामानन्दजी वाली) किसी एक ही मूल प्रति की नकलें हैं।

(इ) पाठ-भेद बहुत कम हैं।

(ई) दोनों प्रतियों के नकल होने में केवल तीन वर्ष का अंतर है।[1]

प्रतापरासो का वस्तु-विषय

जैसा कि पुस्तक के नाम से स्पष्ट है, इसका सम्बन्ध अलवर राज्य के संस्थापक रावराजा प्रतापसिंहजी से है और इस 'रासो' में प्रतापसिंहजी सम्बन्धी जन्म[2] से मरण पर्यन्त[3] घटनाओं का वर्णन है। 'रासो' के नामानुकूल इस पुस्तक में उन्हीं घटनाओं को स्थान दिया गया है, जिन्हें प्रतापसिंहजी के साहसिक कार्यों में सम्मिलित किया जा सकता है। इस काव्य को हम महाकाव्य की संज्ञा तो नहीं दे सकते, क्योंकि इसका रूप, आकार, प्रकार, विवरण, वातावरण, चरित्र-चित्रण आदि कोई भी इस प्रकार का गौरव प्रदान करने में सहायता देते प्रतीत नहीं होते। साथ ही इसे हम खण्ड-काव्य भी नहीं कह सकते, क्योंकि इसमें नायक के जीवन का कोई एक प्रसंग ही नहीं हैं, वरन् उसके जीवन की प्रायः सभी प्रमुख घटनाओं का उल्लेख है—उस समय के राजाओं की प्रमुख जीवन घटनाएँ पारस्परिक विग्रह-संघर्ष के अतिरिक्त और हो भी क्या सकती थीं ? इन बातों को

---

१. अलवर म्यूजियम वाली प्रति—

"इति प्रतापरासो जाचीक जीवण कृत नमो प्रभाव पूर्णंम् मीति फुस वदी ६ संवत् १९०४।"

रामानन्द वाली प्रति –

"इति प्रतापरासो जाचिक जीवण कृत नवमो प्रभाव संपूर्णं। संवत् १९०७ आषाढ़े शुक्ला ६ बुधवासरे लिषितं मिश्र गिरधारी लिषायतं राणौजी श्री मरभटजी आत्म भतीज चिरंजीव वकसराम पठनार्थं ॥ शुभम् भवतु ॥ श्रीरस्तु ॥ श्रीजी ॥

२. (अ) ज दिन न्याय नोवति वजी, उपजे पातिलराव।
कीन मित्र सुषकंद है, दीन सत्रु सिरदाव ॥

(आ) उपजे मोबतसिंह सुत, तप पूरण परताप ॥ (प्रथमो प्रभाव)

३. रावराज यौं वचन कहै, धरौ चरन निज ध्यान।
पहर प्रात बैकुंठ धर, पातिल कियो पयांन ॥ (नवमो प्रभाव)

देखते हुए यदि इस ग्रन्थ को हम सामान्य प्रबन्ध कहें, तो उत्तम रहेगा घटनाएँ निश्चित रूप से क्रमबद्ध हैं, कार्य-क्रम ठीक चलता है, साथ ही पुस्तक के नायक का प्रसंग भी आरम्भ से अन्त तक विद्यमान रहता है।

रस की दृष्टि से इस काव्य को वीर-रस-प्रधान कहना ही उपयुक्त होगा। इसके नाम की सार्थकता को स्वीकार करते हुए इसे 'वीर काव्य' कहा जा सकता है। यह ठीक है कि इस काव्य का समय हिंदी का प्रारम्भिक 'वीर गाथा-काल' नहीं, जिसमें कुछ प्रख्यात 'रासो' नाम से अभिहित ग्रन्थों की रचना हुई।[1] 'प्रतापरासो' का सामान्य वातावरण लगभग उसी प्रकार का है, जैसा इस नाम के अन्य ग्रन्थों का। एक बात और। वीर गाथा काल की सामान्य प्रवृत्तियों का सूक्ष्म परिचय कराते समय लगभग ३० वर्ष पूर्व[2] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने कहा था— 'इस काल की रचनाओं को 'वीर'-प्रधान न कह कर 'श्रृंगार'-प्रधान कहना अधिक उपयुक्त होगा', क्योंकि राजाओं की व्यक्तिगत वीरता का प्रदर्शन तथा उनकी सेनाओं द्वारा प्राप्त विजय किसी और उद्देश्य को न लेकर, महल में सुन्दरियों की संख्या बढ़ाने हेतु होती थी। युद्ध का आरंभ राज-कन्या प्राप्ति के लिए, और समाप्ति विवाह के साथ होती थी। 'प्रताप रासो' इस प्रकार का काव्य नहीं है। अलवर के प्रतापसिंहजी[3] के विवाह का प्रसंग तो आता ही नहीं। हाँ, आमेर-पति प्रतापसिंहजी के विवाह का किंचित वर्णन अवश्य है। परन्तु यह विवाह भी किसी युद्ध के परिणाम-स्वरूप सम्पन्न नहीं हुआ। बीकानेर के राजा ने स्वेच्छा से प्रसन्न होकर वैवाहिक संबंध स्थापित किया—

---

१. हिन्दी साहित्य के इतिहासों में हिन्दी के प्रारम्भिक काल को 'वीर-गाथा काल' भी कहा गया है। इस काल का समय संवत् १०५० से संवत् १३७५ माना जाता है। वीर गाथा काल में अनेक 'रासो' ग्रन्थों की रचनाएँ हुईं, जैसे—

(१) पृथ्वीराज रासो, (२) बीसलदेव रासो, (३) विजयपाल रासो, (४) खुमान रासो और (५) हमीर रासो।

किन्तु ये रासो ग्रन्थ प्रायः प्रक्षिप्त अंशों से परिपूर्ण व अनैतिहासिक बातों से युक्त हैं और इसी कारण इनमें से लगभग सभी बहुत पीछे की रचना माने जाते हैं। 'रासो' नामक इन ग्रन्थों का रचना काल अभी तक विवादग्रस्त है।

२. जब लेखक प्रयाग विश्वविद्यालय में बी० ए० कक्षा का विद्यार्थी था और डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने यह विषय कक्षा में पढ़ाया था।

३. जैसा अन्यत्र संकेत किया जा चुका है—इस समय अलवर तथा आमेर दोनों राज्यों के अधिपतियों का नाम 'प्रतापसिंह' ही था। काव्यकर्त्ताने 'राव' और 'राजा' विशेषण लगाकर इस भ्रमोत्पादक स्थिति को दूर रखने की काफी चेष्टा की है, किन्तु कहीं-कहीं गड़बड़ी हो ही गई है।

दोहा : यों सुनि बीकानेर नृप, गजै आप उर धारि।
पीथल[1] है आमैरिपति, दीजै ताहि कंवारि॥

चौपाई : कनक काम गज बाजि सजाये। नेगी दे नालेर पठाये॥
प्रोहित चालि पयानो कीनो। नृप पीथल सिर टीको दीनो॥

दोहा : ले टीको पीथल नृपति, कीनौ चलन समाज।
व्याहन बीकानेर घर, आमावति के राज॥ आदि

इस वैवाहिक प्रसंग में शौर्य-प्रदर्शन का उद्देश्य चाहे जो भी रहा हो[2], किन्तु शारीरिक वल-प्रदर्शन, शस्त्र-संचालन, सेना-आयोजन और युद्ध-कला के दर्शन स्थान-स्थान पर होते हैं। उस समय का वातावरण और देश की स्थिति ही इस प्रकार की थी कि व्यक्तिगत हितों के लिए ही युद्ध आदि होते थे। राष्ट्रीयता का अभाव था और किसी अति महान् उद्देश्य को लेकर कोई एक राजा अथवा अनेक राजा मिलकर अपनी वीरता, प्रायः, नहीं दिखाते थे। अपने राज्य की रक्षा, उसके विस्तार, शत्रु का बल-क्षय करना आदि ही उनके उद्देश्य होते थे।

संक्षेप में इस पुस्तक का कथानक प्रतापसिंहजी की जीवन-गाथा है। जन्म-काल से लेकर मरण-पर्यंत संपूर्ण जीवन का चित्र उपस्थित करने की चेष्टा की गई है। प्रथम प्रभाव के तीसरे ही छंद में (प्रथम दो छंदों में गणपति आदि की स्तुति[3] करने के उपरान्त) नायक के जन्म का उल्लेख है—"जे दिन न्याय नोवति बजी, उपजे पातिलराव", और अंतिम, नवें, प्रभाव के अंत में नायक का बैकुंठ-प्रयाणं बताया गया है—"पहर प्रात बेकुंठ घर, पातिल कियो पयांन।"

---

१. आमेरपति प्रतापसिंह को 'पीथल', तथा अलवर के राव प्रतापसिंह को 'पातिल' कई स्थानों पर कहा गया है।

२. कभी-कभी छोटे व्यक्तिगत मामलों पर युद्ध हुए—जैसे हल्दिया बंधुओं की मुक्ति-हेतु। इसीलिए कुछ लोग इस शौर्य-प्रदर्शन के उद्देश्य को अधिक श्लाघ्य नहीं मानते।

३. प्रथम छंद दोहा
गवरि पुत्र गणराज कै, प्रथमहि लगुं पाय।
देबी दीनदयाल गुरु, सुभ अक्षर समझाय॥

द्वितीय छंद छप्पय
जय जय गणपति देव देव सेवत सुभकारिय।
नमो शकति नारायण परम गुरु चरण प्रछालिय।
अगम अलेष अपार कौण पावंत पार नर।
अति मति मो अनुसार बुधि तम करण विमलवर॥
कर जोर जुगल विनती करौं ल्यों निवार आग्या लहौं।
निगम सुगम हौं नृपति के कथि प्रतापरासो कहौं॥

संपूर्ण पुस्तक में नौ प्रभाव हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

प्रथम प्रभाव : गणेशजी को नमस्कार करके—'गवरि पुत्र गणराज कै, प्रथमहि लगुं पाय'—ग्रंथ का आरम्भ किया गया है। कवि ने पुस्तक का नाम इस प्रकार दिया है—

'निगम सुगम हों नृपति के कथि 'प्रतापरासौ' कहौं ॥२॥'

पुस्तक लिखने की प्रेरणा कुंवर मंगलसिंह[1] ने दी थी—

'तास तात के बंधु, कवर मंगल व्रतधारिय।
जिन दीनों वल हुकम, कहो कवि ग्रंथ उचारिय॥

रचना-काल और कवि का नाम इस प्रकार हैं—

'अठारंसै सैतीस (सं. १८३७) साष संवत सो व्हैयत।
पोस मास वदि तीज वार विसपत गुरु कहियत॥

पौष कृष्णा ३, वृहस्पतिवार, संवत् १८३७

चौपई छंद दोहा छपै[2] कथि जाचिग जीवन[3] नाम है।
जुगम जोय वरनन करूं जो कूरम कुल ठाम है॥

इसके उपरान्त कवि ने यहाँ के आदि पुरुष का वर्णन किया है—

आदि अजुध्या धाम है, रामचन्द्र अवतार।
लंकापति रावण हन्यो, लई न छिनक अवार॥

कवि का मन 'सीता-बनवास' में अधिक रमा है और लव-कुश की कथा कुछ विस्तार के साथ कही है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि कछवाहा—कुशवाहा-

---

१. मंगलसिंहजी की वीरता का वर्णन कई स्थानों पर आया है। जहाँ भी युद्ध की भीषणता दृष्टिगत होती है, मंगलसिंहजी की वीरता सफलता-प्राप्ति में सहायक प्रतीत होती है। मंगलसिंहजी, प्रतापसिंहजी के 'काका' थे। इसका उल्लेख इस पुस्तक में कई स्थानों पर हुआ है—

(अ) "तास तात के बंधु (उसके पिता के भाई, अर्थात् काका) कवर मंगल व्रत-धारिय।"—(प्रथम प्रभाव)

(आ) "दंगल दल मंगल लरे. काका कन्ह प्रवान।"—(षष्टमो प्रभाव)

वास्तव में मंगलसिंह बड़े वीर, नीतिज्ञ और अपनी आन-बान रखने वाले व्यक्ति थे। उन्हें 'काका कन्ह' कहना सर्वथा उचित है। जैसे पृथ्वीराज के काका कन्ह की वीरता इतिहास-प्रसिद्ध है, उसी प्रकार मंगलसिंह की वीरता, प्रताप के प्रति स्नेह और स्वामि-भक्ति तथा उनकी साहित्य-प्रियता भी उल्लेखनीय है।

२ चौपाई, दोहा, छप्पय का आधिक्य भी है।

३. जाचिग जीवन, जाचीक जीवण, जाचिक जीवण, जाचिग जीवण, आदि कई प्रकार से नाम मिलता है—'जाचीक जीवण' अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। अलवर वाली प्रति के अन्त में भी यही नाम दिया गया है।

का संबंध 'कुश' नाम से ग्रधिक है।[1] कूर्मकुल की एक शाखा काश्मीर में राज करती रही। काश्मीर कुश का ही बसाया हुग्रा कहा गया है—

'कुस बसाय कसमीर ....'

लव-कुश के वर्णनोपरान्त कवि शीघ्र ही कूर्मकुल (कछवाहा कुल) पर ग्रा गए हैं—'सिवर न्रप,' 'नल,' 'ईसैसिंह' (ईशेसिंह) का वर्णन करते हुए काकिलजी का उल्लेख होता है।[1] इनके उपरान्त कालक्रमानुसार हणू(त)जी, जान्हड़ देव (जारिण जन) ग्रौर पजवनजी के नाम ग्राते हैं। फिर मलेसी, बीजल्लराव (देव), राजदेव ग्रौर कील्हण दे (व) के नामों का उल्लेख है। कील्हणदेवजी के पश्चात् कूतिल (कुन्तलजी) उनके पुत्र जोनसी (जोणसीजी), ग्रौर तब उदयकरणजी का नाम ग्राता है।[2] उदयकरणजी वि० सं० १४२३ में ग्रामेर की गद्दी पर बैठे। इनके ग्राठ पुत्र[3] कहे जाते हैं, किन्तु हमारे कविजी ने चार पुत्रों की ही बात कही है—

(ग्र) उदैकरण तिनके भये, पुत्र चत्र परवेस ॥

(ग्रा) सुत चतर भये नृपराज के ठाम नाम गुन वरनिये।

संभव है ये चार—(१) नरसिंह, (२) वरसिंह, (३) बालोजी तथा (४) शिवब्रह्मजी

---

१. ग्रलवर राज्य के इतिहास तथा ग्रनुसंधान-ग्रधिकारी ठाकुर वीरसिंहजी तंवर ने जो कछवाहों का संक्षिप्त इतिहास लिखा है, उसके ग्राधार पर ईशेसिंहजी की वंश-क्रम-संख्या २२९ है ग्रौर काकिलजी की २३२। इस पुस्तक में कछवाहों की वंशावली श्रीनारायण से ग्रारम्भ की गई है। राम ६८ संख्या पर हैं ग्रौर कुश ६९ पर। राम के ज्येष्ठ पुत्र कुश से कछवाहों का संबंधित होना स्वीकार किया गया है ग्रौर उस ग्राधार पर ही कुशवाहा—कछवाहा शब्द सिद्ध किए गए हैं। कुछ लोग 'कछवाहा' को 'कूर्मकुल' से उद्भूत बताते हैं। उनका कहना इस प्रकार है—'इस वंश के २२५ वें राजा सुमित्र निःसंतान स्वर्ग सिधारे। उनके लघु भ्राता कूरम के वंशज होने से कूर्म, कूर्मा ग्रौर कूर्म के सुपुत्र कच्छवजी की ग्रौलाद होने से कछवाहा।'

२ तंवरजी के ग्रनुसार भी नामावलि का यही क्रम है—२२९ ईशेसिंह, २३० सोढ़देव, २३१ दूल्हेराय, २३२ काकिलजी, २३३ हणूजी, २३४ जान्हड़देव, २३५ पजवनजी, २३६ मलेसीजी, २३७ बीजलदेव, २३८ राजदेव, २३९ कील्हणदेव, २४० कुन्तलजी, २४१ जोनसीजी ग्रौर २४२ उदयकरण।

३. उदयकरणजी की तीन रानियाँ थीं—(१) उत्तम दे(वी) गोड़जी, (२) तंवरजी पचरङ्ग देवी (३) निर्वाणजी। कुछ लेखक उत्तम दे के गर्भ से ग्राठों राजकुमारों की बात कहते हैं। कुछ का कहना है कि गोडजी उत्तमदेवी के गर्भ से कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुग्रा। सात पुत्र तंवरजी पचरङ्गदेवी के थे ग्रौर ग्राठवाँ निर्वाणजी का। उत्तमदेवी बड़ी रानी थी, ग्रतः भ्रमवश ग्रथवा उनके सम्मानार्थ, ग्राठों पुत्र उनके ही बताये गये हों। इन ग्राठों पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—(१) वरसिंह, (२) बालोजी (शेखावत क्षत्रिय), (३) मोकलजी, (४) शिवब्रह्मजी (श्योब्रह्मपोता), (५) पातलजी (पातल पोता), (६) नपोजी (सामोद के क्षत्रिय), (७) पीथोजी (पीथावत कछवाहे) ग्रौर (८) नरसिंह, जो उदयकरणजी के पश्चात् ग्रामेर के राजा हुए।

ही अधिक प्रतापशाली हुए हों और कवि ने इन चारों का ही उल्लेख किया हो। कवि का कथन इस प्रकार है—

प्रथम पुत्र नरसिंह नृप आमैरि वषानिय। —(आमेर)
बीयो पुत्र बरसिंह[1] थान मोजाद सुजानिय॥—(मौजमाबाद)
बालो त्रियो सुनाम ठाम अमरसर अषिय। —(अमरसर)
सिव चौथो सिवब्रह्म ठाम नीदरगढ़ दषिय॥—(नीदरगढ़)

यहाँ से जयपुर और अलवर को गद्दियों के पृथक्-पृथक् वर्णन चलते हैं और कवि ने अपने विषय के अनुसार अलवर से संबंधित व्यक्तियों को ही लिया है। राव वरसिंह के पुत्र महीराज हुए और इनके पुत्र नरूजी। इनके नाम पर ही यह वंश—'नरूवंश कछवाह कुल' कहलाने लगा। कुछ लोग इसे 'नरूका कछवाहा कुल' कहने लगे।

नरू के लालोजी और फिर क्रम इस प्रकार चलता है—लालोजी, उदैसिंहजी, लाड़सिंह (लाड़खां)[2], फतहसिंह[3],[6], कल्याणसिंह[4], आनन्दसिंह (अनन्तसिंह)[5], तेजसिंह[7], जोरावरसिंह[8], मोहब्बतसिंह[9], प्रतापसिंह, बख्तावरसिंह। यहीं

१. वरसिंह अपनी भीष्म-प्रतिज्ञा के लिए प्रसिद्ध हैं। जैसे भीष्मजी ने अपने छोटे भाई को राज्य दे दिया, इसी प्रकार वरसिंहजी ने अपनी विमाता के पुत्र नरसिंह को अपना राज्याधिकार सौंप दिया और स्वयं ने ८४ गाँवों की एक छोटी-सी जागीर स्वीकार की। कवि ने नरसिंह को प्रथम इसीलिए कहा है कि वे आमेर-पति थे।

२ मुग़लों द्वारा दिया गया प्यार का नाम।

३. उदोराव सुत लाड़षां भाक मनत फतमाल (फतहसिंह)।

४. हुये राव फतमाल सुत, कुल मंडण कलियाण।

५. अणदेस भुज अमरेस इसके अनुसार 'आनन्दसिंह' नाम अधिक उपयुक्त है। कलियाणजी के पाँच पुत्रों का वर्णन कवि ने किया है—अणदेस, षत्री, ईसरसिंह, सुरीपट सोधरस।

६. फतहसिंहजी के समय से ही जम्मू के राजाओं का वर्णन मिलता है—जगमालजी, रामचन्द्रजी, सुमेहलदेव, संग्रामदेव, हरीदेव, पृथ्वीसिंह गजेसिंह, ध्रुवदेव, सुरतसिंह, जोरावरसिंह, किशोरसिंह, गुलाबसिंह, रणवीरसिंह, प्रतापसिंह, हरीसिंह और काश्मीर के वर्तमान सदरे-रियासत श्री करनसिंह।

७. जिन वाडिये घर देस। तिन पाटपण अणदेस॥
सुत हुए तेजल राव। दनि बाग दाषणि दाव॥

८. तेजल के तिहुं सुत भये, राजकरण रिषसीव।
रावस जोरावर भये, बंधू जालिम भींव॥ (१७६५ वि०—१७९२ वि०)

९. धजबंधी ध्रम धारिये, जोरावर जग जाय।
उपजे मोवतसिंह सुत, तप पूरण परताप॥ (मोहब्बतसिंह १७९२—१८१३)
(प्रतापसिंह सं० १८१३—१८४७) सं० १८३२ में शाहआलम ने 'रावराजा' की उपाधि प्रदान की तभी से 'रावराजा' हुए—पहले 'राव' ही थे।

तक की वंश-परम्परा कवि ने दी है। इसके बाद तो आधुनिक काल आ जाता है और अलवर का पूरा इतिहास उपलब्ध है। कवि द्वारा दी गई वंशावलि सभी प्रकार से ठीक है—कई स्थानों पर मिलान करने से वंशावलि ठीक पाई गई। इतिहासकार पं० पिनाकीलाल जोशी के 'अलवर इतिहास[1]' में भी, कुछ विस्तार से, यही वंशावलि दी गई है।

आमेर दरबार में राव प्रतापसिंह का बहुत सम्मान था—

प्रतापराव रावातिलक, जानी नृप चाहत चित।
आमैरधणी रघुवंशपति, पूजत भुज माधव[2] नृपति॥

माधोसिंह (माधवसिंह) की सेवा में प्रतापसिंह ने बहुत-से वीरता के काम किए। उनियारा[3] सर किया और रणथंभोर[4] को भी आमेर-पति के राज्य में मिला दिया। यहीं माधवपुर—माधोपुर—की स्थापना हुई। किन्तु इसके पश्चात् विरोधियों ने माधवसिंहजी के कान प्रतापसिंह के विरुद्ध भर दिए, और प्रतापसिंहजी को वहाँ से जाने के लिए बाध्य होना पड़ा। इसी अन्तिम घटना के आधार पर कवि ने इस प्रभाव को "वंस वर्णन तथा नृप विजोग' नाम देकर प्रथम प्रभाव समाप्त किया है। वंशावलि तथा घटनाएँ इतिहास-सम्मत हैं और जयपुर, भरतपुर तथा अलवर के प्रामाणिक इतिहास तथा उस समय के मुग़ल सम्राटों की डायरियाँ इस बात की पुष्टि करती हैं। पाउलेट के गजेटियर में भी इसी प्रकार का विवरण है।

द्वितीय प्रभाव : प्रतापसिंह अपने आश्रयदाता माधवसिंहजी का दरबार छोड़ कर निकल पड़ते हैं। प्रवास में साथ देने वाले सरदारों की सूची भी दी हुई है। साथ में छाजूराम हल्दिया भी थे—'सजे संग छाजू सहाथै अमानी।' डेरा करते हुए राव प्रतापसिंह जावली पहुँचे। वहाँ के सरदार ठा० गजसिंह ने पूछा—

'देसपति तजि देस कौं, सजी सेन कहाँ जात।'

और प्रतापसिंहजी ने सीधा-सादा स्वाभाविक उत्तर दिया—

---

१. पं० पिनाकीलालजी जोशी के दो इतिहास उपलब्ध हैं—(१) प्रकाशित संक्षिप्त इतिहास (२) अप्रकाशित वृहद् इतिहास—२ भागों में। इस वृहद् इतिहास का उपयोग, इनके वंशजों की कृपा से, मैं कर सका था।

२. माधोसिंह प्रथम (१८०७ से १८२४ वि०)।

३. सं० १८१८ में (माचाड़ी के राव) प्रतापसिंहजी ने उणियारा अधीन कराया—उणियारा मराठों की ओर होने को था।

४. सं० १८१६ में रणथंभोर (रणतभंवर) पर चढ़ाई की और किला ले लिया।

'कोप्यो है माधव नृपति, अनजल जांह ले जात ॥'

जावलीपति ने बहुत कुछ दमदिलासा दिया और कहा—"मैं राजा से प्रार्थना करूँगा।" किन्तु प्रतापसिंह ने यही कहा—"काम परै आमैरियैं, मिलिहौ पातिल नाम।" —अब तो मैं तभी मिलूँगा, जब आमेर को मेरी आवश्यकता होगी। वे आगे चल दिये और भरतपुर-राजा के राज्य में पहुँचे[1]। व्रजराज 'सूजा' (सूरजमल, सुजानसिंह) ने इनका स्वागत किया और—

"नगर सु डहरा नाम ठांम कहियत अति भारिय।
महल बाग बाजार ताल तर सुगढ़ सुढारिय ॥
वरण च्यार मझारि वैस्य छत्री ब्रह्म सूद्र।
ते दीनो ब्रजराज जानि कै नरू नृपति वर ॥"

तथा राव प्रतापसिंह के खर्च आदि की पूरी व्यवस्था कर दी। इस प्रकार सूरजमल को एक और वीर मिल गया और भरतपुर राज्य का विस्तार तेजी से होने लगा। प्रतापसिंह ने अनेक युद्ध किए और शत्रुओं का संहार किया—'जुध कीने किते। मारि दीने किते ॥' अन्त में प्रतापसिंह को लेकर सूरजमल ने दिल्ली पर भी आक्रमण कर दिया।[2] घमासान युद्ध हुआ, कुरुक्षेत्र की युद्ध-भूमि एक बार पुनः रक्तरंजित हो गई। थोड़ी-सी सेना के साथ एक बार जब सूरजमल इधर-उधर देखभाल कर रहे थे, तो शत्रुओं ने घेर लिया—सूरजमल ने अद्भुत पराक्रम दिखाया, किन्तु थोड़ी-सी सेना के साथ कब तक ठहरते ? अन्त में—

'गिरे खेत सूजा गये सुरगलोके।'

पर इस समय भी सूरजमल बराबर इस बात को कहते रहे कि जरा फौज में खबर हो जाय और प्रतापसिंह आ जायँ, तो सबको देख लूँ।[3] सूरजमल के युद्ध में वीर-

---

१. उस समय तक भरतपुर नगर राजधानी नहीं बना था—यहाँ के राजा, जो 'ब्रजराज' कहलाते थे, डीग में ही रह कर राज-काज करते थे। ब्रजराज' की यह उपाधि भरतपुर के राजाओं के साथ अब तक चली, और वे ब्रजेंद्र सवाई' उपाधि अपने नाम के पूर्व धारण करते रहे। उस समय भरतपुर के राजा सूरजमल थे, जिनका राज्यकाल सं० १८२० तक चला। तदुपरान्त जवाहरसिंह सिंहासनारूढ़ हुए। इनसे प्रतापसिंहजी की नहीं बनी, और प्रतापसिंहजी इन्हें छोड़कर वापिस आमेर आगए तथा मावड़ा-युद्ध में जवाहरसिंहजी का सामना किया।

२. समै येक ब्रजराज साजि सब सेन सुभर भर।
कर पयान परभात कूच बजे दिली पर ॥

३. सिताबी षबर फौज में जाय दैहो।
बली राव परताप है बेग लैहो ॥

गति पाने पर जवाहरसिंह गद्दी पर बैठे।[1] जवाहरसिंह ने दिल्ली फतह की और अपने पिता की मृत्यु का बदला लिया। राजनीति में एक नया मोड़ आया। जोधपुर (मरुधर) के राठोड़ राजा विजयसिंह ने जवाहरसिंह को एक पत्र लिखा कि हम दोनों पुष्कर मिलें और आमेरपति को नीचा दिखावें।[2] दोनों का मिलना निश्चित हो गया। प्रतापसिंहजी से कोई परदा तो था ही नहीं, उन्हें सब-कुछ मालूम हो गया और वे भरतपुर का साथ छोड़कर आमेर के लिए रवाना हो गए। और कहते गए—'हरवल मो हथ देषियो'। इधर जवाहरसिंह पुष्कर को रवाना हुए, और उधर प्रतापसिंह आमेर को। जब पुष्कर में ब्रजराज जवाहरसिंह का मरुधराधीश विजयसिंह से मिलन हुआ, तभी राव प्रतापसिंह आमेरपति की सेवा में पुनः उपस्थित हो गए।[3] इस प्रभाव की भी कोई घटना इतिहास के प्रतिकूल नहीं पड़ती।

तृतीय प्रभाव : कवि ने इस प्रभाव का नामकरण 'मांवड़ा जुध वर्णन' किया है।[4] इस प्रभाव के अन्तर्गत मावड़ा के इतिहास-प्रसिद्ध युद्ध का वर्णन प्राप्त होता है। प्रतापसिंह के आमेर लौटने पर आमेरपति प्रसन्न हुए[5] और जवाहरसिंह से मिलने की तैयारी करने लगे। पुष्कर में विजयसिंह और जवाहरसिंह दोनों मिले तथा गुप्त मन्त्रणा की। उन्हें इस बात का भी पता लग गया कि आमेर में युद्ध की तैयारी हो रही है और लौटते समय जवाहरसिंह पर हमला होगा। जब जवाहरसिंह लौटे, तो काफी दूर तक विजयसिंह उन्हें पहुँचाने आए। जब निर्दिष्ट स्थान निकल गया, तो विजयसिंह तो लौट गए, किन्तु अपनी

---

१. सुजा गये सुरलोक मझि, चढे सार रण धार।
बैठे ते ब्रजराज के, तिलक तेज जौंहार॥ (जवाहरसिंह)

२. षत भेजे राठोड़ मोड मुरधर सजोग लिषि।
दिसा तीन बस कीन धरा आमेरि चत्र दषि॥
आन संक तजि संक है सुनि लीने मोरिय।
तुम सामिल हम होय चलें जित तित यक डोरिय॥

बिजराज (विजयसिंह) लिषी ब्रजराज कों (जवाहरसिंह) षत बंचत कीजो चलन।
दीपदान (दिवाली) आ देषियो हम तुम पहुकर (पुष्कर) मिलन॥

३. इत चलिये पातिल प्रबल, जब चलिये जौहार वति।
पहोकर जोंहार वीजराज मिलि, मिलि पातिल आमेरपति॥

४. "इति परताप रासो जाचीग जीवण कृत मावड़ा जुध वर्णन त्रतिय प्रभाव ॥३॥"

५. मिलि पातलि आमेरपति, माधव नृपति सुनाम।
बंधु जानि आसन दिये, लिये दाहिनो ठांम॥

सेना का काफी अंश जवाहरसिंह के साथ कर दिया।[1] इसी युद्ध में जवाहरसिंह के साथ समरू[2] नाम का एक तोपची भी था। यह विदेशी था। इसकी भारतीय पत्नी—बेगम समरू (जिसके महल आदि सरधना में अब भी देखे जा सकते हैं) अवध राज्य की सेवा में थी। माधवसिंहजी ने भारी तैयारी की थी और राज्य के सभी योद्धा उत्साह के साथ युद्ध के लिए प्रस्तुत हुए। किन्तु इसके पूर्व मन्त्रियों के कहने पर सदाशिव भट्ट को इस बात का पता लगाने के लिए भेजा गया कि वास्तव में जवाहरसिंह की इच्छा क्या है? सदाशिव भट्ट ने जवाहरसिंह को बड़ी युक्ति से सब ऊँच-नीच बताकर समझाया।[3] जवाहरसिंह ने साफ-साफ बता दिया कि जिन दो परगने—'कामां' और 'षोहरि'[4]—को देने के लिए कहा था, वे अभी तक नहीं मिले, उन्हीं की प्राप्ति हेतु मैं यहाँ आया हूँ। सदाशिव ने माधवसिंह से बातचीत करने का अनुरोध किया और लड़ाई का विचार छोड़ देने के लिए समझाया। किन्तु जवाहरसिंह ने तो एक ही बात कह दी—

"यहां नृप देय दो प्रगना, कैं कर जुध क वार।"

माधवसिंहजी ने मन्त्रियों के साथ विचार-विमर्श किया और अन्त में युद्ध करना ही निश्चय हुआ। युद्ध की सारी तैयारी हो गई—

---

१. जो अवाज विजराज सुनि, भट बहोरन परवान।
सेन राषि जोंहार संगि, कियो देस दिसि जान॥

२. 'समरू संग लीनिय।' समरू और बेगमसमरू इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। समरू का दैनिक वेतन २५,०००) कहा जाता है। इसके तोपखाने का मुकाबिला नहीं किया जा सकता था। फीस मिलने पर समरू किसी के भी साथ हो सकता था। वह भरतपुर-दरबार की सेवा में काफी दिन रहा। जब जयपुर ने ६०,००० सेना के साथ जवाहरसिंह का मुकाबिला किया, तो इस मांस की दीवाल को तोड़ना समरू की तोपों के लिए भी भारी पड़ा—हाँ, जवाहरसिंह को बचाकर ले जाने में वह अवश्य सफल हुआ। सांभर, रींगस, शेखावाटी, अलवर होते हुए जवाहरसिंह लौटे।

३. तेज बचन जोंहार के, कहे बचन भट धीर।
मिलिये माधव नृपति सौ, सदा तुम्हारो सीर॥
आपक तुमरे तात सदा पायक वा घर के।
सूरजमल बदनेस भूप कीनौं पति घर के॥
जोई होय जौंहार लैन सोही चलि लीजें।
कहो आप समझाय स्याम सौं द्रोह न कीजै॥
वीचि पाडि व्रजराज कौं, बाजी भिड़त न पायगो।
जोडत माधव नृपति दल, मोल जवाहर जायगो॥

४. कामां और खोहरी—भरतपुर के दो कस्बे। माधोसिंहजी ने तो कहा था 'कामां षोहरी जवाहर को दे दो', किन्तु धुलेपति राव दलेलसिंह ने स्पष्ट कहा—'कभी नहीं'। इस युद्ध में दलेलसिंह अपनी तीन पीढ़ियों सहित मारे गए।

बोलि भार भंडार दारु गोली गलान बटि।
झिलम बगतर टोप वोप सामंत सूर जटि॥
चिलते पाषरि तुवक वान. कमान वरछिय।
तीर तरगस वाज करन किरमालस अछिय॥
संग दिये अरावा इन्द्रगज असी सहस नर वाजि सजि।
करत जुध जौंहार सौं नृपति दलन वर बंब बजि॥

इस युद्ध में राव प्रतापसिंहजी को बड़े सम्मान का स्थान प्रदान किया गया था—

'भारे रघुभुज दाहिनी कीनी पातिलराव।'

यहाँ जाचीक जीवरा ने सेना की संख्या ८० हजार लिखी है (असी सहस नर वाजि सजि)। अन्य स्थानों पर यह संख्या ६०,००० पाई जाती है[१]। हो सकता है ८० हजार में सिपाही, घोड़े, हाथी सब की संख्या शामिल हो और ६०,००० केवल सैनिकों की ही संख्या रही हो। युद्ध-वर्णन की शैली वही है, जो सूदन कृत 'सुजान चरित्र' में पाई जाती है—

बजे फेर नृप के दल में नगारे।
चढ़े सूर सामंत महमंत भारे॥
पहले पिलै सो पताराव सथैं।
बहे जाय जोइ हरवल सथैं॥

इस युद्ध में कँवर मंगलसिंह ने भी भाग लिया[२]। "उर उर, नर नर, मर मर, सर सर, कर कर, खर खर, गर गर, घर घर, चर चर, जर जर, झर झर, टर टर, डर डर",[३] आदि में जहाँ युद्ध-कौशल का वर्णन है, वहाँ क, ख, ग, घ, न (ङ), च, छ, ज, झ, न (ञ) से लेकर स (श), ष, स तक पूरी वर्णमाला की आवृत्ति हो जाती है। इस युद्ध का परिणाम हुआ—

बाजि नौवत नृपति दल, षिस्यो षेत जोंहार।
आगे सेना सज कटक, गये भूप दल लार॥

---

१. यथा: 'वीर विनोद' और श्री पिनाकीलाल के 'अलवर राज्य का इतिहास' में।

२. 'कवर नाम मंगलेस इन्द्रेस दोई।' संभवतः ये वही 'मंगलसिंह' हैं, जिनकी आज्ञा से इस ग्रंथ, 'प्रताप-रासो', की रचना हुई।

३. इस प्रसंग में विस्तृत टिप्पणी 'भाषा-विश्लेषण' अंश में देखिए। कवि ने स्वर-ध्वनियों को तो नहीं लिया है; 'ॐ नमः सिद्धं' के उपरान्त प्रचलित व्यंजन-ध्वनियों का उल्लेख किया है।

जवाहरसिंह को बुरी तरह से भागना पड़ा।[1]—"गये जवाहर नगर निवासैं। म्हैलां दीरघ भरत उसासैं॥" यहाँ कवि ने एक मजाक भी किया है, जिसमें जवाहरसिंह के रनिवास ने भाग लिया है—

"धन मिलि धरती बूझत अैसी।
कहिये कंथ ढुंढाहर कैसी॥"

इस युद्ध का संचालन राव प्रतापसिंहजी द्वारा किया गया प्रतीत होता है।[2] जवाहरसिंह को परास्त करने के उपरान्त प्रतापसिंहजी ने माधवसिंहजी को समाचार दिया—

'जाय जोंहावर घर धस्यो कहिये सो अब करन हम।
राजाधिराज आमैरपति दलनायक दीजे हुकम॥'

प्रसन्न होकर माधवसिंहजी ने 'राजगढ़' में किला बनाने की आज्ञा दी।[3] साथ-ही 'राव' को 'राजा' शब्द के साथ जोड़ दिया[4] और कह दिया कि जब आमेर का काम हो, तब यहाँ का काम करना। प्रतापसिंह आज्ञा पाकर चल दिये और राजगढ़ में आकर डेरे डाल दिए।[5]

चतुर्थ प्रभाव : यहाँ से प्रतापसिंह का स्वतंत्र अस्तित्व दृष्टिगोचर होता है। पहला ही दोहा देखिए—

थान जोड़ थिर थान है, राजा पातिलराव।
राजउ षेतन राजगढ़, गये चित करि चाव॥

इस प्रकार 'मचाड़ी के राव' 'राजगढ़ राज' हो गए। कवि लिखता है—

पातिल कमठाणां किये, राज राजगढ़ भाल।
हिंदवानी हद रषना, तुरकानी सिर साल॥

---

१. जो जोंहार पछितात अति, वर वर ढोरत सीस।
आय भूप दल दीघ सूं, रह घटि कोस पचीस॥

२. तहां राव उमराव संगि सला मिलि कीजिय।

३ राजरु मोसल राज के, दिये हुकम नृप जोय।
वहोरि कूच कीजे पछिम, ठाम राजगढ़ होय॥

४. इसों राजसी कों हुकम भूप होई।
वरं राव प्रताप सो राज होई॥

५ इसो राजसी कूं हुकम भूप दीनो। लषते षते वार दल कूंच कीनो।
उठं भूमि की रेणि फौजें अघेरा। दिये राजगढ़ षेत जो जाय डेरा॥

राजगढ़ में किला-महल आदि का निर्माण कराया गया।[1] इसी बीच माधवसिंहजी का स्वर्गवास हो गया और इनके स्थान पर इनके बड़े पुत्र पृथ्वीसिंह गद्दी पर बैठे।[2] इस समय पृथ्वीसिंहजी की अवस्था केवल पाँच वर्ष की थी। सं० १८२७ में जब ये आठ वर्ष के हुए, तो बीकानेर के महाराजा गजसिंह की पोती के साथ इनका विवाह हुआ। इनके जीवन-काल की यही प्रमुख घटना थी। सं० १८३५ में तो इनका देहावसान हो ही गया। इस विवाह का विस्तृत उल्लेख हमारे कविराज द्वारा किया गया है—

यों सुनि बीकानेर नृप गजै (गजसिंह) आप उरधारि।
पीथल है आमैरपति, दीजै ताहि कँवारि॥

विवाह का अच्छा चित्रण किया गया है। प्रतापसिंहजी तो राज्य की देखभाल करते ही थे।[3] इस विवाह के अवसर पर याचकों को खूब दान दिया गया—

जाचिग आये जानि राव परताप आप नर।
स्याम लाज कै काज बाज धन दिये बटिं वर॥

विवाह सानन्द समाप्त हुआ और—

ब्याह भूप दिसि देस सिधाये। पीथलराव जयनगरा आये।
पातिलराव संग व्रतधारी। दीन षग(नेम) नृपति भुज भारी॥

इस समय प्रतापसिंह का काफी रोब था, किन्तु उनकी स्वामिभक्ति अटल थी। कवि लिखता है—

यसो राव परताप आप मति महाभीम बल।
स्याम धरम सुध भाव वदि वदित भूप दल॥
ही-दल ता गजराज राज रजपूत सेन भर।
चढ़े चवर वध चाय दाय अप नरू नृपति नर॥

---

१. ये किला-भवन आदि आज भी देखे जा सकते हैं। राजगढ़—बांदीकुई-रिवाड़ी रेलवे लाइन पर बांदीकुई से तीसरा स्टेशन है और आज भी बगीचों के लिए प्रसिद्ध है।

२. सम चौबीसं साल (सं० १८२४) काल मावध महीप क्रिय।
भंचक सो परि भोमि जोमि नर जिते सोच जिय॥
तिही वार दल लार कोकि महाराव बुलायव।
सबै ठाम उमराव ध्याय आमाचति आयव॥
नरपति निवास जुरियं जुगल रघुवंसी अरै पलक।
माधव महीप महाराज सुत पीथलि(पृथ्वीसिंह) सिर दीनो तिलक॥

३. पीथल सिर दीनों तिलक, करि रघुकुल के साज।
समरथ पातिल (प्रतापसिंह) जानि कै, दई राज की लाज॥

देषत और दीसै न को पता राव सम पटतरँ।
दल आमैरा देस परि उमराव बंधु कित्ते घरे॥

राज्य के अन्य उमराव और दरबारी प्रतापसिंह की इस वढ़ोतरी को सहन नहीं कर सके और उनसे ईर्ष्या करने लगे। एक बार तो ऐसा भी हुआ कि जब प्रतापसिंह घूमने को गये हुए थे, तो लौटते समय किसी ने उन पर गोली चलाई।[1] किन्तु भगवान् ने उनकी रक्षा की[2] और गोली कान के पास से निकल गई। प्रतापसिंह को अपनी स्वामिभक्ति का ऐसा विपरीत परिणाम देख कर बहुत दुःख हुआ। आमेर छोड़ना तो नहीं चाहते थे, किन्तु स्थिति देख कर यही निश्चय किया कि यह नगर छोड़ देना चाहिए। उनियारे के राव को राज-रक्षा का भार देकर आप निकल आये और कहते गए—

'करत याद फिरि आय हौं'

उनसे बहुत कहा गया कि आप यहीं ठहरें—राजा ने भी अनुरोध किया, किन्तु—

बोले सुराव नृपराज सों, करत याद फिर आय है।
येक बेर देसन दिसा हुकम जानि कै पाय है॥

फौज-पलटन के साथ जाते हुए थानागाजी के समीप आकर उतरे। यहाँ से राजगढ़ की ओर जाने का कार्यक्रम था, किन्तु इसी बीच राजसिंह तथा फीरोजखाँ ने षड़यन्त्र रचकर जयपुर-नरेश से राजगढ़ अपने अधिकार में ले लिया।[3] प्रतापसिंह आगे बढ़ते रहे और बसवा नामक स्थान पर पहुँचे। यहाँ उन्हें सारी बातें मालूम हुईं और उन्होंने अपने मन्त्री छाजूराम[4] से परामर्श किया। इस

---

१. सहल करन कूं राव सिधाये। वहरचौ दिसि डेरन कू आये॥
मधि सत्रुन मिलि असी तोली। कियो कूर तकि दीनी गोली॥

२. दगेस पातिलराव पर, कियेस दुरजन हाथ।
सीस सहायक है सदा, लिये रषि रघुनाथ॥

३. तातै सला है यक कीजै। हुकम नृपति को या विधि लीजै॥
राव सुथान राजगढ़ जोई। तापै हमैं मुहीमस होई॥

४. छाजूरामजी हल्दिया, सम्भवतः, प्रतापसिंहजी के साथ बराबर रहे। भरतपुर पहुँचने के अवसर पर भी छाजूराम साथ थे और उन्हीं के द्वारा सारी बातें हुई—
मंत्री छाजूराम सो, बूझत बोले बैन।
सुनि अवाज ब्रजराज ही, आये पातिल लैन॥
भरतपुर महाराज भी इन्हें मानते थे और उन्हीं को बुलाकर सूरजमलजी ने पूछा था कि प्रतापसिंह के उधर आने का क्या कारण था।

समय तक छाजूरामजी के तीनों पुत्र—खुस्यालीराम, दौलतराम और नन्दराम भी बड़े हो चुके थे और राजनीति में अपने पिता का हाथ बँटाने लगे थे। इसका संकेत कवि ने इन पंक्तियों में किया है—

मंत्री छाजूराम बुलाये। ता सुत त्रहू सुनतहि आये॥
षुस्यालचंद दोलो नंदराम। जो तो करन स्याम के काम॥

यहीं से इन तीनों भाइयों की प्रभाव-प्रभुता का विवरण चलता है। पूरा दरबार किया गया और अन्त में युद्ध करना निश्चय हुआ—

दरबार राव पातिल विराजि। दीनो सुनाय यक हुकम गाजि॥
आये सु भूप दल करन जंग। चढ़िया सु राजगढ़ किला रंग॥

किन्तु यह सोचा गया कि सीधे राजगढ़ की ओर न जाकर दूसरी तरफ चलना चाहिये। अन्त में कांकवारीगढ़ की ओर रवाना हुए।[1] राजसिंह और फीरोजखाँ ने वहाँ भी युद्ध किया—

वति आये दल नृपति के, यति पातल के सूर।
दुहू बोर लागे बहन, सार समर भरपूर॥

दो महीने तक युद्ध चलता रहा और फौजें थक गईं[2]। अन्त में पृथ्वीसिंह ने पत्र लिखा—

षत वंचै पीथल नृपति, सला धारि उर आप।
आगल है या देस की, कोके राव प्रताप॥

इस प्रकार राव प्रताप को आमंत्रित किया और वंश-परम्परा का ध्यान दिलाते हुए लिखा कि उदयकरण के वंशज हम तुम दोनों भाई हैं।[3] हम दोनों में युद्ध का कोई कारण न होना चाहिये। पत्र पाते ही प्रतापसिंहजी महाराज पृथ्वीसिंहजी से मिल्ने चले और प्रेमपूर्ण सम्मिलन हुआ। प्रतापसिंह को राजगढ़ का राव पुनः घोषित किया गया[4] और इस प्रकार यह चतुर्थ प्रभाव पूर्ण हुआ।

---

१. नाम कांकवरीगढ़ थानो। ता दिस पातिल कियो पयानो॥
२. मास दोय कीनी रण भारी। धाप गई थकि फौजै सारी॥
३. लिये कोकि परताप आप नृप लिषे षास षत।
सरी तुम्हारी रार आरि मिलिये सवेगियत॥
अवनि दाय कै माय आट आगा लगि आइय।
उदैकरण नृप होय तास तन हम तुम भाइय॥
षत जोजि बंचि पातिल प्रबल जुध जीति कीये चलन।
धनी राजगढ़ राजई नृप अमावति पीथल मिलन॥
४. बढ्यो हरष नृप यों कह्यौ, राज राजगढ़ राव॥

पञ्चम प्रभाव : नरूकुल के नक्षत्र राव प्रतापसिंह अच्छी तरह स्थिर हो गए। कवि ने लिखा—

अवनि लीन बसि कीन दीन कोनसी अपन।
उथपन थे थिरकरन करन ते थिर ते उथपन॥
परतापराव रावत तिलक, जगत जोय नषतरू नरू।
पूरब पछिम उत्तर लग दषिण लग जाने सरू॥

चारों दिशाओं में प्रताप की ख्याति फैल गई। इनके शौर्य से दिल्लीपति भी प्रभावित हुआ। उन दिनों दिल्ली राज्य पर जाटों का बहुत उत्पात था, अतएव दिल्ली के बादशाह ने प्रतापसिंह को अपनी ओर मिलाने की चेष्टा की। कवि लिखता है—

पूरन ससी सो सील तन, तेज तरन परवान।
ताहि चाहि दिली धनी, देये साहि परवान॥

राव प्रतापसिंह ने दिल्लीपति की आज्ञा शिरोधार्य की[1]। और बादशाह ने

दये गज तेंग षिलंत दुसाल।
दिये सिर पेच किलंगी भाल॥
सजन मांहि मुरातब लारि।
बजन साहिब नोवति वार॥
यसो पतिसाह कियो सनमान।
नरू धर पातिल बड़ प्रमाण॥

बादशाह का कार्य करने के लिए प्रताप ने अपने मंत्री 'बंधुत्रय' को बुलाया और उनको आदेश दिया—'बादशाह की आज्ञा का पूरा-पूरा पालन करो तथा दिशा-दिशा में जाकर बादशाहत मजबूत करो, जो भी दिल्ली की आधीनता स्वीकार न करे, उसे नष्ट कर दो[2]।' फिर क्या था —

हुकम धणी पातिल दिये, लियेस मंत्री नाव।
कर सलाम तिह बेर ही, करन स्याम के काम॥

खुस्यालीराम उत्तर दिशा की ओर चले और दक्षिण दिशा को दौलतराम ने प्रस्थान किया। सर्वत्र ही राव प्रतापसिंह का प्रभुत्व छा गया और—

---

१. दिये फुरमान दिलीपति साहि। लिये सिर पातिल राव चढ़ाय॥
२. हुकम साहि को सोई कीजै। दिसा दिसा सिर डेरा दीजै॥
अवनी ऊपर अमल बजावो। अनमिल मारि मलैन मिलावो॥

'गढ़-गढ़ मैं बैठक वणी, पातिलराव प्रताप'

प्रतापसिंह का राज भी वढ़ा और अनेक गढ़ों पर उनका आधिपत्य हो गया। राजगढ़ को राजधानी बनाकर राजकाज संचालित होने लगा[1]। कवि ने राजगढ़ का सुन्दर वर्णन किया है और उसे अमरावती के समान वताया है[2]—

वरणि राजगढ़ गढ़ कह्यौ, जोजन येक मझारि।
जल-षाई ऊँचे अलग, द्वार चारि दिसि चारि॥

नगर का वर्णन करने में कवि ने अतिशयोक्तिपूर्ण पद्धति का अनुसरण किया है। राजगढ़ की भीड़-भाड़, नाच-रंग, विलास-विनोद सभी का वर्णन किया है। साथ ही यह भी बताया है कि यहाँ न केवल राजपूतों के ३६ वंश निवास करते थे, वरन् सइद, सेष, मुगल, पठान, तुरक भी आनन्द के साथ रहते थे। 'राग-रंग, धुन-ध्यान', सभी कुछ चलते थे। 'गज, वाजि, तोप' आदि युद्ध की सामग्री का भी पूर्ण आयोजन था[3]।

संवत् १८३२ में प्रतापसिंहजी की स्थिति बहुत अच्छी थी। इधर आमेर-पति पृथ्वीसिंह और उधर दिल्लीपति शाहआलम दोनों ही से इनके सम्बन्ध अच्छे थे—

अठरासै वतीस साष संवत परवानन।
राजराव परताप समै कथि कहे सथानन॥
यत दिली आमैरि मझि पातिल पन धारिय।
अरन नाय नर किते हद दोऊ घर पारिय॥
धणीस राजगढ़ नरपती नरू बंस मोटे वषत।
यति आमावति पीथल नृपति वत अलीगवर दिली तषत॥

भरतपुर की ओर से प्रतापसिंह रुष्ट थे ही। उधर दिल्ली का बादशाह भी भरतपुर

---

१. गढ़ यतने महाराव के, ते कथि वरनें नाम।
तिन सिर नषत सु राजगढ़, रहनि आप सुष ठांम॥
अथवा—'रावराज के गढ़ यते, सो सब सिरै गढ़ राजगढ़॥'

२. सही सुरपति पुरी स पठान।

३. चलि आवत भीर चहु दिस की। गजराज अवाज चहु दिस की॥
असुपति गजपति आतक ते। नर नौकर पाय लगंति किते॥
सइद सेष मुगल पठाण। हीदु हीदवान दिली तुरकान॥
बिछायत मसंद गलिम गदी। अतरा षतरा षसवाय हदी॥
नगरी मज बंस छतीस बसै। मग आवत जावत ढाल षसै॥
हट चौहट वट वजार वणे। अति सुन्दर मंदिर मध्य घणे॥
कहू धुन-ध्यान स राग रंगे। कहू रजपूत सु थट लगे॥

की शक्ति को दबाना चाहता था। अतः राव प्रतापसिंहजी ने कहा—

'होय मोहि यक हुकम देष हों जाय व्रजधर'

तब शीघ्र ही दिल्लीपति ने नजफखाँ के साथ बहुत-सी सेना देकर प्रतापसिंह को प्रोत्साहित किया। ब्रजदेश के ऊपर डेरा डाल दिया गया। इस चढ़ाई में 'षुस्याल' (खुस्यालचंद-खुस्यालीराम) को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला।[1] इस समय भरतपुर में नवलसिंहजी[2] का राज्य था। उन्होंने भी युद्ध की तैयारी शुरू कर दी। इस समय भी भरतपुर की सेना में प्रसिद्ध तोपची समरू काम करता था। वे सारी बात 'हरदेवजी' (भरतपुर के इष्टदेव) के हाथ छोड़कर[3] युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गए। घमासान लड़ाई हुई[4] और निरंतर चौबीस मास[5] तक दोनों ओर के योद्धा डटे रहे। अंत में परिणाम नजफखाँ के अनुकूल हुआ—जाट राजा हरा दिया गया—

भजी फोज व्रजराज की नजफ जीतिये जंग।
दोहु दलां बिचि रावरा मंत्री चाढ़ै रंग॥

इस प्रकार नजफखाँ के साथ रह कर प्रतापसिंहजी ने मुग़ल बादशाह की काफी सेवा की। जाटों से आगरे का किला खालो कराया, और अलवर स्वयं

---

१. मिलि डेरा नर नजब के, मंत्री किये षुस्याल।
बजे कूंच वर भोर ही, धरा व्रज परि चालि॥

२. नवलसिंहजी का अभिभावक-काल सन् १७६८ से सन् १७७६ ई० तक रहा। नवलसिंह राजा नहीं थे। वे अपने भतीजे राजा केसरीसिंह की देखरेख करते थे : किन्तु उनका रुतबा राजा जैसा ही था। यहाँ तथा अन्यत्र भी कवि ने इनका उल्लेख राजा जैसा ही किया है। महाराज सूरजमलजी के ४ लड़के थे (१) जवाहरसिंह, जो सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति हैं तथा जिनका आतंक दिल्ली-आगरा सर्वत्र छा गया था। जवाहरसिंह सदा ही आगरा किले में काले पत्थर के तख्त पर बैठ कर शासन-कार्य किया करते थे। वहीं सं० १७६८ में इन्हें मार दिया गया। (२) रतनसिंह, जो केवल नौ महीने तक गद्दी पर बैठे। (३) केसरीसिंह, जिनके अभिभावक नवलसिंह थे। (४) रनजीतसिंह, जो अपने भाई का विरोध कर स्वयं राजा होना चाहते थे और जिनका पक्ष नजफखाँ ने लिया। इनके अतिरिक्त इनका एक पांचवा पुत्र और कहा जाता है—हरदेवबख्श, जो सूरजमलजी को जंगल में मिला था।

३. करिहैस स्याम के काम सथ। जो जीति हार हरदेव हथ॥

४. मनो बोलरे इंद्र वल दोय सजं। वहै गोल गोला अरावे गरजं॥
वहै बाघणी वीर बंदूक अछी। बहे वल कमांन तेगं बरछी॥
हुवं टूक टूकं जुटै सूर सूरं। गले माल गेरैं बहै हूर हूरं॥
धरं सीस टूटै लगं रूक रूकं। किते घाय घायं परे खेत कूकं॥
न को कोय सूझै भयो जुध भारी। मनू वसरग की भई रैन कारी॥
वरंहं किये बाजते राजमंत्री। कटी जट की सेन जो हथकत्री॥

५. लरैं मास चौबीस लग।

प्रतापसिंहजी ने सेवा-स्वरूप प्राप्त किया। पंचम प्रभाव भरतपुर की पराजय के साथ समाप्त होता है। भरतपुर का प्रयोग स्थान-नाम को स्पष्ट करने के लिए किया जाता रहा है, अन्यथा महत्त्व उसी दीग (दीघ, डोग) का ही बना हुआ था।

षष्ठ प्रभाव : ब्रजराज से राज छुड़वा देना, प्रतापसिंहजी के लिए कुछ शोभा नहीं देता। भारत में व्याप्त राजाओं की इसी नीति ने भारत की स्वतन्त्रता का सर्वदा से अपहरण किया है—किन्तु उस समय इसी प्रकार की नीति चलती थी। मुगल बादशाह इसी प्रकार देशी राज्यों को ध्वस्त करने का कार्य करते रहते थे। इस युद्ध का परिणाम हुआ था—

सो पति है ब्रज देस को, नगर दीघ[1] सुनाम।
तापर बैठे नजब नर, इंद्र पुरी सम ठाम॥

इस स्थान पर कवि का हिन्दुत्व जाग्रत होता दिखाई देता है। कवि कहता है—

तोरि दीघ निज ठांम जोर अति भरे नजम नर।
कहै अैन मुष बैन देषि हौ जोय हिंद घर॥
(गया) राम नाम बड़ ठांम लूटि लैहों सब लछि धन।
गढ़ अजंग गढ़पतिय डारि है भंग जंग जिन॥
हके नवाब हिंदू धरा लेन काज भर वहो बलन।
कीने पयान पछिम दिसा बार लार ले लषन दल॥

नजफखाँ की इस चढ़ाई के समय किसी भी हिंदू-वर्ग का नाम नहीं आता—

षुरासान मुलतान कासि षंदार मीर भर॥
सैयद मुगल पठाण सेष भारथ अभंगिय।
तिलगु रुहेला तेस देस कत ...फिरंगय॥

हिंदू राज्यों को एक भारी संकट उपस्थित हो गया। प्रतापसिंहजी के पास भी

---

१. भरतपुर जिले का काफ़ी भाग ब्रज देश में शामिल किया जाता है, जिसमें दीग भी आता है। ब्रज की ८४ कोस की परिक्रमा करते समय दीग में भी एक रात्रि का पड़ाव डाला जाता है। परिक्रमा के लिए अब भी कई प्रकार के समुदाय निकलते हैं। जैसे गुसाइंजी की यात्रा, जो बहुत समय लगाती है और इसमें सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। परदे में गुसाइनें भी यात्रा करती हैं। कभी-कभी इस प्रकार की दो यात्राएँ भी चलती हैं। दूसरी 'लठावन भारती' कहलाती है, जो कुछ ही दिनों में ८४ कोस समाप्त कर देते हैं। यात्रा के दीग में ठहरने के अवसर पर एक मेला-सा लग जाता है।

समाचार पहुँचा[1] उन्होंने सभी वंधु-बांधवों और मंत्रियों को बुलाकर भारी दरबार किया और उसमें घोषणा की—

पातिल बोले बचन यों, सब दरबार सुनाय।
कर सर वा ब्रजदेस कूं, नजब हींद घर आय॥

दरबार प्रतापसिंह की आज्ञा प्रतिपालन के लिए प्रस्तुत था। रावराजा ने कहा—

"करिहैस राडि परिहैस पाय।"

और कह दिया—

"टूटत देखि हिंदवान हद।
टरि है न जोय छत्री मरद॥"

हिंदवानीं हद को टूटते देख प्रतापसिंहजो को बहुत जोश आया। दुर्भाग्य की बात यही थी कि उन्होंने 'ब्रजधरा' को 'हिंदवान हद' में नहीं समझा! जयचंद वाली घटना एक बार यहाँ भी चरितार्थ होने जा रही थी। किन्तु इस अवसर पर सारा हिंदू-दल एक हो गया और नजफखाँ के सामने एक समस्या उपस्थित हो गई। उसे समझाया गया कि विकट परिस्थिति आ गई है। समझ सोच कर काम करना चाहिए।[2] नजफखाँ ने नीति से काम लिया और चढ़ाई की बात को बदल कर कहा—'हमारी तुम्हारी कोई बात नहीं, आमेर देखने चलें।'[3] किन्तु नजफ से स्पष्ट कह दिया गया—

वा घर या घर येक ही, आनों नजब नवाब॥
आमावति सम राजगढ़, नरपत पातिलराव।
धरती के दो ही धनी, वत राजा यत राव॥

---

१. हिंदवान हद पातिल प्रछति वल हलकारे षबर दिय।

२. सुनिये नजब नवाब ज्वाब यक अरज हमारिय।
कीजे कूँच विचारि धारि हींदू दल भारिय॥
तम सम आगे और ठोर तापस आय बन।
होसदारखां बोलि यहैं हींदु घर दल वहन॥
(शेख होशदारखां प्रतापसिंह के साथ था)

३. रहिये असेष न सेष पुसी। तुमरी हमरी घर येक वसी॥
मिलि है तुम सौं जिनहूं मिल हों। ढूंढाहर देषन को चलिहों॥

फिर भी नजफखाँ आगे बढ़े और रावराजा ने जब यह खबर सुनी, तो सबको यह आज्ञा प्रदान की[1]—

हद टूटत टूटत धरा, टरै न छत्री नाम।
जुद्द करन कौं जोग है, करै सू सीताराम॥

इधर भी युद्ध की तैयारी हो गई और अन्त में लछमनगढ़ का युद्ध हुआ।[2]

वत उसरे दल नजब ले, यत पातिल दल भीर।
माझि हद पर राव कै, लछमनगढ़ गढ़ वीर॥

और एक बार फिर कँवर मंगलसिंह का आह्वान किया गया। कवि इनकी प्रशंसा करते हुए लिखता है—

बुधिवंत बलवंत जंग महमंत मन गर।
धीर पाय अवदाय भार रण चाय करन सर॥
अरन काल सिर साल भाल रछपाल वाम पर।
धायक वत दल फोर सोर जीतंत जोय छरि॥
इम धारि रावराजास चित यसो चाहिये बंधु वर।
सभा सुध सब हुकम दिय है लायक मंगल कवर॥

और रावराजा ने कहा—

बोले रावराजास आत। सुनिये कंवर मंगल बात॥
आये नजब धरि करै दाय। लैन लछमनगढ़ ठहराय॥
हद परी होय विरोध। तुम जाय कीजो जुध॥[3]

इस युद्ध में नजफखाँ को बहुत हानि पहुँची—

नजबखांन पछितात लड़ि, गढ़ लछमनगढ़ आय।
बोलि गुंसाईं सौं कही, सला होय सुनाय॥

---

१. सुनत रावराजा यसी, बज अभाट बर साजि।
पातल सबन सुनाय करि, दये हुकंम यक गाजि॥

२. 'लछमनगढ़ रासो' नाम की एक स्वतंत्र रचना (जिसे इस पुस्तक के परिशिष्ट में दिया गया है) अलवर के रावराजा विनयसिंहजी की आज्ञानुसार षुसाल कवि ने की है। जिस युद्ध का प्रताप-रासो-कार ने संक्षेप में वर्णन किया है, 'षुसाल' ने उसे विस्तृत रूप में लिखा। वर्णन में संयम रखना षुसाल कवि के लिए संभव न हो सका।

३. इस युद्ध में मंगलसिंह के साथ शिवसिंह और छाजूराम भी थे। कछवाहों के अनेक कुल भी इस युद्ध में सम्मिलित हुए।

यह गुसाईं "अनूपगिरि"[1] ही था, जो एक कुख्यात देशद्रोही था। संभवतः इसी के कहने से नजफखाँ ने हिन्दू-विरोधिनी नीति को अपनाया—जिसका परिणाम देश के लिए तो बुरा हुआ ही, आक्रान्ता भी दुखी हुआ। अन्त में गुसाईं ने भी यही सलाह दी—

लिषि पठये करि षास षत, रावराज पै दैन।

पत्र प्राप्त होने पर प्रतापसिंह ने अपने दरबारियों से परामर्श किया और अंत में यह निश्चय हुआ—

सुनिय रावराजा यह बातैं। को बिधि टरैं नजब नर ह्यांतैं॥
यह हिंदू घर है धर्म धारिय। यत वत करत कुफर वह भारीय॥

परिणामस्वरूप—

'बुधिबल छाजूराम सुत कवर षुस्यालीराम।'

को भेजा गया। खुशालीराम ने बहुत योग्यता के साथ अपना कार्य किया और

नर नजमषांन वर वचन दीन। कहि है षुस्याल मैं सोय कीन॥

बातचीत के उपरान्त—

भीरि बोलि लीनी नजब, लछमनगढ़ की घेर।
उलटिवाट कीनो चलन, लारे मंत्री लेर॥[2]

यह युद्ध सं० १८३५ में हुआ[3]। इस युद्ध में कँवर मंगलसिंह ने बड़ी वीरता दिखाई।[4] यह प्रतापसिंह की भारी विजय थी और नजफखाँ पर भी उनका सिक्का बैठ गया।

सप्तम प्रभाव : नजफखाँ लौटकर दीग पहुँचा। साथ में खुशालीराम भी थे। एक बार नजफखाँ ने खुशालीराम से कहा—

रावराज तुम धनी बार यक हमैं मिलैयत।
देहु राव बड़ ठांम परगना ते तुम चहियत॥

---

१. अनूपगिरि से सम्बन्धित एक हस्तलिखित ग्रंथ—"अनूप प्रकास"—मैंने इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन में देखा था। इसके दो रूपान्तर थे · एक पद्य में दूसरा गद्य में। 'अनूपगिरि' पर मेरा लिखा एक स्वतन्त्र लेख देखें—प्रकाशित 'हिन्दी अनुशीलन'।

२. नजफखाँ मंत्री खुशालीराम से इतना प्रभावित हुआ कि उन्हें अपने साथ ही लेता गया।

३. अठारैसै पैंतीस मांहि नजब से दायक।
मंत्री सो षुस्याल धरणि पत्तिल को पायक॥

४. बंगल बल मंगल लरे, काका कन्ह प्रवान।
पछि पातिल प्रथीराज सों, गुन कथि कहै बखांन॥

प्रतापसिंह जी को पत्र लिखा गया। जब पत्र रावराजा को मिला, तो भरे दरबार में विचार किया गया—

राजाराव दरवारि वरि सब सौं सलाहा कीन।
नजब मिलन ब्रजदेस कूं कुंच प्रात ही कीन॥

बीस हजार सेना के साथ प्रतापसिंहजी रवाना हुए और पहला मुकाम लछमनगढ़ में हुआ।[1] इस प्रकार 'कूंच दर कूंच' करते हुए ब्रजधरा पर पहुँचे। नजफखाँ बड़े सम्मान के साथ मिला। एक-दूसरे को राजसी सम्मान प्रदान किया गया।[2] प्रतापसिंह अपने स्थान पर लौट आये। खुशालीरामजी नवाब के पास ही रहे। एक बार इनसे कहा गया कि अलवर का किला हमें दिला दो। उत्तर दिया—प्रताप के रहते हुए यह कैसे संभव हो सकता है? अंत में खुशालीराम से प्रस्ताव किया गया—

यो सुन वचन नवाब नर, फोरे मंत्री आप।
या दल करु दीवान तुम, तजिये राव प्रताप॥

मंत्री को यह बात पसंद आ गई और रात्रि के समय अपना परिवार उधर से निकाल लिया। कवि को खुशालीराम की यह बात पसंद नहीं आई और लिखा—

राजाराव तजे तिहि वारे। होय हराम नजब दल लारे॥

इन सभी लोगों ने प्रतापसिंह को छोड़ दिया—

नाम षुस्यालीराम बड़, भुज दौले नंदराम।
छाजुराम तिन तात है, निसरि गये तजि ठाम॥

यह समाचार प्रतापसिंहजी को भी मिला। उन्हें मंत्रियों का यह कृत्य अच्छा नहीं लगा—

"दगोस देत मंत्रि ये। कहोस जोय कीजिये॥

इसके उपरान्त—

बंब त्रमाट दलि वार बजाये। बहोरि देस दिसि कुंच बजाये॥

इस बार प्रतापसिंह हलके पड़े और 'पातिल षेत षगे तिह वार।' परन्तु उन्होंने अपने क्षत्रिय धर्म की आन रखते हुए कहा—

गज नवाब होदा हथयाल। पातल नाम न जो टरि चाल॥

---

१. सजि सहस बीस नर बाजि जोर। तोवे सठठ हसतीस डोरि।
प्रथमीस जाय कीने मुकाम। गढ़ लछमएगढ़ आछे सुठाम॥

२. नजफखां ने—'मंत्री बंधु उमराव संग सो सिरपाव सजाविये' और इधर प्रतापसिंह ने 'घने बाज गजराज दिय, संगि मीरन सिरपाव'।

और घनी फौज को चीरते-फाड़ते अपने देश लौट आये।[१] यह घटना १८३६ वि० की है। नजफखाँ प्रतापसिंह के स्वदेश लौटने से संतुष्ट नहीं हुआ और भारी फौज के साथ पीछा किया—

रावराज घर पति घर आये। नजब साजि दल पाछैं धाये ॥
लीन काज अलवर गढ़ ठामैं। मजलि मजलि पर किये मुकामैं ॥

उसके साथ में 'दिली दल, आमैंरि दल, अरु देषणी दल' थे। अंत में यह भारी दल अलवर के निकट आ गया। अलवर लेने के लिए शुरू से ही नजफखाँ की भारी इच्छा थी, उसने कहा—

लैहु लराई राव दल, पीछै पाव न देहु।
कै अलवर मो लै रहे, कै अलवर मैं लेहु ॥

किन्तु परिणाम विपरीत हुआ—

आप राडि जुड़ियेस अप, लैन किला के हेत।
जीते पातिलराव दल, षिसे नजब दल षेत ॥

और यही समाचार दिल्ली के बादशाह तक भी पहुँचा।[२] इस अवसर पर खुशालीराम का दिया हुआ आश्वासन—

लैहेहु साह अलवर सुनाम।
जौ है षुस्याल मेरो सुनाम ॥

भी कुछ काम न आया। इस युद्ध में चावड़दान की वीरता का वर्णन आया है, जो थानागाजी से प्रतापसिंह की सहायता हेतु अलवर पहुँचे।[३] चावड़दान को विशेष रूप से बुलाया गया था।

"लिषयति कोक बुलावियै, चारण चावड़दान।"

---

१. (अ) फारि फौजे घनी। देस आये घनी।
(आ) बल भारी दल नजब के, फारि आवियै आप।
घनी राजगढ़ राजई, राजाराव प्रताप ॥

२. हरे नजब दल हो षटे, होय चाहि अन चाहि।
सो अवाज सरवन सुनी, दीलीपति पतिसाहि ॥

३. यों सुनाय सब साथ सों, निकसे चावड़दान।
हुकम घणी को सो कियो, तजि गढ़ गाजीथान ॥
(यद्यपि इनका इधर जाना इनके लिए बहुत घातक सिद्ध हुआ—चावड़दान कियौं यत्न आनं। यौं नवाब लीनों गढ़ थानं)
किन्तु स्वामिभक्ति के आगे ऐसी बातें कुछ महत्त्व नहीं रखतीं।

अष्टम प्रभाव : समाचार प्राप्त कर दिल्लीपति को बहुत बुरा लगा और नजफखाँ को फौरन दिल्ली बुलाया गया।[1] आदेश पाते ही नजफखाँ दिल्ली की ओर रवाना हुआ और साथ में 'दोलै, नंद, षुस्याल ऋहु मंत्री' को लिया। नजफखाँ जाते समय 'अहमदानी' को अपने स्थान पर छोड़ गए और 'अहमदानी' प्रतापसिंह के 'वसन पलट' (वस्त्र बदल कर—एक-दूसरे के वस्त्र बदल कर) बंधु हुए। तीनों भाई दिल्ली में रहने लगे, किन्तु थोड़े ही समय में वहाँ के वातावरण से घबरा गए और वापिस लौटने की सोचने लगे। अंत में—

तजि दिली चलिये ऋहुं, दोल षुस्याल रु नंद।
धकि आये आमेरि दिसि, कियो भूप चर छंद॥

आमेरपति महाराज प्रतापसिंह ने पूछा—

क्यों तुम दिली नजब तजि दीनौं। या दिसि आंन काज को कीनौं॥

उत्तर प्रेषित किया कि—

'सिर पै नाहिन स्यांम है, यातै या घर आय।

महाराज प्रतापसिंह ने उन्हें सम्मान के साथ अपने पास टिकाया। एक बार जैपुर-नरेश ने राजगढ़ देखने की इच्छा प्रगट की।[2] मंत्रियों ने यह बात पसंद की, और फौज के आगे हो लिए। यह समाचार राव प्रतापसिंहजी[3] को भी मिल गया। इस अवसर पर नीचे लिखे दोहे से हल्दिया बन्धुओं के प्रति प्रतापसिंहजी की क्रोध-मिश्रित आत्मीयता का दर्शन होता है—

---

१. ये षत वेग बंचि तुम लीजे। जलद चलन दिली दिस कीजे॥

२. जैपुर-नरेश को पता लगा था—
जल षाई ऊंचे किला, तोवैं इंद्र अवाज।
वसै बंस षटतीस मधि. दल बल सुभर समाज॥
राजगढ़ की महिमा सुनकर राजा ने कहा—चल कर देखना चाहिए—और साथ में यह भी इच्छा व्यक्त की—अब लग राव धरा सब षाई। देह छोड़ि कै लेहु लराई॥

३. इस समय अलवर तथा जयपुर दोनों ही स्थानों पर 'प्रतापसिंह' नाम के अधिपति थे। संवत् १८३५ में पृथ्वीसिंहजी का अल्पावस्था में ही देहावसान हो गया और उनके पश्चात् उनके छोटे भाई प्रतापसिंह गद्दी पर बैठे। ये सवाई प्रतापसिंहजी कहलाये और इनका शासनकाल १८८० वि० तक चला। अलवर और जयपुर दोनों स्थानों पर एक ही नाम के अधिपतियों से कहीं-कहीं भ्रम हो सकता है। कवि ने इस बारे में काफी सावधानी बरती है। अलवर के प्रतापसिंह—'रावप्रताप' 'पातिलराव' आदि नामों से संबोधित किए गए हैं और जयपुराधीश—'राजप्रताप,' 'पातिलराज,' 'भूपप्रताप' आदि नामों से। 'राव' और 'राजा' का समुचित ध्यान रखने से भ्रम का निवारण हो जाता है।

लघुता ते दीरघ भये, निमष हमारो षाय।
दो हरांम साम्है परे, आ तन आड़ी आय॥

भारी फौज लेकर राव प्रतापसिंह सामना करने चले। हल्दिया बंधु घबरा गए और पत्र लिखा—

आये दल बल सबल सजि, थके राव परताप।
हम बल की अब बात नै, सलाह आपनो आप॥

उत्तर-में जयपुर-नरेश ने बहुत-सी फौज भेजी। इस बड़ो सेना का सामना करने में राव प्रतापसिंह असफल रहे—

षिसे राव पातल कटक, जीते नृप दल जोय।

भाई-बंधुओं से परामर्श करने के बाद यह निश्चय रहा कि राजगढ़ लौट चलना चाहिए। इस सलाह को मानकर प्रतापसिंह राजगढ़ लौट आए—

'ताते सल्हा एक यह कीजे। चलन ठांम राजगढ़ कीजे॥
राज राजगढ़ राजई, पहौंचे राव प्रताप।
तब हलकारा षत दिये, सुणी भूप परताप॥

महाराज प्रतापसिंह की ६०,००० फौज ने हमला किया। मार्ग में सैंथल नाम का एक गढ़ फतह करते हुए बसवा पहुँचे। यहाँ बसवा को 'सहर' की संज्ञा दी गई है। आजकल बसवा एक साधारण कस्बा है। वहाँ पहुँच कर राजा ने खुशालीराम को युद्ध-संचालन की आज्ञा दी—

बसवो सहर सुनाम ठांम भूपति दल आयव।
नाम षुस्यालीराम निकट वर भूप बुलायव॥
कहै अैन मुष बैंन कहो जब अब प्रमान करि।
लै फौजे पचरंग संगि लडि लेहु राव धर॥
सुनत वचन मंत्री उठे करि सलाम भरि वहो बलन।
बजि त्रमाट विराट वर दिस पूरब कीनो चलन॥

मार्ग में पड़ने वाले स्थानों को सर करते हुए चले। ये बातें राव प्रतापसिंह ने भी सुनीं और साथ में बहुत-सी सेना लेकर युद्ध के लिए प्रस्तुत हुए। समाचार मंगलसिंहजी को भी मिला और वे महाराज प्रतापसिंह से मिलने चले—

मिलिये मंगल जाय भूप आदर अति कीनब।
पातिल राज प्रताप आप आसन उठि दीनब॥

मंगलसिंह की बातों से राजा प्रतापसिंह प्रसन्न हुए और कहा—

षुसी हुए नृप बचन सुनि, बहुरि जुवाब यों दीन।
देषन आए राजगढ़, देषि कहो सो कौन॥

'राजगढ़ तो हम देखेंगे ही[१]', और उस ओर प्रस्थान किया। थोड़ी लड़ाई भी हुई, परिणाम कुछ नहीं निकला—

रची राडि यतै वतै जुध भारी।
न की कोय जोते न को आत हारो॥
किले रावराजा करी यों लराई।
जुटो भूप फौजै सु बाजी न पाई॥

अंत में राजा ने षुस्यालीराम को बुलाकर कहा—राव प्रतापसिंह राज्य की अर्गला है, वह अपने घर में चैन से रहे। और अब—

बचन सला के अब लिष दीजै। राव कहै सोही तुम कीजै॥
दलन चलन जैपुर दिस होई। कीजो राव कहै अब सोई॥

राव प्रतापसिंह ने स्वीकार कर लिया और राजा के स्वागत[१] की तैयारी की[२]।

इस स्थान पर 'कंवर वषतेस' का नाम आता है। राव प्रताप के कोई पुत्र नहीं था, किन्तु उन्होंने अपने जीवन-काल में ही थाना के बख्तावरसिंह को गोद ले लिया था। ये ही प्रतापसिंह के पश्चात् अलवर के अधिपति हुए। कँवर बख्तावरसिंह को राजा की सेवा में भेजा गया और राजा प्रतापसिंहजी ने—

दीये बाजि गजराज सब सिरोपाव घर राज।
राज कवर कौं सीष दी नरपति करी निवाज॥

नवम प्रभाव : राजकँवर वखतेश राजगढ़ लौट आये और महाराज प्रतापसिंह ने जैपुर की ओर कूच किया।[३] सवाई प्रतापसिंह ने सं० १८८० वि० तक शासन किया और बख्तावरसिंहजी सं० १८७१ वि० तक अलवर की गद्दी

---

१. राजा ने यही कहा था—'देषन आए राजगढ़'।
मंत्री ने भी यही लिखा—'भूपति आये वारि आरि मिलिये सवेग अति' और परिणाम भी इसी प्रकार हुआ—

'चाय भाय भूपति मिले, नृपति षुसी की नीति।
बासाये साम्ही सुरति, राजकंवर की रीति॥

२. किन्तु इससे पहले यह तै हुआ कि 'मिलणो राजकवार को, भूपति के दरबार' अधिक उपयुक्त है।

३. राजकँवर राजगढ़ आये। बहोरि भूप दल कुंच बजाये॥

पर बिराजे। ये दोनों समकालीन थे।[1] इसी बीच किसी ने आमेरपति से 'हलद्या मंत्री' की शिकायत की कि वे अलवर से मिले हुए हैं। राजा ने तीनों भाइयों को बुलाया और फौरन कैद करने का हुक्म दिया।

देषंत भूप दीने हुकम कारंदा कर कैद किय।
आदि थांन आमेरगढ़ विकट ठाम घर घर दिये॥

राव प्रतापसिंह को भी समाचार मिला। ये तो उन्हें हमेशा अपना ही समझते थे. समाचार सुनते ही कहने लगे—

'काके हलद्या कोन नृप, पड़े फंद कहां जाय।'

और

बालिक जिम पाले त्रहु भाई। लघुता ते मैं किये बड़ाई॥
मेरे मेरे नांय विकांनें। दोय परा दिस च्यार रौ जानै॥

---

१. अलवर के बख्तावरसिंह और जयपुर के प्रतापसिंह दोनों ही कवि थे। बख्तावरसिंह ने कृष्ण की लीलाएँ लिखीं और प्रतापसिंह ने तो 'व्रजनिधि' नाम से अत्यन्त सरस रचनाएँ कीं। प्रतिभा की दृष्टि से दोनों ही काव्य-क्षेत्र में अच्छे स्थान के अधिकारी हैं। प्रतापसिंह के काव्य पर काम किया जा चुका है। बख्तावरसिंहजी की कुछ कृतियां मुझे अपनी खोज में प्राप्त हुई थीं। इनका कविता-काल १८५० समझना चाहिए। 'दानलीला' और 'श्रीकृष्णलीला' दो पुस्तकें विशेष महत्त्वपूर्ण हैं; जिनमें कृष्ण और राधा के नख-शिख तथा क्रीड़ा का वर्णन किया गया है। कुछ पद्य देखिए—

मंगलाचरण — विघन हरन मंगल करन, दुरद बदन इकवंत।
परस धरन असरन सरन, बुद्धि देव बर वंत॥

विनम्रता—काव्य रीति समुझौं नहीं, है मेरी मति मंद।
मैं तौ कछु जानौं नहीं, तुम जानौ गोविन्द॥

राधा के नख-शिख से चमकत चोंप चार चित चोषी।
दमकत दामिनि द्युति दुइ पोंची॥

कानन कुंडल कनक कलित है।
चारु तरोना चपल चलित है॥

उद्दीपन में वन-वृक्ष-पक्षी आदि—

तमाल ताल जाल और साल भांति भांति हैं।
फरास बांस पास जो पलास पांति पांति हैं॥

सिंगारहार झार तू तपावरा उदार है।
सुवर्ण जूथिका जुही जुही सुडार डार है॥

बोलें कपोत केकी कुलंग। कोकिला कीर सारों सुरंग॥
चातक सु चाष चंडूल चार। षगराज ग्वाल षंजन अपार॥

विशेष विवरण के लिए 'राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान' द्वारा प्रकाशित मेरा 'मत्स्य प्रदेश की हिंदी-साहित्य को देन' नामक शोध-प्रबन्ध देखें।

ज्याये तो मो हथ ही, मारूं तो मो हथ।
मो जीव तब न मारि है, नीढ़ि आप्रवत नथ॥

और हमदानी नवाब[1] को पत्र लिखा कि फौरन सेना सहित आओ। वह शीघ्र ही आ गया और दोनों की फौजें मिलकर जयपुर की ओर चलीं। राजा ने समाचार सुनते ही दरबार किया, परामर्श किया गया। निश्चय हुआ कि तीनों भाइयों को कैद से बुलाया जाय। आने पर—

अति महैमा मनुहार करि, कीनौ आदर भाव।
तिहुं बंधुन को नृपति नर, पहराये सिरपाव॥

राजा ने सारा भार इन्हीं पर छोड़ दिया।[2] ये लोग भी युद्ध को तैयार हो गए, किन्तु जयपुर की सेना जम नहीं सकी।[3] इसी बीच पटेल सिंधिया भी आ मिला और राव प्रताप की शक्ति बहुत बढ़ गई। निदान जयपुर ने जोधपुर को पत्र लिखा।[4] विजयसिंहजी राजा थे, उन्होंने शीघ्र ही अपनी सेना को हुकम दिया—

परतापराज आमैरिपति मिलो वेगि ता दलन तुम।

जयपुर और जोधपुर की सम्मिलित सेनाओं ने प्रस्थान किया। उधर सिंधिया पटेल व दक्षिणी सेना सहित राव प्रतापसिंह तैयार थे। परन्तु खुशालीराम ने एक चाल चली। वह दिल्ली की सेना में पहुँचा और अहमदानी से मिला।[5] नवाब प्रसन्न हुआ, कहने लगा—तुमने अच्छा किया जो यहाँ आए।[6] मंत्री खुशालीराम कहने लगे—आपने इधर आने का कष्ट क्यों किया? जो कुछ लेना हो, मुझसे ले लो और

---

१. 'अहमंदान नवाब' नजफ़खाँ के ४ सेनानायकों में सबसे अधिक धूर्त्त था। इसका पूरा नाम मुहम्मद बेग हमदानी था। यह मुगल सल्तनत के मीर बख्शी मिर्ज़ा नजफखाँ का बड़ा कृपापात्र था। यह जितना चतुर था, उतना ही धूर्त। इसके नीति-नैपुण्य और युद्ध [illegible]ियता के कारण मिर्जा नजफ़खाँ की मृत्यु (सन् १७८२ में) होने पर उसके अधिकांश अनुयायी इसके साथ हो गए)।

२. नरेस पेस लै यौ फुरमाई। कीनी ते करतार कराई॥
ये आये दिली दल भारी। यह मंत्री है वार तिहारी॥

३. समै राव मंत्रीस कीनी लराई। षिसी राज की फौज तर ताप षाई।

४. दल दिषणे बल सबल जाणि आमैरिनाथ नर।
मुरधरपति को लिषे लेहु षत येहु वंचि वर॥
हम घर तुम घर दाय आय यन कियो दुंद दल।
हम दल तुम दल संगि होय भंजैस मारि षल॥

५. करि सलाम मंत्री उठे स्याम काम कीनो चलण।
नाम षुस्यालीराम ते पहोंवे दिल्ली दलन॥

६. अहमंदान नवाब सूं, मिलिये मत्री जाय।
हंसि नवाब जैसे कहीं, भली कीन तुम आय॥

दिल्लो की ओर प्रस्थान करो—

बोले मंत्री बचन सुनाये। कौन काज तुम या घर आये ॥
लेंण होय सो मोसुं लीजं। बहोरि कूंच दिली दिस कीजं ॥

नवाब हँस कर कहने लगा—

जब नवाव असे कही, देहु लेहु नहीं दांम।
काम षुस्यालीरांम सूं, सदा षुस्याली राम ॥

मंत्री ने कहा, आप जो कहें, मैं करने को तैयार हूँ। नवाब ने खुशालीराम से दिल्ली चलने का प्रस्ताव किया और मंत्री तैयार हो गए। राव प्रताप भी साथ गए और—

ग़नीम मारि कीनो गरद, मिटे दिली दुष दंद।
राव लगे पतिसाह पग, दियो तषत सिर कंद ॥

बादशाह ने भी बहुत सम्मान किया और —

सिर सोंहन सिर पेंच दिय, जटत किलंगी हमाल।
सपत पारचे षिलत दिय, अरु समसेर दुसाल ॥

कुछ समय उपरान्त रावराजा ने दिल्ली से प्रस्थान किया और अलवर पहुँचे। किन्तु उन्हें चैन कहाँ ? आते ही जयपुर को पत्र लिखा—

रावराज अलवर गढ़ आये। षत भूपति कौं दिये पठाये ॥
(ये)षत बंचि नृपति अब लीजै। दंन कहे गढ़ च्यारिस दीजै ॥

राजा को बहुत क्रोध आया और उत्तर देने की अपेक्षा अपनी सेना को उधर भेजा। हलकारों ने समाचार दिया कि राजा की बहुत बड़ी सेना लछमनगढ़ पर पड़ी हुई है। रावराजा ने फौरन ही चढ़ाई की आज्ञा दे दी—

चढ़ो वेग ही सो सबै फोज सजो।
पगै मारि जा भूप की फौज गजो ॥

मंगलसिंह भी आ मिले, किन्तु दक्खिन के दल में फूट पड़ गई।[1] सिंधिया पटेल ने काफी कोशिश की पर सामना न कर सके और आमेरनाथ की विजय हुई। हार कर पटेल सिंधिया प्रताप के पास पहुँचा, उन्होंने बहुत धैर्य बँधाया[2], कहा—'तुम

---

१. फिरि गई पूठि दिषणी दलान।
२. वर पातिल बोले वचन, रहौ पटेल मन सेर।
जीत हार करतार हथ, करत न लागै वेर ॥

यहीं रहो और इस स्थान को अपना ही समझो।' इस प्रकार पटेल की सेना अलवर में आई। राजगोत आदि अनेक गढ़ों को अपने अधिकार में किया।

अन्त में राव प्रतापसिंह का समय आ गया। कवि लिखता है—

धर अमर नर कोन रहायो। आयो गयो गयो फिरी आयो॥

'इस पृथ्वी पर अमर कौन रहा है ?' यहाँ तो आवागमन लगा ही रहता है।[1] कवि ने अन्त बड़ा ही शान्तिपूर्ण दिखाया है—

रावराज यों वचन कहै, धरो चरन निज ध्यान।
पहर प्रात बैकुंठ धर, पातिल कियो पयांन॥

'कहर' पड़ गया। नर-नारी व्याकुल हो गए, किन्तु राजपूत रमणियों का शौर्य देखिये—

उर अनंद बीकावत राणी। सपत जनम अरधंगा जाणी॥

तथा—

सोला ओर बत्तीस सजी, मन कर अनत उमंग।
सती सकति बीकावती, जरीस पातिल संग॥

बख्तावरसिंह का राजतिलक हुआ।

कवि-परिचय

प्रस्तुत पुस्तक में कवि ने अपना परिचय नहीं के बराबर दिया है। प्रसंगवश इस पुस्तक में प्रथम प्रभाव का चौथा छंद—एक छप्पय, तथा नवम प्रभाव के अंतिम दो छंद—एक छप्पय और दूसरा एक दोहा, द्वारा ही कवि के संबंध में कुछ बातें जानी जा सकती हैं। ये तीनों छंद भी—दो छप्पय और एक दोहा—कवि ने अपने परिचय हेतु नहीं लिये हैं, वरन् पुस्तक लिखने का हेतु तथा अपनी अज्ञता बताने के लिए ही लिखे हैं। प्रथम प्रभाव का छप्पय इस प्रकार है—

तास तात के बंधु कवर मंगल व्रत धारिय।
जिन दीनो बल हुकम कहो कवि ग्रंथ उचारिय॥

---

१. कहा कैरु जरजोध कहां पांडौं रु पंचधर।
कह विक्रम कहां भोज. कहां बलि दान करन कर॥
कहां चकवै मंडली कहा रावरा बलवंता।
हटवारै ज्यों हरषि आय चलि गये अनंता॥
यों कहैं रावराजा वचन, मंत्री बन्धुन तास वर।
मिटै न लिषीयौ लाष बुध जो करणी करतार कर॥

अठारैसै संतीस साष संवत सो ह्वैयत।
पोष मास व'द तीज वार विसपत गुरु कहियत॥
चौपई छंद दोहा छपं, कथि जाचिग जीवन नाम है।
जुगम जोय वरनन करूँ जो कूरम कुल ठाम है॥

इस छप्पय से नीचे लिखी बातों का अनुमान लगाया जा सकता है—

(१) कवि का नाम 'जाचीक जीवण' है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि कवि का नाम यही था। पुस्तक के आरम्भ तथा प्रत्येक 'प्रभाव' के अन्त में यह नाम दिया गया है। हाँ, इस नाम को विभिन्न स्थानों में विभिन्न प्रकार से लिखा गया है—

पुस्तक के आरंभ में—'जाचिग जीवन'
पुस्तक के अंत में—'जाचीक जीवण' (अलवर-म्यूजियम की प्रति में)
'जाचिक जीवण' (श्री रमानन्द वाली प्रति में)
प्रथम प्रभाव के अंत में—'जाचिग जीवण'
द्वितीय ,, ,, — ,,
तृतीय प्रभाव के अंत में—'जाचीग जीवण'
चतुर्थ प्रभाव के अंत में—'जाचिक जीवण'
पंचम् प्रभाव के अंत में—'जाचिक जीवण'
षष्ठ प्रभाव के अंत में— ,,
सप्तम् प्रभाव के अंत में— ,,
अष्टम प्रभाव के अंत में—'जाचीक जीवण'

'जाचीक जीवण' अथवा 'जाचिक जीवण' की आवृत्ति अधिक हुई है, अतः इसी प्रकार नाम होना चाहिए। मैंने इन्हें 'जाचीक जीवण' नाम से संबोधित किया है।

नाम की वर्तनी में (क) ह्रस्व-दीर्घ का अंतर—जाचिक, जाचीक
(ख) अघोष-सघोष का अंतर—'क' 'ग' का अंतर
(ग) 'ण' 'न'-जीवण, जीवन

दो बातें विशेष उल्लेखनीय हैं। ह्रस्व-दीर्घ का विभेद लिपिकार ने बहुत कम किया है और इसीलिए कहीं इकार तथा कहीं ईकार मिलते हैं। अघोष का सघोष तथा सघोष का अघोष होना ध्वनि-परिवर्तन नियमों के अंतर्गत हैं। 'न' और 'ण' में विभेद कम पाया जाता है। राजस्थानी में 'न' को 'ण' काफी लोग

अब भी बोलते हैं, अतः 'जोवन' का 'जीवण' होना नितान्त स्वाभाविक है। अतः कवि का नाम 'जाचीक जीवण' अथवा 'जाचिक जीवण' था।

'जाचिग' शब्द का प्रयोग एक स्थान पर कवि ने और किया है—

जाचिग दसौं देस के आई। आये जुड़ जाचन कू जोई॥

(चतुर्थ प्रभाव)

यहाँ 'जाचिग' का प्रयोग बहुवचन में हुआ है और इसका संबंध संस्कृत के 'याचक' से है। इनके आने का कारण 'जाचन'—याचना करना बताया गया है। संभव है, इनका नाम इसी 'याचक' शब्द से संबंधित रहा हो। किन्तु इस विषय पर अधिक खींचतान करना कोई विशेष उपयोगी नहीं होगा।

इस नाम की आकृति देखकर और उसके अर्थ पर भी किंचित् विचार करते हुए राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के उप-निर्देशक श्री गोपाल नारायणजी बहुरा का मत है कि जाति से ये राणा ढोलिया रहे होंगे। वैसे भी कवि अपने को किसी उच्च वंश का नहीं कहता। जाचिक जीवण की स्थिति ऐसी महत्त्व की अवश्य थी कि कुंवर मंगलसिंह ने उनसे ही काव्य-रचना करने का अनुरोध किया।

(२) संवत् १८३७ तक कवि की प्रतिभा प्रकाश में आ चुकी थी। इसीलिए कँवर मंगलसिंह ने उन्हें 'कवि' नाम से संबोधित करते हुए 'प्रतापरासो' लिखने की आज्ञा दी। वैसे भी कवि की गतिशीलता देखकर यही प्रतीत होता है कि काव्य-क्षेत्र में इनकी पहुँच हो चुकी थी। एक संभावना यह भी हो सकती है कि जाचीक जीवण कँवर मंगलसिंह के आश्रित थे—

(क) कवि ने मंगलसिंह के आदेश पर काव्य-रचना की।

(ख) प्रसगानुकूल मंगलसिंहजी की बहुत प्रशंसा की गई है। उन्हें न केवल वीर ही बताया गया है, वरन् नीतिज्ञ भी। जब कभी प्रताप पर संकट आया, मंगलसिंहजी उपस्थित हुए।

(ग) 'काका कन्ह प्रवान' कहकर कवि ने अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा व्यक्त कर दी है।

(३) कवि का काव्य-काल १८३७ से बहुत पहले शुरू हुआ होगा। भाषा, भाव, व्यंग्य, ध्वनि, अलंकार आदि की दृष्टि से प्रताप-रासो एक अच्छी रचना है। संभवतः १०, १२ वर्ष से कवि कविता करते रहे होंगे। पुस्तक में १८४७ तक की घटनाओं का वर्णन है। अतः इन दस सालों में जहाँ कवि का 'प्रतापरासो' चलता रहा होगा, वहाँ अन्य कृतियाँ भी रची होंगी, किन्तु उनका

कोई पता नहीं चलता। हाँ, १८४७ तक कवि अवश्य ही विद्यमान थे और कुछ समय तो और रहे होंगे, अतः इनका कविता-काल १८२५ से १८५० तक माना जा सकता है।

अंतिम छप्पय और दोहा इस प्रकार हैं—

छप्पय : वरन हीन कुलहीन जाति आधीनवांन अति।
उंर विचारि यौं धारि अंक ये किये जोर वित॥
लघु दीरघ नही लहे चले सो कहो निगम गम।
मो मति अति अनुसार वार ये कहे बुधि सम॥
अरदास पतो कविजन सुनों जानौं नाहि न पूर कम।
लीजे सवारि कीजे क्रपा कवि पंडित परवीन तुम॥

दोहा : मैं सिष हौं तुम चरन कों, आठौं जाम अधीन।
परु पाय परनाम करि, कवि पंडित परवीन॥

इन पंक्तियों से जीवन-सामग्री तो कुछ नहीं मिलती, इनसे कवि की विनम्रता मात्र लक्षित होती है।

(१) 'वरन हीन कुल हीन ....' आदि के आधार पर कहा जा सकता है कि ये अद्विज थे और इनका कुल भी कोई विशिष्ट स्तर का न था। इसी के आधार पर, जैसा मैंने पहले कहा, कुछ लोग इन्हें राणा ढोलिया कह सकते हैं। इनका नाम भी कुछ इसी प्रकार का संकेत करता है। परन्तु ये सब कवि की अत्यन्त विनम्रता के द्योतक भी हो सकते हैं। तुलसी ने भी कहा था—'मेरे जाति पांति न..........'

(२) 'लघु दीरघ नहीं लहै.........', 'जानौं नाहि न पूर कम' आदि से पता लगता है कि इन्होंने काव्य-सिद्धान्तों का अध्ययन किया था और छंद-शास्त्र से परिचित थे। लघु-दीरघ का जो दोष इनकी कविता में मिलता है, वह लिपिकार का दोष ज्ञात होता है अथवा तत्संबंधी उदासीनता।

(३) जाचोक जीवरण कवियों के परम भक्त हैं—जैसा कि अन्तिम दोहे से प्रतीत होता है। कवि की अटूट श्रद्धा लक्षित होती है। इसी के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि कवि की गणना उस समय के प्रतिष्ठित कवियों में रही होगी।

पुस्तक के आधार पर कवि की स्वभाव-सम्बन्धी कुछ बातें कही जा सकती हैं—

(अ) साधारणतः, कवि विनम्र स्वभाव का है और कलाकार तथा पंडितों के प्रति उसकी बहुत श्रद्धा है। अपने दोष स्वीकार करने में उसे किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है, और अपने को बढ़ा-चढ़ाकर कहना तो उसकी वृत्ति के नितान्त प्रतिकूल है।

(आ) दरबारी कवि होते हुए भी कवि का तथ्य-कथन वास्तविकता से दूर नहीं जाता। घटनाएँ, स्थान, समय आदि के निर्देश निश्चित रूप से असंदिग्ध हैं। साथ ही कवि अपने भावों को व्यक्त करने में पक्षपात-रहित प्रणाली स्वीकार करता है। कुछ उदाहरण—

१. अलवर, डीग, कुम्हेर, आमेर, राजगढ़, बसवा, डेहरा आदि नगरों का वर्णन करने में कवि ने यह कभी नहीं सोचा कि ये स्थान अलवर राज्य के हैं अथवा अन्य राज्यों के।

२. व्यक्तियों के वर्णन में भी यही दृष्टिकोण है। हल्दिया बन्धुओं का वर्णन ही लीजिए। उनकी वीरता तथा राजनीतिक चातुरी की प्रशंसा भी की है और साथ ही उनकी कपट-नीति पर 'हराम' आदि शब्दों से रोष भी प्रकट किया है। जब भी ये लोग अपनी स्वामिभक्ति से विचलित हुए, कवि ने उन्हें क्षमा नहीं किया।

३. युद्ध में वीरता का वर्णन करते हुए सभी वीरों को समुचित स्थान प्रदान किया है—ये चाहे अलवर के हों, जयपुर के, भरतपुर के अथवा दिल्ली के मुसलमान व दक्षिण के मराठे हों। सिंधिया आदि के वर्णन भी इसी नीति के अनुसार हैं।

(इ) कवि उस समय की दरबार-परम्परा से पूरी तरह परिचित था। राजाओं का आपस में मिलना, खिलत आदि प्रदान करना, फौज की तैयारी, कूंच का सामान आदि सभी का वर्णन युक्तियुक्त है।

(ई) युद्ध-कौशल से भी कवि परिचित था। छत्तीस क्षत्रिय-कुलों के नाम, युद्ध में काम आने वाले विविध अस्त्र, फौज की तैयारी के समय अनेक संकेतों का देना, व्यूह-रचना, घेरा डालना, पड़ाव आदि के विस्तृत चित्र उपस्थित किए हैं।

(उ) जयपुर, अलवर, भरतपुर, दिल्ली, मरहठा राज्य—कवि ने सभी का अनुशीलन किया। वहाँ जो भी क्रिया-कलाप चला, उससे कवि ने

अपने को परिचित रखा और यथा-स्थान अपनी पुस्तक में उनका उल्लेख किया। पुस्तक-रचना सं० १८३७ में प्रारम्भ हुई और सं० १८४७ में समाप्त। इन दस वर्षों में जो भी ऐतिहासिक घटनाएँ हुईं तथा जिनका सम्बन्ध प्रतापसिंहजी से रहा, उनका विधिवत् उल्लेख किया गया है।

ऐतिहासिकता

प्रताप-रासो में नौ प्रभाव हैं और प्रत्येक प्रभाव में केवल एक ही महत्त्वपूर्ण घटना की चर्चा की गई है, जिससे कवि की प्रबन्ध-पटुता विदित होती है—

१. प्रथम् प्रभाव — माधवसिंहजी की सेवा से राव प्रताप का पृथक् होना,
२. द्वितीय प्रभाव— प्रतापसिंह का भरतपुर-राजा की सेवा में रहना,
३. तृतीय प्रभाव— मावड़ा युद्ध,
४. चतुर्थ प्रभाव — राजगढ़-स्थापना,
५. पंचम् प्रभाव — नजफखां के साथ दिल्ली की सेवा में,
६. षष्ठम् प्रभाव — लछमनगढ़ की लड़ाई,
७. सप्तम् प्रभाव — प्रतापसिंह की सुदृढ़ स्थिति,
८. अष्टम् प्रभाव — जयपुर-राजगढ़ के अच्छे सम्बन्ध, और
९. नवम् प्रभाव — प्रताप का स्वर्गारोहण।

(अ) इन सभी घटनाओं में जो मूल बातें हैं, जैसे कि प्रतापसिंह का (१) जयपुर नरेश, (२) भरतपुर नरेश, (३) बादशाह शाहआलम द्वितीय की सेवा में अपना कुछ समय व्यतीत करना—वे सभी इतिहास-सम्मत हैं और इनके विपरीत किसी भी स्थान पर कोई बातें नहीं मिलतीं। इतिहास के अनेक विद्वान्, पिछले रिकार्ड, जयपुर का इतिहास, जाट-जाति का इतिहास तथा तत्सम्बन्धी खोजें सभी इस बात की पुष्टि करते हैं।

(आ) प्रतापसिंह को जयपुर-नरेश तथा दिल्लीपति ने उपाधि[1] तथा सम्मान प्रदान किए। इसी प्रकार का उल्लेख सभी स्थानों पर मिलता है।

---

१. मुगल सम्राट द्वारा 'राजा बहादुर' का पद दिए जाने वाला परवाना इस प्रकार है — "...... ....प्रतापसिंह वल्द मोहब्बतसिंह मनसबे पंच हजारी जात व पंच हजारी सवार व खिताबे राजा बहादुर व अताये आलम व नक्कारा सर अफराज शुद वाके २ वहम शहर ...."

(इ) प्रतापसिंहजी ने अनेक किले अपने अधिकार में किए; राजगढ़ का किला, महल, भवन, वगीचे आदि बनवाये—इनकी पुष्टि भी हो जाती है।

(ई) कुछ तिथियाँ—पुस्तक में नीचे लिखी तिथियों का उल्लेख है—

१. अठारैसै सैंतीस—(सं० १८३७) यह रचना का प्रणयन-काल है, जव प्रतापसिंहजी राजगढ़ पर राज करते थे और उनके काका मंगलसिंह उनके पास रहते थे। प्रतापसिंह का शासन-काल सं० १८१३ से सं० १८४७ तक बताया गया है। (प्रथम प्रभाव)

२. संवत् १८२४ (सम चौवीसै साल) चतुर्थ प्रभाव—माधवसिंहजी का देहावसान-काल। "सम चौवीसै साल काल माधव महीप किय" इतिहास-प्रसिद्ध तथ्य है कि माधोसिंह प्रथम का राज्य-काल १८०२ वि० से १८२४ है। इनके पश्चात् इनके पुत्र पृथ्वीसिंह (पीथल) गद्दी पर बैठे।

३. सं० १८३२ (अठारैसै बत्तीस साष संवत परवानन) — पंचम् प्रभाव। अलवर लिए जाने की सुप्रसिद्ध तिथि। पहले अलवर का किला भरतपुर की अमलदारी में था। मुगलों को सहायता देने के फलस्वरूप जव आगरा जाटों से खाली करा दिया, तो अलवर प्रतापसिंह ने लिया।

४. अठारैसै पैंतीस सं० १८३५ (लछमनगढ़ की लड़ाई)—षष्ठम् प्रभाव। "लछमनगढ़ रासा" भी इसी तिथि का प्रतिपादन करता है[1]। इतिहास भी यही कहता है कि सं० १८३५ में नजफखाँ ने लछमनगढ़ घेरा, किन्तु परिणाम अनुकूल नहीं निकला।

५. अठारैसै षटतीस (सं० १८३६) — सप्तम् प्रभाव। राव प्रताप का नजफखाँ को छोड़कर राजगढ़ लौटना। इस तिथि का इसी रूप में प्रतिपादन कविराजा श्यामलदास ने अपने "वीर विनोद"

---

१. "लछमनगढ़ रासा" षुसाल कृत—
लछमनगढ़ अलवर के अंतर्गत रहा, जहाँ का वंश-वृक्ष इस तरह चलता है—उदैकरन, वरसिंह, नरूसाहि, लालोजी, उदैसिंह, लाड़षां, फतेसिंह, कलियानसिंह, अनंदसिंह, तेजसिंह, जोरावर, मोहब्बतसिंह, प्रतापसिंह सं० (१८१३-१८४७), वख्तावरसिंह (१८४७-१८७१), विनयसिंह सं० (७१-१९१४), शिवदानसिंह (१९१४-१९३१), मंगलसिंह (१९३१-१९४६), जयसिंह (१९४६-१९९४), तेजसिंह (१९९४-)।

में किया है—"विक्रमी सं० १८३६ के लगभग उसने (प्रतापसिंह ने) नजफखाँ, बादशाही मुलाजिम के पंजे से निकल कर लछमनगढ़ का आसरा लिया।"

तिथियाँ तो केवल इतनी ही दी हैं, किन्तु जिन घटनाओं का वर्णन किया गया है, उनका क्रम इतिहास से प्रतिपादित होता है। प्रमुख घटनाओं का विवरण पहले ही दिया जा चुका है।

प्रताप रासो में आए हुए प्रमुख व्यक्तियों के नाम इस प्रकार हैं :

१. कंवर मंगलसिंह—प्रतापसिंह के काका। युद्ध-कुशल, राजनीतिज्ञ, अन्य राजाओं द्वारा मान्य।

२. (अ) प्रतापसिंह—राजगढ़ के रावराजा प्रतापसिंह। राज्यकाल १८१३ से १८४७ वि०। सं० १८३२ से अलवर-अधिपति।
(ब) सवाई राजा प्रतापसिंह—आमेरपति, राज्यकाल १८३५-१८६० वि०

३. छाजूराम—प्रतापसिंह के मन्त्री, हल्दिया बंधुओं के पिता।

४. खुशालीराम, दौलतराम, नंदराम—हल्दिया बंधु।

५. माधवसिंह—आमेर-अधिपति, सं० १८०६ से १८३४ वि०।

६ गजसिंह—बीकानेर के अधिपति, सं० १८०२ से १८४४ वि०।

७. सूरजमल--भरतपुराधीश, सं० १८२० में परलोक सिधारे।

८ जवाहरसिंह—सूरजमल के पश्चात् भरतपुर के राजा।

९. विजयसिंह—जोधपुर-नरेश, राज्यकाल १८०६ से १८४४ वि०।

१०. हरसहाय, गुरुसहाय —मावड़ा-युद्ध में जयपुर की ओर से लड़े और काम आये।

११. दलेलसिंह—धूला के राव, तीन पीढ़ियों सहित युद्ध में मारे गए।

१२. सदाशिव भट्ट—जयपुर के युद्ध-संधि विग्राहक।

१३. समरू—फ्रांसीसी तोपची, भरतपुर राज्य की सेवा में था। मावड़े की लड़ाई में भरतपुर का सेवक।

१४. नजफखाँ—अलीगोहर-शाहआलम द्वितीय का प्रमुख सेनापति, राजस्थान के अनेक युद्धों में भाग लेने वाला। भरतपुर, जयपुर, अलवर आदि के राजाओं से संपर्क।

१५. हमदानी—मोहम्मद बेगखाँ हमदानी, नजफखाँ का प्रमुख सहायक।

१७. पटेल सिंधिया—संभवतः माधोजी सिंधिया, जो इतिहास के अनुसार जयपुर से हार कर अलवर की शरण में रहा और कुछ दिनों बाद चला गया। प्रतापरासो में भी यही वृत्तान्त आता है। माधोजी नाम नहीं मिलता। 'हलद्याजी की हांक सों सिंध्या भाग्यो जाय' अब भी प्रचलित है। जयपुर द्वारा सिंधिया का बुरी तरह हराया जाना प्रसिद्ध है।

१८. रावसेवक, मोजीराम, जीवनषाँ, शेख होशदारखाँ—रावप्रताप के सेनानायक तथा मुसाहिब।

१९. नवलसिंह—भरतपुर-नरेश के अभिभावक सन् १७६८ से १७७६ ई० तक। कवि ने इन्हीं को राजा माना है।

२०. अनूपगिरि गोसाईं—लछमनगढ़ में नजफखाँ के साथ उस समय का एक अवसरवादी राजनीतिज्ञ।

२१. वख्तावरसिंह—अलवर के दूसरे नरेश, समय सन् १७९० से १८१४ तक (१८४७-१८७१ वि०)।

२२. रतनराय तथा रोड़ाराम षवास—जयपुर-नरेश के दो प्रमुख मंत्री। खवासजी की बड़ी हवेली अभी तक जयपुर में है।

२३. रानी बीकावती—राव प्रतापसिंह की रानी। पति के साथ सती हो गई।

२४. राजसिंह व फीरोजखाँ—आमेर-नरेश से मिलकर राव प्रताप से लड़े।

२५. चावडदान—चारण—'चारण चाहि चावडदान' युद्ध में भाग लेने थानागाजी छोड़ कर गए और रावराजा का साथ दिया। थानागाजी में जागीरदार।

उक्त सभी नाम ऐतिहासिक हैं। कल्पित नाम एक भी नहीं मिलता।

इसी प्रकार स्थानों के नामों का भी इतिहास के द्वारा प्रतिपादन होता है। कुछ नाम इस प्रकार हैं —

१. अजुध्या—कछवाहों का आदि स्थान—'आदि अजुध्या धाम है'।

२. काशमीर—कछवाहों की जो तीन शाखाएं चलीं, उनमें एक

काश्मीर में भी है[१]।

३. ग्वालियर नरवर—'सिवर ग्रप ग्वालेर नलस नरवल निकासै।'

४. ढुंढाहड़—आमेर देश 'धरा ढुंढ़ाहड़'।

५. आमेर—'प्रथम पुत्र नरसिंह नृप आमैरि वषानिय'।

---

१. तंवर के इतिहास से—

१. नारायण, २. ब्रह्मा, ३. मरीचि,·······६८. राम, ६९. कुश, ७०. अतिथि, २०३. पद्मपाल, २०४. भीमपाल, २०५. नथपाल, ·······२२५. सुमित्र, २२६ मधुब्रह्म, २२७. कान्हीक, २२८. देवोन्हीक, २२९. ईशोसिंह, २३०. सोढ़देव, २३१. दूल्हेराय, २३२. काकिलजी, २३३. हणूजी, २३४. जान्हड़देव, २३५. पजवनजी, २३६. मलेसीजी, २३७. बीजलदेव, २३८. राजदेव, २३९. कील्हणदेव, २४०. कुन्तलजी, २४१. जोणसीजी, २४२. उदयकरणजी

जयपुर	अलवर	जम्मू
२४३. नृसिंहजी	वरसिंहजी	
२४४ बनवीर	महीराज	
२४५. उद्धरण	नरूजी	
२४६. चन्द्रसेन	लालोजी	
२४७. पृथ्वीराज		
२४८. पूर्णमल	उदयसिंह	
२४९. भीमसिंह	लाडसिंह	
२५०. रत्नसिंह		
२५१. आसकर्ण	फतेसिंह	जगमालजी
२५२. भारमल	कल्याणसिंह	रामचन्द्रजी
२५३. भगवन्तदास		
२५४. मानसिंह I	अनन्तसिंह	सूमेहलदेव
:		संग्रामसिंह
२५५. भावसिंह	तेजसिंह	हरीदेव
२५६. जयसिंह I	जोरावरसिंह	पृथ्वीसिंह
२५७. रामसिंह I		
२५८. किशनसिंह	मोहब्बतसिंह	गजेसिंह
२५९. जयसिंह II	प्रतापसिंह	ध्रुवदेव
२६०. ईशरीसिंह	वख्तावरसिंह	सुरतसिंह
२६१. माधोसिंह I	विनयसिंह	जोरावरसिंह
२६२. पृथ्वीसिंह		
२६३. प्रतापसिंह	शिवदानसिंह	किशोरसिंह
२६४. जगतसिंह		गुलाबसिंह
२६५. जयसिंह III	मंगलसिंह	रणवीरसिंह
२६६. रामसिंह II	जयसिंह	प्रतापसिंह
२६७. माधोसिंहI		हरीसिंह
२६८. मानसिंह II	तेजसिंह	करनसिंह

६. मौजमाबाद 'थान मोजाद सुजानिय'।
७. अमरसर - 'वालो त्रियो सुनाम ठाम अमरसर अषिय'।
८. नीदरगढ़—'सिव चोथो सिवब्रह्म ठाम नीदरगढ़ दषिय'।
९. लुहारू—'लुहारै'।
१०. उणियारा—'गढ़ उनियारै ठोर'।
११. रणतभवर—रणस्तंभवर—रणथंभोर—'आये अपदल राषि कै, रणतभवर गढ़ ठाम'।
१२. राजगढ़—प्रतापसिंह द्वारा निर्मित—'डेरास राजगढ़ ठाम दीन'।
१३. हणवंत थान—(खेड़े के हनुमानजी) 'हनवंत थाम गिरवर निकट कीने मुकाम परथम दिवस'।
१४. खोहरा—'ठाम षोहरा नाम ठाठ अमरेस पाट भनि'।
१५. छिलोहड़ी – 'छतो छिलोहड़ि ठाम'।
१६. बीजगढ़—'वर विजोग संगी भये तज्यो वीजगढ़ थान'।
१७. जावली—अलवर जिला के अन्तर्गत—'ढलि डेरा गढ़ जावली पातिल उतरे आय'।
१८. दीघ (डीग, दीग) महाराज सूरजमल की राजधानी—
'तहां इन्द्र पुर सो ठांम। तन नगर दीघ सुजाम ॥'
१९. डहरा—'भरतपुर जिले में—'नगर सु डहरा नाम ठांम कह्यित अति भरिय'।
२०. दिल्ली—मुगल बादशाह की राजधानी—'रुहला नजीम दिलो समझि'।
२१. कुरुक्षेत्र—रणस्थल, 'कुरुछेतर मधि राड मचाई'।
२२. मुरधर-मारवाड़—'मुरधर हुंडै मोड' राठौड़ों की राजधानी।
२३. पुष्कर (पुहकर)—'दीपदान आ देषियों हम तुम पुहकर मिलंन'।
२४. कामां—'प्रगना येक कामां सुठाम'।
२५. षोहरि—'दूजैस षोहरि कहत नाम'।
२६. मावड़ा—'जयपुर-भरतपुर' की लड़ाई का क्षेत्र।
'रच्यो मावड़ै षेत दल दो विरुधं। वतै जट जोहार दल भूपजुधं'।
२७. लोलई—'लीलई गाँव सुठाम तहाँ छति छये नृपति दल'।
२८. बीकानेर – 'यों सुन बीकानेर नृप, गजै (गजसिंह) आप उर धारि'।
२९. जयनगरा—'पीथल राव जयनगरा आये'।

३०. थानागाजी—'थानगाज' सो राजई, पातिल उतरे ग्राय'।
३१. से ३४. पलवा, ज्याढ़ो, पेषवाई, राजलिया—'चत्र ठाम के बंधु'।
३५. कांकवारी—'नाम कांकवारी गढ़ थानो। ता दिस पातिल कियो पयानो'।
३६. ग्रलवर—ग्रलवर साहि नगर सुनांम। वंके किला विकट सु ठांम'॥
३७. से ५७. शेरगढ़, नौगांवा, रामगढ़, पीपड़षेड़ा, गुजावली, हणवंतगढ, बहादुरपुर, हयगढ़, केसरोली, बांबोली, मोजपुर, जामडोली, राजपुर, सैथल, ग्रजबगढ़, बिजैपुर, बसई, गनदागिरा, पृथ्वीसिंहपुर, मालाषेड़ा, ग्रादि............ राजगढ़ के ग्रन्तर्गत स्थान। सभी गाँव ग्रलवर जिले में हैं।
५८. लछमनगढ़—'लछमनगढ़ रासा' का प्रमुख स्थान। 'लछमनगढ़ गढ़ लरनि की, रची बात निधान।'
५९. बरसाना—'बर वरसाने षेत जीति चलियेस जोम भरि'।
६०. पहाड़ी · 'ग्राम लूट पहारी लाये', भरतपुर के उत्तर में।
६१. ककरा—कोस तीन दल नजब के, कहित कक़रा नाम'।
६२-६४. काबिल, खंदार (क़न्दहार) मुलतान—प्रसंगवश।
६५. घाटा—'डेरा दीन सुघाट'।
६६. जयपुर—'ग्रलवर पतिसाहि वाहि जैपुर दिस ध्यायव'।
६७. बसवा—बसवो सहर सुनाम ठांव भूपति दल ग्रायव'।
६८. धूला—'ग्रायेस धकि धूलै स ठांम।'
६९. ग्रजबगढ़—'बहुरि कूंच पातिल दल कीने। डेरा ग्राय ग्रजबगढ़ दीने॥'
७०. जामडोली—'नाम जामडोली निकट, स जीति लड़ाई ठांम।'

प्रतापरासो में राजपूतों के विभिन्न वंशों ग्रौर कुलों[१] का कई स्थानों पर उल्लेख हुग्रा है—

१. हमीरदेका—कुंतल के पुत्र हमीर के वंशधर।
२. मानसिंहोत—ठि० पाडे।

---

१. टॉड का लिखना है—
"जाटों का वंश राजस्थान के छत्तीस राजवंशों में एक था। उस वंश का बाद में पतन हुग्रा, लेकिन पराधीन होने के बाद भी जाटों ने सदा स्वाधीन होने की चेष्टा की।"

३. स्योब्रह्मपोता—श्योब्रह्म के वंशधर—नीदड़।
४. षगारोत—खंगारजी के वंशज—जोबनेर। शेखावतों के बाद यही वंश प्रसिद्ध है।
५. नाथावत—सामोद, चौमूं, अलीराजपुरा आदि ठिकाने।
६. कलियानवोत्त—ठि० कालवाड़।
७. कुम्भावत्त—ठि० महार। पृथ्वीराज के वंशज, १२ कोठड़ियों में से।
८. सूरसिंहोत—भगवंतदास के वंशज।
९. चत्रभुजोत—ठि० वगरू, पीपला आदि।
१०. धीरावत्त।
११. जोगी कछवाहा—रूपसिंहजी जोगी हो गए थे, फिर गृहस्थ हुए। इनके वशज 'जोगी कछवाहे' कहलाये। ठि० बघेलखंड।
१२. वाकावत—ठिकाना लवाण। किसी समय राजा कहलाते थे।
१३. पचाणोत—पचाणजी के वंशज, ठि० सांभर्या, सामोद।
१४. वलभद्रोत—ठिकाना अचरोल। इतिहास में प्रसिद्ध वंश। अन्य स्थान—मावड़ा, माडोली, रनतभंवर, फागी, आदि।
१५. सुलताणोत—ठि० सूरोठ।
१६. कुभाहण—कुंभाणी-कुम्भाजी के वंशज, ठिकाना वासखोह।
१७. राजधरका, १८. यादव, १९. सोढा, २०. तंवर, २१. पंवार, २२. राठोड़, २३. गौड़, २४. बड़गूजर, २५. निर्वाण, २६. चौहान, २७. गहलोत्त, २८. षीची, २९. सीसोद्या, ३०. नरवर के कछवाहे
३१. झामावत (झामवोत) मछड़, रायपुरा (जालोन) गाँव के।
३२. कीकावत।
३३. राजावत—सलहड़ी के।
३४. चंदेल।
३५. शेखावत।
३६. हाड़ा।

इस प्रकार अनेक राजपूत कुलों के नाम प्रतापरासो में आए हैं। इन सभी कुलों की ऐतिहासिकता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। प्रायः सभी कुलों के वंशज विविध स्थानों में आज भी पाये जाते हैं।

सेना

सेना के सम्बन्ध में कवि ने (१) पैदल, (२) घोड़े, (३) हाथी, (४) तोपों आदि का वर्णन किया है। संख्या बताते समय कवि ने यथावत् संख्या देने का भी प्रयत्न किया है—लाखों, करोड़ों कहकर पुस्तक की ऐतिहासिकता नष्ट नहीं की। दो संख्याएँ कवि ने कई स्थानों पर दी हैं—"असी सहस" "साठ सहस" सेना की ये संख्याएँ इतिहास-प्रमाणित हैं। जयपुर की सेना ५०-६० हजार का होना सभी जगह सिद्ध होता है, इसके अतिरिक्त सहायतार्थ आई फौजों से ८० हजार तक हो जाना स्वयंसिद्ध तथ्य है। इतिहास में वर्णित एक प्रसंग—जोधपुर राज्य का इतिहास (गहलोत) के आधार पर संख्या इस प्रकार दी गई है—

५०,००० आमेर की सेना,
१०,००० दक्षिणियों की,
३,००० उदयपुर की,
३,००० कोटा की।

घोड़ों की अनेक किस्में बताई गई हैं, जैसे—तुरकी, खदारी, कच्छी आदि। तोपों के भी तीन-चार प्रकार आते हैं, जैसे—रामचंगी, जमूरा, जजालैं आदि। हाथियों के प्रकार कहीं नहीं बताये गए हैं। इन सब वृत्तान्तों में किसी प्रकार के सन्देह का स्थान नहीं है। प्रतापरासो में आए हुए प्रसंगों को नीचे लिखे प्रामाणिक वृतान्तों से मिलाइए—

मुरक्के अलवर (हिन्दी में अनूदित) से उद्धृत

"(क) जब प्रतापसिंहजी दीघ की ओर गये, तो जब उनके डेरे रसिया की डूंगरी पर पड़े थे, नजफखाँ ने, व अगवाये खुशालीराम, जो प्रतापसिंहजी से नाराज होकर इस ओर चला आया था, लश्कर को कत्ल करके सामान लूट लिया।

(ख) खुशालीराम सन् १२०२ हि० (सम्वत् १८४०) में रईस जयपुर को राजगढ़ पर चढ़ा लाया। प्रतापसिंहजी ने लड़ाई का समय न देखकर इन्होंने इसके लिये खुशालीराम से कहा-सुनी करी। उसने ऐसा ढंग डाला कि जयपुर-नरेश ने उलटा लौटना ही गनीमत समझा।

(ग) खुशालीरामजी जयपुर का रहने वाला जाति का खण्डेलवाल बनिया था और हल्दी के व्यापार से इनका लक़ब हल्दिया हुआ। लक्ष्मी की भी इन

पर कृपा थी, चुनाचे राव बहादुर दौलतराम जद्दे खुशालीराम शख्स नामवर हुआ। पहले तो वकालत जयपुर का काम किया था, फिर दिल्ली सम्राट की शुभ-चिन्तकता में नाम कमाया। जहाँगीरशाह ने जागीर शाहजहाँपुर, जो अब हल्के रेवाड़ी में है, उसको मरहमत की और बजरिये इस इनायत के कमाल इज्जत दी। इससे जयपुर में भी इसका बड़ा आदरभाव हुआ और यहाँ तक जयपुर रियासत का ये ताजामी सरदार हुआ। इनकी सन्तान प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध हुई और तलवार से रणक्षेत्र में कुशलता तथा विजय प्राप्त करने उनके सन्तत हौसला रहा।

यह राव खुशालीराम का ही काम था कि उसने बुनियाद इस रियासत को जमाया, जब इसमें उनका अनादर किया, तो उसका मजा चखाया। राव हरबख्श, बख्शीहाल और राज अलवर उसी खानदान से हैं और ताजीम व तकरीम में वैसे ही आनबान से हैं।

३० वाँ पृष्ठ

सम्वत् १८३५ में भरतपुर के जीतने के पश्चात् नजफखाँ का दिल बिगड़ा और लक्ष्मणगढ़ पर चढ़ आया। महाराव राजाजी प्रतापसिंहजी ने कुंवर मंगलसिंहजी, शिवसहायजी और छाजूरामजी मन्त्री को दुर्ग की रक्षा के निमित्त लक्ष्मणगढ़ भेजा था। इन्होंने बहुत अच्छा प्रबन्ध किया। जिस समय नजफखाँ की फौज ने लक्ष्मणगढ़ का घेरा दे लिया, उस समय छाजूरामजी मंगलसिंहजी अन्य सैनिकों से कहने लगे कि "भाइयों ! संसार में मनुष्य का जन्म बार-बार नहीं होता—शरीर अनित्य है—माँ के दूध को लजाना कायरों का काम है—तुम सब जगह प्रसिद्ध हो रहे हो। आज भी यवनों को अपनी कठिन कृपाण से भयभीत करके विजयनक्कारा बजाओ।" फिर क्या था सिपाही लोग जोश में आ गए, उनके रोम-रोम में वीर-रस छा गया और ऐसे वीरता के साथ लड़े कि मुसलमानों के पंजे उखड़ गए।

३१ वाँ पृष्ठ

ऊपर लिखी लड़ाई में जब नजफखाँ पराजित होने को था तो उसने गुसांइ अनूपगिरी, उमरगिरी द्वारा संधि होने का विचार प्रगट किया। महाराव राजा प्रतापसिंहजी ने इसके लिए खुशालीरामजी को अपनी तरफ से भेजा। खुशालीरामजी ने वहाँ पहुँच कर दोनों ओर का विघ्न मिटा कर शान्ति स्थापित की।

३२ वाँ पृष्ठ

डीग पहुँच कर नजफखाँ ने खुशालीरामजी को बुलवाया और कहा कि हम एक बार प्रतापसिंहजी से मुलाकात करना चाहते हैं। खुशालीराम ने यह सूचना पत्र द्वारा रावराजाजी के पास भेज दी। रावराजाजी साहब अपने सरदारों समेत डीग जाकर नजफखाँ से मिले।

३३ वाँ पृष्ठ

सं० १८३६ में नजफखाँ ने खुशालीराम से कहा कि अलवर का किला हमको दिलवा दो। खुशालीरामजी ने यह स्पष्ट उत्तर दे दिया कि यह नहीं हो सकता। परन्तु जब नजफखाँ ने अत्यन्त उत्सुक होकर यह लोभ दिखाया कि मैं तुमको अपनी फौज का सेनापति बनाऊँगा, तो खुशालीरामजीं ने अपने परिवारियों (दौलतराम, नन्दराम और छाजूराम) को बुला लिया। ये अपनी जगह छोड़ कर खुशालीराम के पास चले गए। खुशालीराम ने नजफखाँ की नौकरी कर ली।

३५ वाँ पृष्ठ

नजफखाँ ने खुशालीरामजी को अपनी सेना का हरवल बनाया। वे सेना लेकर व मुकाम घाट आ कर ठहरे। घाट से अपनी सेना की बाग थानागाजी की तरफ मोड़ी। थानागाजी का दुर्ग विजय करके खुशालीराम की समत्यानुसार सेना अलवर की ओर चली। पहला मुकाम कुशालगढ़ हुआ। एक दिन बीच में और ठहर कर तीसरे दिन बाम्बोली में डेरा डाला। प्रातःकाल ६० हजार सेना के साथ हरवल बनकर खुशालीरामजी अलवर की ओर चले। नजफखाँ भी साथ था। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ और इस युद्ध में खुशालीरामजी घायल हुए। नजफखाँ ने शिकस्त खाई।

३७ वाँ पृष्ठ

नजफखाँ हार कर दौलतराम, नन्दराम और खुशालीराम को साथ लेकर दिल्ली चला गया और तीनों हल्दिया थोड़े ही दिन पश्चात् दिल्ली छोड़ कर जयपुर चले गए। जयपुर-नरेश ने इनको अपना पेशवा बनाया।

३८ वाँ पृष्ठ

थोड़े दिनों पश्चात् दौलतराम और खुशालीराम बहुत-सी सेना लेकर जयपुर की ओर से राजगढ़ पर चढ़े। पहला मुकाम धौले हुआ। दोनों

ओर से लड़ाई होने पर जयपुर की सेना व्याकुल हो उठी। जयपुर-नरेश ने खुशालीरामजी से सहमत होकर रावराजा को शान्ति-पत्र लिखा भेजा। राव-राजाजी ने पत्रानुसार शान्ति करी और उसकी इत्तला वापिस जयपुर भेजी।

इस घटना के थोड़े ही दिवस पश्चात् किसी व्यक्ति ने जयपुर-नरेश को चुगली खाई कि यह हल्दिया रावराजाजी से मिले हुए हैं। इस पर इनको कैद किया। रावराजाजी यह सूचना पाते ही आग-बबूला हो गए और नव्वाब अहमदानी को फौज समेत बुलवाकर अचानक जयपुर पर जा चढ़े। वहाँ बड़ी घबराहट मची। सब लोग कहने लगे—इन हल्दियों के कारण ऐसा हुआ है। सभा करके जयपुर-नरेश ने इनको मुक्त किया और तीनों भाइयों को सीरोपाव पहना कर कहने लगे कि इस आफत को टालो। हल्दिया फ़ौज लेकर युद्ध-क्षेत्र में आ जुटे, अन्त में जयपुर की सेना हार गई।

उन्हीं दिनों में पटैल सैंधिया हिन्दू धरा से कर उगाने लगा और बहुत-से राजाओं को परास्त करता हुवा जयपुर के निकट पहुँचा। दौलतरामजी जयपुर की ओर से लड़े, सैंधिया हार गया।

जब दिल्ली में गड़बड़ मच गई, खुशालीरामजी जयपुर महाराज की आज्ञा से तथा अहमदानी के अनुरोध से दिल्ली को ओर गये। मार्ग में रावराजाजी की सेना भी सम्मिलित हो गई। इन्होंने दिल्ली गनीम को हराया। दिल्ली-सम्राट ने प्रसन्न होकर कलंगी माला, शमशेर, दुशाला, रत्नजटित सरपेच दिये।

छाजूरामजी हल्दिया तथा उनके तीनों पुत्रों के जीवन से संबंधित प्रमुख ऐतिहासिक घटनाएँ

छाजूरामजी

१. संवत् १८२९ अर्थात् सन् १७७२ ई० में माचाड़ी के राव की ओर से रसिया की डूँगरी पर युद्ध किया।

२. संवत् १८३५ अर्थात् सन् १७७८ ई० में नजफखाँ ने लछमनगढ़ पर चढ़ाई की थी, उस वक्त छाजूरामजी वहीं थे और युद्ध में विजय प्राप्त की। इस अवसर पर इनके दो पुत्र—खुशालीराम तथा दौलतराम भी साथ थे।

३. संवत् १८४५ अर्थात् सन् १७८८ में इनकी मृत्यु सोरों घाट पर हुई। कहते हैं, ये बड़े योगी थे, और सोरों में जब ये योग-साधना कर रहे थे, तब

ब्रह्मांड फट जाने से स्वर्गगामी हुए। उक्त स्थान पर इनका बनाया हुआ रघुनाथजी का मंदिर तथा इनकी छत्री अभी भी मौजूद हैं।

खुशालीरामजी

(क) तारीखवार घटनाएँ—

१. संवत् १८२४ अर्थात् सन् १७६७ में जयपुर-नरेश की ओर से भरतपुर के महाराज जवाहरसिंह से युद्ध किया तथा विजय प्राप्त की।

२. संवत् १८२९ अर्थात् सन् १७७२ में माचेड़ी के राव प्रतापसिंह की ओर से जयपुर-नरेश के विरुद्ध लड़े और विजय प्राप्त की।

३. संवत् १८३० में नजफखाँ की तरफ से भरतपुर के महाराज नवलसिंह से लड़कर विजय पाई।

४. संवत् १८३२ मगसर सुदि ३ को इन्होंने जयपुर-नरेश महाराज प्रतापसिंहजी को माचेड़ी पर चढ़ाया और माचेड़ी का किला फतह किया।

५. संवत् १८३२ में नजफखाँ की तरफ से भरतपुर के महाराज रणजीतसिंह से युद्ध किया और फतह पाई।

६. संवत् १८३५ में जब नजफखाँ लछमनगढ़ पर चढ़ आया, तब इन्होंने नजफखाँ तथा माचेड़ी के राव प्रतापसिंह में संधि कराई।

७. संवत् १८३५ में नवाब अबदुल अहमदखाँ दिल्ली के बादशाह को लेकर जयपुर पर चढ़ आया। तब जयपुर-नरेश ने इनको खास रुक्का भेजकर बुलवाया। ये आगरा से नजफखाँ की एक लाख फौज लेकर जयपुर आए। नजफखाँ की मार्फत बातें तै कराकर बादशाह के हाथ से जयपुर-नरेश को टीका कराया, सिरोपाव पहनवाया और नारनोल, कोलूठा, बागड़ परगनों की उठंतरी कराई। इस पर जयपुर-नरेश प्रतापसिंहजी ने इनको दिल्ली में अपनी ओर से वकालत पर भेज दिया।

८. संवत् १८३५ में दिल्ली के बादशाह शाहआलम द्वितीय के दरबार में ये लखनऊ के नवाब आसफुद्दौला तथा उदयपुर के महाराणा की ओर से भी वकील थे।

९. संवत् १८३६ में भाटिया की लड़ाई में लड़े। इस लड़ाई में पुनः बादशाह के हाथ से जयपुर-नरेश को टीका कराया।

१०. संवत् १८३६ में जयपुर-नरेश की तरफ से मुरतजाखाँ भड़ेच से श्यामजी की खाटू की लड़ाई में लड़े और फतह पाई।

११. इसी वर्ष इन्होंने नजफखाँ की नौकरी कर ली। नजफखाँ ने इन्हें अपनी सेना का हरवल बनाया तथा इनको दिल्ली ले गया।

१२. संवत् १८२६ में जयपुर की तरफ से माचेड़ी वालों से राजगढ़ में लड़े और विजय पाई।

१३. संवत् १८४१ अर्थात् सन् १७८४ की ता० १५ नवम्बर को आगरे में लक्खी के हाथ से छुरे से मारे गए। यह घटना गाँव सैयदपुरा (कनवा से पश्चिम की ओर) फतहपुर सीकरी, आगरा में हुई और वहीं इनकी छत्री मौजूद है।†

(ख) बिना तारीख की घटनाएँ—

१. दिल्ली के बादशाह ने इन्हें राव बहादुरी का टाइटिल दिया था। यह फरमान शाहआलम द्वितीय का है।

२. दिल्ली के बादशाह ने इन्हें शाहजहाँबाद, शाहजहाँपुर तथा औरंगाबाद परगने दिए थे, जिनकी आमदनी ११ लाख थी। सप्त हजारी मनसब, पाँच हजार सवार, तोप, नक्कारा, झालरदार पालकी, हाथी, सिरोपाव, माही-मुरातब भी दिए थे।

३. जयपुर, जोधपुर, माचेड़ी, उदयपुर, इन्दौर आदि राज्यों की सेवाएँ भी की थीं, जिसके फलस्वरूप जागीर, हाथी, सिरोपाव आदि प्राप्त किए।

४. लोहागर‡, गंगापुर में कई मन्दिर बनवाए, जो अब भी हैं। गंगापुर का पहला नाम कुशालगढ़ इन्हीं के नाम पर था। गंगाजी तथा गोपीनाथजी के मंदिर व दूंदेश्वर महादेव-कुंड इन्हीं के बनवाए हुए हैं।

५. जयपुर तथा अलवर राज्य के ताजीमी सरदार थे।

६. कई दफा जयपुर-नरेश इनसे नराज़ हुए और इन्हें नाहरगढ़ किले में कैद किया। साथ ही अनेक बार प्रसन्न हो कर इन्हें ऊँचे पद प्रदान किए।

७. खुशालीराम बोहरा (राजा) से कई बार इनका झगड़ा हुआ और इसी कारण इनके जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव देखे गए।

८. जयपुर-नरेश के दरबार में रोड़ाराम खवास, फीरोज़ महावत, रसकपूरी वेश्या तथा रनवास की रूपा बड़ारण से इनकी खटपट चलती रहती थी,

†इस घटना का उल्लेख डेविड एण्डरसन व जेम्स एण्डरसन के मुन्शी खैरुद्दीन इलाहाबादी ने अपनी पुस्तक में किया है।

‡लोहागिरि तीर्थ—जहाँ परशुरामजी ने तपस्या की थी।

परन्तु इन्होंने किसी की परवाह नहीं की। इसी कारण इनको कई बार कष्ट भी उठाने पड़े।

९. पहले माचेड़ी के राव के नौकर थे। जयपुर-राज्य में भी अनेक पदों पर काम किया। जयपुर-राज्य के दीवान भी हुए। कहा जाता है, दीवान पद पर आसीन कराने में बोहरा खुशालीराम ने इनकी सहायता की, पर इन्होंने बोहराजो के ही विरुद्ध कार्य किए। इस प्रकार को अवसरवादिता कई बार देखी गई। हो सकता है, इसो कारण कई स्थानों पर इन्हें 'दगाबाज़ हल्दिया' लिखा गया हो।

१०. जयपुर-नरेश की आज्ञा से दिल्ली के बादशाह की मदद की और वहाँ से कलंगी, माला, तलवार, दुशाला तथा रत्नजटिल सरपेच द्वारा पुरस्कृत हुए।

११. भरतपुर के महाराज जवाहरसिंह के पास भी काम किया।

१२. माचेड़ी के राव से नाराज होकर नजफखाँ के पास चले गए।

१३. इनके तीन पुत्र थे—

१. चतुरभुजजी,

२. रामलालजी (लाओलाद फोत हुए),

३. बालमुकन्दजी (नन्दरामजी के गोद गए)।

दौलतरामजी

(क) तारीखवार घटनाएँ—

१. संवत् १८२२ में माचेड़ी के राव प्रतापसिंह के साथ मावड़ा-युद्ध में ५०० सवारों के साथ भरतपुर की फौज पर हमला किया।

२. संवत् १८३५ में जयपुर-नरेश ने इनको मुसाहिब का काम दिया।

३. संवत् १८३५ में लछमनगढ़ ताल्लुका इनका था। उस समय माचेड़ी के राव ने हिसाब-किताव के बारे में नाराज़ होकर अपने हाथ से इनके मुँह पर तमाचा मारा। ये नाराज़ होकर अपने परिवार सहित मथुरा और बाद में डीग (रियासत भरतपुर) चले गए। वहाँ से एक लाख फौज नज़फखाँ से ली और रसिया की डूंगरी पर हमला किया।

४. संवत् १८३९ में इनका विवाह हुआ बताया जाता है, परन्तु यह ज्ञात नहीं हो सका कि कहाँ और किससे हुआ। इस विवाह में जयपुर-नरेश महाराज प्रतापसिंह पधारे थे।

५. संवत् १८४२ में ये जोधपुर गए थे।

६. संवत् १८४३ में जयपुर की ओर से माधवजी सिंधिया से लड़े और फतह पाई।

७. संवत् १८४३ (ता० २० अप्रैल, सन् १७८६) को ये नाराज होकर लखनऊ चले गए। जब माधवजी सिंधिया ने जयपुर पर चढ़ाई की, तो यहाँ के सरदारों ने आधीनता स्वीकार करने की सलाह दी। जयपुर-नरेश ने यह बात नहीं मानी और दौलतरामजी को खास रुक्का भेजा कि जयपुर की मदद करो। दौलतरामजी ने नबाब जुल्फकारुद्दौला से तीन लाख फौज प्राप्त की, और जयपुर को विजय प्राप्त कराई। जयपुर-नरेश ने प्रसन्न होकर हाथी, सिरोपाव, तलवार, घोड़े तथा १ लाख की जागीर प्रदान की।

८. संवत् १८४४ में माधव सिंधिया ने राव प्रतापसिंह के साथ मिलकर जयपुर पर चढ़ाई की। उस समय जोधपुर के महाराज मानसिंह की सेना सहित दौलतरामजी ने जयपुर की सहायता की।

९. संवत् १८४४ में इनकी माँ की मृत्यु हुई, जिनकी छत्री जयपुर में है।

१०. संवत् १८४४ में लखनऊ के नबाब ने इन्हें ५ लाख की जागीर दी थी, जो कि, बाद में, इनके वहाँ न जाने से खालसा हो गई।

११. संवत् १८४७ में इनको जयपुर-नरेश ने जोधपुर से पुनः बुला लिया।

१२. संवत् १८४८ में जयपुर-नरेश प्रतापसिंहजी के उपास्य ठाकुरजी श्री व्रजनंदनजी के विग्रह का विवाह इनकी उपास्या श्री राधिकाजी की प्रतिमा से हुआ (सगाई वैसाख वदी ९ को तथा विवाह जेठ सुदि ६ को)। महाराज स्वयं इनके यहाँ पधारे और दौलतरामजी ने दहेज में दस हजार नकद, कुल जागीर, एक बगीचा, एक हवेली तथा एक नोहरा और बहुत-से आभूषण दिए।

१३. संवत् १८४८ में जयपुर-नरेश ने इन्हें मुसाहिब नियुक्त किया।

१४. सं० १८४९ (बैसाख वदी १) में जयपुर-नरेश ने इनको राव बहादुर की पदवी दी।

१५. सन् १८५० में जयपुर नरेश की ओर से कालख के ठाकुर बैरीसाल से कालख में लड़े। यह लड़ाई २१ दिन तक चली और कालख का किला ले लिया। इनके भाई बख्शी नन्दरामजी उस समय खंडेला-युद्ध में व्यस्त थे, अतः उनके स्थान पर दौलतरामजी को यह लड़ाई लड़नी पड़ी।†

---

†कालख थारी काल, दोल बहादुर तोड़सी।
बीछै बैरीसाल, बिन मारचा छोड़ै नहीं॥

१६. पोस सुदी २ स० १८५० को तोप के गोले से इनकी मृत्यु हुई। कहा जाता है, शत्रु के किसी ग्रादमी ने धोखा देकर इनको मार डाला।

(ख) बिना तारीख को घटनाएँ—

१. जयपुर राज्य के दीवान हुए।†
२. जयपुर-नरेश की ग्रोर से इन्होंने कुल मिलाकर ५२ लड़ाइयाँ लड़ीं।
३. जयपुर के ठाकुर लोग जयपुर-नरेश से नाराज़ होकर सिंधिया को जयपुर पर चढ़ा लाए ग्रौर किशनगढ़ पर डेरा किया। जयपुर-नरेश ने संधि की प्रार्थना की। ग्रन्य शर्तों में एक शर्त यह थी कि दौलतरामजी को बरखास्त किया जाय। तभी ये जोधपुर चले गये।
४. इन्होंने भोमियों को हराया।
५. इनकी तसवीर व इनका इतिहास लखनऊ के म्यूजियम में भी बताया जाता है।
६. इनके तीन पुत्र थे—
    १. सुखलालजी,‡
    २. हरनारायणजी,
    ३. बलदेवजी (बख्शी नंदरामजी के गोद गए)।

नंदरामजी

१ संवत् १८३५ में जयपुर-नरेश प्रतापसिंहजी ने इन्हें बख्शीगीरी दी।
२. ये भरतपुर के महाराज जवाहरसिंहजी के पास भी रहे तथा वहाँ इनकी जागीर भी थी।
३. शेखावाटी में फौज के ग्रफसर हुए ग्रौर बाहशाह की तरफ से वसूली की।*
४. संवत् १७५३ में इनकी मृत्यु भरतपुर में हुई ग्रौर इनका दाह-संस्कार गोवर्धन में किया गया। गोवर्धन में रामलीला के मैदान में ग्रभी तक इनकी छत्री देखी जा सकती है।††

---

†संभावित संवत् १८४४।

‡इनके नाम देहली रेजीडेण्ट सर चार्ल्स मेटरकाफ़ का एक पत्र देखा था, जिससे सुखलालजी का महत्त्व प्रकट होता है।

*टॉड राजस्थान में इनका विस्तृत विवरण 'शेखावाटी इतिहास' के ग्रंतर्गत मिलता है—देखें, तिरेसठवाँ परिच्छेद।

††भरतपुर के, प्रायः, सभी राजाग्रों की छत्रियाँ गोवर्धन में हैं, इनमें से कुछ तो वास्तुकला की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। ये छत्रियाँ ग्राज भी देखी जा सकती हैं। नन्दरामजी का दाह-संस्कार गोवर्धन में किया जाना इस बात का द्योतक है कि भरतपुर में भी इनका बहुत सम्मान था।

५. राजा हिम्मतबहादुर से इनका पत्र-व्यवहार होता रहता था।

६. इनके कोई पुत्र न था। पहले दौलतरामजी के तृतीय पुत्र बलदेवजी गोद आए, पर वे नन्दरामजी के जीवनकाल में ही मृत्यु को प्राप्त हो गए। तदुपरान्त झाग† से हरिकिशनजी गोद आए। वह भी दुर्भाग्य से काल-कवलित हो गए। तब खुशालीरामजी के बेटे बालमुकुन्दजी को गोद लिया गया।

७. नन्दरामजी ख्यातिप्राप्त सेनापति थे और अनेक देशी नरेश उनसे सहायता की आशा रखते थे।

८. सेनापति नन्दराम ने प्रतापसिंह को सम्पूर्ण खंडेला राज्य का अधिकारी बनाया। (यह प्रतापसिंह शेखावाटी के सामन्त इन्द्रसिंह के पुत्र थे)।

९. नन्दराम हल्दिया ने आमेर राज्य की बहुत सेवाएँ कीं। कई-एक जागीरें आमेर राज्य में मिलाईं तथा आधीन राज्यों से नियमित कर वसूल करने की चेष्टा की।

१०. नवलगढ़ के सामन्तों को तुई नगर में घेर लिया। कालान्तर में तुई और ग्वाला आदि लौटा दिए।

११. दो लाख रुपया सीकर के अधिकारी लक्ष्मणसिंह से वसूल कर जयपुर की आधीनता स्वीकार कराई। कहा जाता है, एक लाख रुपया अपने लिए भी लिया।

१२. युद्ध, विग्रह, संधि आदि में, उस समय, इनका महत्त्वपूर्ण भाग रहा और इनके पराक्रम से आसपास के सामन्त काँपते रहे।‡

इन एतिहासिक बातों को मिलाने में मैंने अनेक पुस्तकों का आश्रय लिया और सभी बातें ठीक पाईं। कुछ पुस्तकों के नाम इस प्रकार हैं—

१. वीरविनोद—श्यामलदास।

†कहा जाता है, हल्दीघाटी के वैश्य कौम के कुछ सिपाही (जो बाद में हल्दिया कहे जाने लगे) राजा मानसिंह के साथ आमेर आए। ये लोग जयपुर राज्य के अंतर्गत झाग नामक ग्राम में बस गए। इस गाँव में हल्दिया वंश के लोग अब तक मौजूद हैं। यहीं से हरिकिशनजी गोद आए थे। आज भी यह परंपरा चलती है। लगभग २५ वर्ष पूर्व रामचन्द्र नामी एक बालक बख्शी रामप्रतापजी हल्दिया के यहाँ गोद आया था।

‡जयपुर के रावबहादुर नृसिंहदास हल्दिया द्वारा संचित सामग्री तथा बनारस के श्री दामोदरदास खंडेलवाल के अनुसंधान पर आधारित।

२. राजपूताने का इतिहास—जोधपुर का इतिहास, बीकानेर का इतिहास—ओझा।
३. अलवर राज्य का इतिहास—जोशी।
४. जाट-जाति का इतिहास—देशराज।
५. व्रजेन्द्रवंश भास्कर—गोकुलचन्द दीक्षित।
६. कछवाहों का इतिहास—तंवर।
७. वंश-भास्कर—सूर्यमल्ल।
८. लावारासा—गोपालदास कविया।
९. मत्स्यप्रदेश की हि० सा० को देन—मोतीलाल गुप्त।
१०. हल्दियावंश के रिकार्ड—नरसिंहदास।
११. जोधपुर की ख्यात।
१२. बीकानेर का इतिहास—गहलोत।
१३. जोधपुर का इतिहास—गहलोत।
१४. मुरक्के अलवर।
१५. हल्दिया वंश (अप्रकाशित)—दामोदरदास खंडेलवाल।
१६. The Fall of the Moghul Empire—Sarkar.
१७. History of Bharatpur—Jwala Sahaya.
१८. Alwar Gazetteer—Powlett.
१९. Gazetteer of E. R. State—Burkmann.
२०. Annals & Antiquities of Rajasthan—Tod.
२१. Bharatpur Gazetteer—Walter
२२. Travels—Records of George Thomas.
२३. Rajputana Gazetteer.
२४. Imperial Gazetteer.

प्रतापरासो में दी गई लड़ाइयों का ऐतिहासिक विवरण

(विविध इतिहास, राजकीय रिकार्ड तथा रुक्कों के आधार पर)

नं०	स्थान का नाम	सं०	कौन लड़ा	किससे लड़ा	हल्दिया वंश का व्यक्ति	परिणाम	अन्य
१.	मावड़ा	१८२४	महाराज माधोसिंह जयपुर	महाराज जवाहरसिंह भरतपुर	राव खुशालीराम, रा० ब० दौलतरास, बख्शी नंदराम—जयपुर की ओर से	जयपुर विजयी	—
२.	राजगढ़	१८२९	राजसिंह फीरोजखाँ जयपुर की ओर से	रावराजा प्रतापसिंह	साह छाजूराम तथा उनके तीनों पुत्र—माचेड़ी की ओर से	रावराजा प्रतापसिंह विजयी	—
३.	भरतपुर	१८३०	नजफखाँ	महाराज नवलसिंह भरतपुर	राव खुशालीराम नजफखाँ की ओर से	विजयी नजफखाँ	—
४.	अलवर	१८३२	नजफखाँ	महाराज रणजीतसिंह भरतपुर	,,	,,	(इस दुर्ग को नजफखाँ ने जीत कर राव खुशालीरामजी को किलेदारों से खाली कराने के लिए दिया। उन्होंने अपने मालिक रावराजा प्रतापसिंह जी नरूका को भेंट कर दिया)
५.	डीग	१८३३	नजफखाँ	,,	,,	,,	—
६.	लछमनगढ़	१८३५	नजफखाँ	रावराजा प्रतापसिंह	शाह छाजूराम राव खुशालीराम	विजयी रावराजा प्रतापसिंह	(दो लाख रुपया फौज खर्च का लेकर नवाब से सन्धि की गई)
७.	राजगढ़	१८३८	महाराज प्रतापसिंह जयपुर	,,	खुशालीराम आदि तीनों भाई जयपुर की ओर से	जयपुर	—

प्रताप रासो की भाषा

इस ग्रंथ की भाषा को विश्लेषित करने में मैं उन पद्धतियों का प्रयोग तो न कर सकूँगा, जो अपनी गणित-बहुलता के कारण समझने में कठिनाई उपस्थित करती हैं, किन्तु आधुनिक प्रचलित सिद्धान्तों पर अपना ध्यान अवश्य रखूँगा। प्रधानतः मेरा विश्लेषण (१) ध्वनि-श्रेणिमूलक और (२) आकृतिमूलक होगा जिसमें शब्दों के रूप और वाक्य में उनके निर्दिष्ट स्थानों का समावेश भी होगा। ध्वन्यात्मक टिप्पणी किसी भी प्रकार का निश्चित आधार न होने के कारण आनुमानिक होगी, साथ ही वर्ण, पद, स्वराघात, वाक्य-विन्यास, अर्थ आदि पर भी विचार किया जा सकेगा। विश्लेषण करने से पूर्व कुछ बातों की ओर ध्यान रखना आवश्यक है। यथा—

(१) इस विश्लेषण की सामग्री 'प्रतापरासो' की उस प्रति से ली गई है, जो 'अलवर म्यूज़ियम' में संग्रहीत थी और जो अब 'राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर' के अधिकार में है।

(२) यह भाषा संवत् १८३७ से १८४७ के आसपास बोली जाने वाली वह भाषा है, जो काव्य-सृजन हेतु कुछ परिष्कृत कर ली जाती थी। भाषा का क्षेत्र व्रजभाषा प्रभावित अलवर प्रान्त है। अलवर में रचित उस समय की काव्य-भाषा का प्रायः यही रूप उपलब्ध होता है।

(३) भौगोलिक दृष्टि से इस भाषा का विस्तार राजगढ़-अलवर के आसपास समझना चाहिए।

(४) यह बात निश्चित-सी प्रतीत होती है कि 'प्रतापरासो' की इस भाषा में बोलचाल की भाषा से विशिष्टता है। प्रायः देखा गया है कि काव्य की भाषा बोलचाल की भाषा से अलग होती है। आज यह प्रवृत्ति अवश्य, यत्र-तत्र, देखी जाती है कि यह अंतर यथाशक्ति कम कर दिया जाय।

(५) लेखन और उच्चारण में अंतर है—

(क) ह्रस्व-दीर्घ की अव्यवस्था—

जाचिक[1], जाचीक[2] (इ~ई)। छाजु[3], छाजू[4] (उ~ऊ)।

---

१. छठे प्रभाव के अंत में। २. आठवें प्रभाव के अंत में। ३. छं० सं० १८१। ४. छं० सं० ५५।

(ख) वर्णान्तर-व्यवस्था—

जाचिक[१], जाचिग[२] (अघोष⌣घोष)।

सेवग[३], सेवक[४] (घोष⌣अघोष)।

(ग) संयुक्ताक्षर-प्रयोग—

हथ[५], हथ्थ (समव्यंजन समुच्चय)।

सजै[६], सज्जै (समव्यंजन समुच्चय)।

(घ) लेखन में अंतर—लिखने में बोलने की ध्वनियों का प्रयोग—

सुरतानोत[७], सुरताणवोत[८], सुरतानवत[९]।

(६) शब्दों का उच्चारित रूप स्वीकार किया गया है—

नाम[१०], नांम[११]; आन[१२], आंन[१३] (सानुनासिकता की स्वीकृति)। लेखन का रूप उच्चरित रूप से भ्रमात्मक हो गया है।

(७) कुछ वर्णों के रूपों में अन्तर—

/ख/~[ख] [ष]

'षुस्याली राम'[१४] आधुनिक 'खुस्यालीराम' के स्थान पर प्रायः सर्वत्र ही [ष][१५] को आधुनिक [ख] के रूप में स्वीकार किया गया है।

(८) छंद भंग होने पर भी यथासाध्य उपर्युक्त अलवर म्यूज़ियम वाली प्रति का रूप ही, विश्लेषण की दृष्टि से, स्वीकार किया गया है।

(९) ध्वनि-प्रसंग में आधुनिक उच्चारण पर ही ध्यान रखा गया है। यह इसलिए करना पड़ा कि उस समय का 'उच्चारण-आधार' अब अनुपलब्ध है।

(१०) ध्वनि-विश्लेषण में यांत्रिक विश्लेषण संभव न होने से अनुभवीय पद्धति को ही अपनाया गया है।

(११) व्याकरण का आधार खड़ी बोली का आधुनिक व्याकरण है—उसी के वर्गीकरण, पारिभाषिक शब्दावलि आदि को स्वीकार किया गया है।

(१२) गौण रूप में, उपलब्ध, राजस्थानी तथा व्रजभाषा के व्याकरण पर भी ध्यान रखा गया है।

---

१. छठे प्रभाव में। २. छं० सं० ४। ३. छं० सं० ४५२। ४. छं० सं० ✱। ५. छं० सं० २३१। ६. छं० सं० १५२। ७. छं० सं० ३६२। ८. छं० सं० १५२। ९. छं० सं० १२६। १०. छं० सं० ६९। ११. छं० सं० ७८। १२. छं० सं० १७३। १३. छं० सं० १६४। १४. छं० सं० २०६। १५. छं० सं० ४, ५, २९, ३३, ४१, ४२, ५३, ५४, ६४, ७०, ८५, ९०, १०३, २०३, ३१२, ४०८, आदि सर्वत्र ही।

(१३) उच्चारण का वैसा ही रूप लिया गया है, जैसा मैं, स्वयं, इस प्रति को पढ़ते समय उच्चारण करता हूँ। कहीं, कहीं स्थानीय व्यक्तियों से भी पुष्टि कराई गई है। गाकर पढ़ने में कुछ अंतर प्रतीत हुआ। सामान्य रूप में अंतर दिखाई नहीं देता।

(१४) ध्वनि श्रेणी, सहस्वन आदि में स्वीकृत / /, [ ], संकेतों का यथा संभव प्रयोग किया गया है।

(१५) प्रस्तुत विश्लेषण विवरणात्मक है, अतः शुद्ध, अशुद्ध; उचित, अनुचित; वांछनीय, अवांछनीय; संभावित, शक्य आदि का कोई विचार नहीं किया गया है।

(१६) भाषा-विश्लेषण में अंतर्राष्ट्रीय लिपि और संकेतों का व्यवहार होता है। पंजाबी[१], भोजपुरी[२], कन्नड़[३], खड़ीबोली[४], सिंधी[५], बांगरू[६] आदि पर किए गए कार्य इसी माध्यम से हैं। मैंने नागरी लिपि का व्यवहार करने की चेष्टा की है।

(१७) विश्लेषण को अधिक वैज्ञानिक रूप न देने के साथ ही सामान्य रूप देने की चेष्टा की गई है।

ध्वनि-तत्त्व

प्रचलित पद्धति के अनुसार ध्वनियों का वर्गीकरण स्वर और व्यंजन की ध्वनियों के अन्तर्गत करना उचित होगा। इस ग्रन्थ में जिन ध्वनियों का प्रयोग हुआ है, वे अधिक पुरानी नहीं हैं और आज भी सामान्य रूप से बोली जाती हैं। उच्चारण में कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ होगा, क्योंकि (२०२०—१८३७=)१८३ वर्ष का समय ध्वनि-परिवर्तन की दृष्टि से बहुत होता है, परन्तु अन्य कोई व्यवस्था न होने पर और प्रचलित ध्वनियों से मेल खाने के कारण उन्हें आज के रूप में ही लिया जा रहा है।

स्वर, अर्द्धस्वर तथा व्यंजन की व्याख्या यहाँ अपेक्षित नहीं, जो ध्वनियाँ इन विभाजनों के अन्दर साधारण रूप से वर्गीकृत की गई हैं, उन्हें उसी प्रकार लिया जा रहा है।

---

१. बनारसीदास। २. उदयनारायण तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद। ३. विलियम ब्राइट, हिरेमठ। ४. गम्पर्ज। ५. खूबचंदानी। ६. जगदेवसिंह।

स्वर-ध्वनियाँ—

आधुनिक उच्चारण के अनुसार—

ई ऊ
इ उ
ए ओ
अै औ
अ
आ

ये स्वर और इनकी सानुनासिकता, जो उदाहरण सहित आगे अंकित हैं।

इन ध्वनियों को घटा कर इस प्रकार भी रखा जा सकता है—

(क) अ इ उ ए अै ओ औ।

(ख) आ ई ऊ।

(ख) के /आ/, /ई/, /ऊ/ (क) के /अ/, /इ/, /उ/ की दीर्घताएं कही जा सकती हैं।

अ (अ), आ (आ), इ, ई, उ, ऊ, अै, ओ (ओ), औ (औ)।

इनके अतिरिक्त एक ध्वनि-संकेत /ए/ का प्रयोग सम्पूर्ण पुस्तक में केवल एक शब्द में हुआ है।[1] अन्य सभी स्थानों पर /ये/ से ही काम लिया गया है। इसके दो अर्थ निकलते हैं—

(१) /ए/ ध्वनि-संकेत ग्रन्थकर्त्ता को मालूम था—कम-से-कम लिपिकार इस ध्वनि-संकेत से अवश्य परिचित था।

(२) प्रयोग में /ए/ ध्वनि-संकेत कम ही लाया जाता था और इसके स्थान पर /ये ही चलता था।[2] कहीं-कहीं /य/ भी प्रयुक्त होता था।[3,4]

स्वर-ध्वनियों के निम्नलिखित सानुनासिक रूप भी मिलते हैं—

/अ/~/अं/—'अंमावति'[5], 'अंगद'[6], 'अंस'[7], 'अंच'[8], 'अंग़ी'[9], 'अंतरा'[10], 'अंग'[11], 'अंके'[12]। (इसे अनुस्वार रूप कहना उपयुक्त होगा)।

---

१. छं० सं० १३१, ३७१, ३७४—'एक'। २. छं० सं० ६ (येको), छं०सं० ४६, १०३, १२१ आदि (येक)। ३ छं० सं० ९ (यक), छं० सं० ८५, १४२ आदि (यसी)। ४ /य/ और /ए/ की कठिनाई कम से कम अंत तथा मध्य वर्ण में आज भी है— 'कीजिए'-'कीजिये'; 'गये'-'गए'; 'जाएगा'-'जायेगा' (यदाकदा 'जावेगा' भी)। ५. छं० सं० २८९। ६. छं० सं० ६। ७. छं० सं० २९। ८. छं० सं० २९। ९. छं० सं० ५१। १०. छं० सं० ७४। ११. छं० सं० १३१। १२. छं० सं० १५५।

/आ/ ~ /आं/ —'आंबावति'[१], 'आंन'[२], 'आंनि'[३] ।

/इ/ ~ /इं/ —'इंद्र'[४], 'इंद्रपुर'[५], 'इंद्रेस'[६], 'इद्रंसिह'[७] ।

/ई/ ~ /ईं/ —'ईंद्र'[८] ।

/उ/ ~ /उं/ —'लगुं'[९], 'गुंसाई'[१०], 'दुहुं'[११] ।

/ऊ/ ~ /ऊं/ —'ऊंचे'[१२] ।

/अै/ ~ /अैं/ —'अैंन'[१३], 'मैं'[१४] ।

/ओ/ ~ /ओं/ —'करों'[१५] ।

/औ/ ~ /औं/ —'हौं'[१६] ।

स्वरों का प्रयोग शब्दों में किन-किन स्थानों पर होता है, वह भी द्रष्टव्य हैं । किसी ध्वनि-संकेत को हम शब्द के आरम्भ में, बीच में तथा अन्त में प्रयोग कर सकते हैं । यथा—/ई/

आरंभ—ईसरसिंह'[१७] ।

मध्य —'जोईये'[१८], 'फिरईस'[१९] ।

अंत —'षाई'[२०], 'फूरमाई'[२१], 'ह्याई'[२२] ।

ऊपर लिखे उदाहरणों में /ई/ स्वर का प्रयोग स्वतंत्र रूप में हुआ है । आरम्भ में तो नहीं, किन्तु शब्द के मध्य तथा अन्त में /ई/ आदि स्वरों की मात्राओं का प्रयोग व्यंजनों के साथ भी होता है, और अधिक होता है । जैसे—व्यंजन के साथ /ई/

आरंभ— × ।

मध्य —'मीर'[२३], 'षटतीस'[२४] ।

अंत —'सारी'[२५], 'ठी'[२६], 'विनती'[२७] ।

इस दृष्टि से स्वरों का वितरण, विभिन्न स्थानों पर, प्रस्तुत किया जाता है ।

---

१. छं० सं० १९ । २ छं० सं० १६४ । ३. छं० सं० १८४ । ४. छं०सं० ३७, ९३, १२३, १२६ आदि । ५. छं० सं० ७० । ६ छं० सं० १३० । ७. छं० सं० ३१५ । ८ छं० सं० १८७ (आधुनिक रूप में 'ईंद्र' को 'इंद्र' का ही रूपान्तर मानना चाहिए—किन्तु लिपिकार ने, किसी भी कारण से हो, इन्हें अलग-अलग स्वर-संकेतों से सम्बन्धित करते हुए लिखा है, अतः इनको /इ/ तथा /ई/ दोनों की सानुनासिकता बताने के लिए प्रयोग में लाया गया है । ९. छं०सं० १ । १०. छं०सं० २६२ । ११. छं०सं० ३४० । १२. छं०सं० २१३ । १३. छं० सं० २३५ । १४. छं० सं० ८३ । १५. छं० सं० २ । १६. छं० सं० २ । १७. छं० सं० ५७ । १८. छं० सं० ३०५ । १९. छं०सं० २०८ । २०. छं० सं० ३४०, ३५३ । २१. छं० सं० ४०५ । २२. छं० सं० ९७ । २३. छं० सं० ३०३ । २४. छं०सं० ३१५ । २५. छं० सं० ३१४ । २६. छं० सं० ३१४ । २७. छं० सं० २ ।

/अ/ आरंभ —'अनंग'[1], 'अजमेरी'[2], 'अप'[3] ।
मध्य —'पचरंग' ⌐ 'पच्+/अ/रंग'[4], 'घर' ⌐ 'घ्+/अ/र',
सानुनानिक 'पचरंग' ⌐ 'पचर्+/अं/ग' ।
अंत —'पास' ⌐ 'पास्+/अ/'[6], 'पठाय' ⌐ 'पठाय्+/अ/'[7],
सानुनासिक 'युधं' ⌐ 'युध्+/अं/'[8] ।

/आ/ आरंभ—'आमावति'[9], 'आगल'[10], 'आज'[11] ।
मध्य —'चारण' ⌐ 'च्+/आ/रण'[12], भारी ⌐ 'भ्+/आ/रो'[13],
'नवाब'' ⌐ नव्+/आ/ब'[14], सानुनासिकता सहित भी
'मांची'' ⌐ म्+/आं/ची' [15] ।
अंत —'धरा' ⌐ 'धर्+/आ/'[16], 'ककरा' ⌐ 'ककर्+/आ/'[17],
सानुनासिकता सहित भी 'कामां' ⌐ 'काम्+/आं/'[18] ।

/इ/ आरंभ —'इत'[19], 'इसी'[20], 'इति'[21], 'इतै'[22] ।
मध्य —'जोइये'[23], 'धारिये' ⌐ धार्+/इ/ये'[24] ।
अंत —'टरि' ⌐ 'टर्+/इ/'[25], 'नरपति' ⌐ 'नरपत्+/इ/'[26] ।

/ई/ आरंभ —'ईसरसिंह'[27], 'ईदरेस'[28], 'ईद्र'[29], 'ईस'[30] ।
मध्य —'उपाईय'[31], 'सुनाईय'[32], 'तीयार' ⌐ 'त्+/ई/यार'[33],
'चढ़ीये' 'चढ़्+/ई/ये'[34] ।
अंत —'जोई'[35], 'लराई'[36], 'सोई'[37], 'दिषणी' ⌐
'दिषण्+/ई/'[38], 'कैसी' ⌐ 'कैस्+/ई/'[39] ।
सानुनासिक्ता 'गुसाईं'[40] ।

---

१. छं० सं० १३१ । २. छं० सं० १३१ । ३. छं० सं० २२४ । ४. छं०सं० ३८९ । ५. छं०सं० ३९१ । ६. छं० सं० ३८९ । ७. छं० सं० ३८९ । ८. छं० सं० १८९ । ९. छं०सं० १४५ । १०. छं०सं० १९२ । ११. छं०सं० २५७ । १२. छं०सं० ३२८ । १३ छं० सं० ३२८ । १४. छं० सं० ३३१ । १५. छं० सं० ३०६ । १६. छं० सं० ३५४ । १७. छं० सं० २८८ । १८. छं० सं० २१० । १९. छं० सं० ९९,११७ । २०. छं० सं० १६३ । २१. छं० सं० २८९ । २२. छं०सं० ३७,८५ । २३ छं०सं० ३०५ । २४. छं० सं० ३०५ । २५. छं०सं० ३०८ । २६. छं० सं० १४५ । २७. छं०सं० ५७ । २८. छं० सं० २२५ । २९. छं० सं० १५१ । ३०. छं० सं० ५१ । ३१. छं०सं० २७६ । ३२. छं०सं० २७६ । ३३ छं० सं० २८३ । ३४. छं० सं० ३०५ । ३५. छं० सं० ३५४ । ३६. छं० सं० ३५४ । ३७. छं० सं० ४३८ । ३८. छं०सं० ४३९ । ३९. छं० सं० ४४१ । ४०. छं० सं० २६४ ।

/उ/ आरंभ—'उसी'[१], 'उनियारे'[२], 'उमर'[३]।
मध्य —'जुध'~'ज्+/उ/ध'[४], 'रघुकुल'~'रघुक्+/उ/ल'[५]।
अंत —'दोउ'[६], 'राजरु'~'राजर्+/उ/'[७], सानुनासिकता 'लगुं'~'लग्+/उं/'[८]।

/ऊ/ आरंभ—'ऊगत'[९], 'ऊपर'[१०], 'ऊचारिये'[११], 'ऊचे'[१२]।
मध्य —'रजपूत'[१३] ~'रजप्+/ऊ/त', 'सूर'~'स्+/ऊ/र'[१४]।
अंत —'तंबू'~'तंब्+/ऊ/'[१५], 'नरू'~'नर+/ऊ/'[१६], 'कोऊ'[१७], सानुनासिकता सहित 'कूं'~क्+/ऊं/'[१८], 'सूं'~'स्+/ऊं/'[१९]।

/ए/ ध्वनि-संकेत का प्रयोग केवल इस प्रकार के लिखित रूप में एक ही शब्द में हुआ है और वह शब्द के आरंभ में[२०]। मध्य तथा अंत में इसका मात्रा-रूप प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

/ऐ/ आरंभ—'ऐन'[२१], 'ऐसेस'[२२], 'ऐसी'[२३], सानुनासिक 'ऐंन'[२४]।
मध्य —'आमैरि'~'आम्+/ऐ/रि'[२५], 'कैसी'~'क्+/ऐ/सी'[२६], 'यसी'~'य्+/ऐ/सी'[२७], सानुनासिक 'करिहैंच'~'करिह्+/ऐं/च'[२८]।
अंत —'करै'~'कर्+/ऐ/'[२९], 'हलकारै'~'हलकार्+/ऐ/'[३०], सानुनासिक 'बातैं'~'बात्+/ऐं/'[३१]।

/ओ/ आरंभ—'ओर'[३२]।
मध्य —'भोर'~'भ्+/ओ/र'[३३], 'वहोर'~'वह्+/ओ/र'[३४], सानुनासिक 'जोंहार'~'ज्+/ओं/हार[३५]।
अंत —'को'~'क्+/ओ/'[३७], 'कहो'~'कह+/ओ/'[३८], सानुनासिक 'यों'~'य्+/ओं/'[३९], 'रहलों'~'रहल्+/ओं/'[४०]।

---

१. छं० सं० ४०४। २. छं० सं० १६५। ३. छं० सं० ३६३। ४. छं० सं० १६६। ५. छं० सं० १६६। ६. छं० सं० ८५। ७. छं० सं० १६०। ८. छं० सं० १। ९. छं० सं० २१५। १०. छं० सं० ९५। ११ छं० सं० ३३६। १२. छं० सं० २१३। १३. छं० सं० २५९। १४ छं० सं० २६०। १५. छं० सं० २६१। १६ छं० सं० ८०। १७. छं० सं० ८५। १८ छं० सं० २५८। १९ छं० सं० २६१। २० छं० सं० १३१ आदि। २१. छं० सं० १०४, ११०। २२ छं० सं० ६। २३. छं० सं० १३३। २४ छं० सं० २३५। २५. छं० सं० ४३९। २६. छं० सं० ४४१। २७ छं० सं० ४४१। २८, छं० सं० ३२७। २९. छं० सं० ४४१। ३०. छं०सं० ४३६। ३१ छं० सं० ३५०। ३२. छं० सं० १२६। ३३. छं० सं० २५७। ३४. छं० सं० २८। ३५ छं० सं० १२८। ३६. छं० सं० २५७। ३७ छं० सं० २५७। ३८ छं० सं० ३८। ३९ छं० सं० २१०।

/औ/ आरंभ—'औगुण'[१]।

मध्य —'चौड़े' < 'च्+/औ ड़े'[२], 'दौरि' < 'द्+/औ/रि'[३], सानुनासिक 'पहौंचे' < 'पह्+/औं/चे'[४]।

अंत —'जाणौ' < 'जाण्+/औ/'[५], 'कह्यौ' < 'कह्य+/औ/'[६], सानुनासिक 'सौं' < 'स+/औं/'[७], ।

/ए/ यह ध्वनि-संकेत इस रूप में केवल एक ही प्रसंग में देखा जाता है। परन्तु इससे संबंधित मात्राएँ सामान्य तथा सानुनासिक रूप में मध्य तथा अन्त स्थानों में पाई जाती हैं—

मध्य —'सेरगढ़' < 'स्+/ए/रगढ़'[८], 'लीनेस' < 'लीन्+/ए/स'[९], 'येक' < 'य्+/ए/क'[१०], सानुनासिक रूप में 'भेंट' < भ्+/एं/ट'[११]।

अंत —'जिते' < 'जित्+/ए/'[१२], 'किते' < 'कित्+/ए/'[१३], 'षटे' 'षट्+/ए/'[१४], सानुनासिक 'में' < 'म्+/एं/'[१५]।

इसके अतिरिक्त-स्वर संकेतों में /य/ का योगदान भी विशेष देखने योग्य है। पहले कहा ही जा चुका है कि 'एक' को छोड़कर /ए/ का कार्य /य/ द्वारा ही होता है। और भी देखिये।

/अ/ 'यर'[१६] आधुनिक 'अर'।

/इ/ 'यन'[१७] आधुनिक' इन'।

/अै/ 'यैस'[१८] आधुनिक 'अैस', 'येकने'[१९], 'यते'[२०], 'यती'[२१], 'येस'[२२], 'यन'[२३]।

ध्वनियों सम्बन्धी कुछ टिप्पणियाँ नीचे लिखे अनुसार हैं—

(क) केवल 'एक' शब्द को छोड़कर /ए/ अथवा /अे/ ध्वनि-संकेत नहीं मिलता। मात्रा रूप में यह ध्वनि बराबर मिलती है।

(ख) विसर्ग ध्वनि का अभाव है। इसी कारण /अः/ विसर्ग ध्वनि का रूप भी नहीं पाया जाता।

---

१ छं० सं० ३८५। २. छं०सं० २५८। ३. छं० सं० २६१। ४. छं० सं० १९५। ५. छं० सं० ३८६। ६. छं० सं० ३८६। ७ छं० सं० २८२। ८. छं० सं० २१०। ९. छं० सं० २०८। १०. छं० सं० २१३। ११. छं० सं० २०८। १२. छं० सं० २५९। १३. छं० सं० २५९। १४. छं० सं० १९०। १५. छं० सं० २६, १३०। १६. छं० सं० १३१। १७. छं० सं० २३९। १८. छं० सं० १६६। १९ छं० सं० ४४६। २०. छं० सं० २१२। २१. छं० सं० १६४। २२. छं० सं० १८१। २३. छं० सं० ३५२।

(ग) /ग्र/ के दो लिखित रूप मिलते हैं—/ग्र/ ᓚ [ग्र] तथा [अ] किन्तु इस पुस्तक में केवल एक ही रूप स्वीकार किया गया है।

(घ) /ग्रै/ का एक ही रूप मिलता है, [ऐ] ग्रथवा [अै] उपलब्ध नहीं होते।

(ङ) जैसा ऊपर स्वर-वितरण में स्पष्ट किया जा चुका है, ध्वनियों की सानुनासिकता बहुत स्थानों में दिखाई देती है।

(च) कहीं-कहीं ग्राधुनिक उच्चारण के ग्रनुसार शब्द का रूप ग्रंकित किया गया है। यथा—
'ग्रांन' इस पुस्तक मैं 'ग्रांन'[१], 'ठाम' इस पुस्तक में 'ठांम'[२], 'काम' इस पुस्तक में 'कांम'[३]।
किन्तु लिपिकार इस प्रवृत्ति का यदाकदा ही प्रयोग करता प्रतीत होता है। ग्रतः इस प्रवृत्ति के ग्राधार पर यह तो नहीं कहा जा सकता कि ग्रंकन ग्रधिक वैज्ञानिक है, किन्तु इस ग्रोर लेखक का ध्यान कभी-कभो ग्राकर्षित हो जाता है, ऐसा ग्रवश्य प्रतीत होता है। ग्रौर इसी कारण जब उसका ध्यान इस ग्रोर जाता है, तो लेखन-परंपरा के ग्रनुकूल शब्दों को न लिखकर उच्चारण के ग्रनुसार लिखता है।

खड़ी बोली में 'सानुनासिकंता' की एक विशेष प्रवृत्ति दिखाई देती है। कई विद्वानों ने इस पर प्रयोगशालीय कार्य भी किया है।[४] ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्राधुनिक खड़ी बोली की ही प्रवृत्ति नहीं है। बोलियों में भी यह बात पाई जाती है, ग्रौर हो सकता है, बोलियों के स्थान पर जब खड़ी बोली प्रचलित हुई, तो सानुनासिकता चलने लगी।

(छ) प्रायः सभी स्वर-ध्वनियों के सानुनासिक रूप पाये जाते हैं। उदाहरण यथास्थान दिए गए हैं।

(ज) /ए/, /ऐ/[५] के ग्रतिरिक्त स्वर-संकेतन में कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं है।

---

१ छं० सं० १६४। २. छं० सं० १८, ७० ग्रादि। ३. छं० सं० १९७। ४. ग्रार० के० रस्तोगी—लंदन विश्वविद्यालय में—'हिंदी में सानुनासिकता'। ५. /ए/ का कार्य /ग/ से चलाया गया, तथा /ऐ/ के लिए /ग्रै/ का प्रयोग किया गया है—इस ध्वनि-संकेत का यही रूप काका कालेलकर ने ग्रपने सुझावों में नागरी लिपि के सुधार-संदर्भ में प्रस्तुत किया था।

(झ) मात्राओं के रूप इस प्रकार मिलते हैं—

/अ/ की मात्रा प्राचीन परम्परा के अनुसार कोई चिह्न नहीं।
/आ/ की मात्रा 'ा'
/इ/ की मात्रा 'ि'।
/ई/ की मात्रा 'ी'।
/उ/ की मात्रा 'ु'।
/ऊ/ की मात्रा 'ू'।
/ए/ का मात्रा 'े'। (यह ध्वनि-संकेत स्वतंत्र रूप में तो केवल एक शब्द में दिखाई देता है, मात्रा यथावत् मिलती है।)
/ऐ/ की मात्रा 'ै'।
/ओ/ की मात्रा 'ो'।
/औ/ की मात्रा 'ौ'।
सानुनासिक /अं/ 'ं'।

(ञ) पुस्तक में विसर्गों का प्रयोग कहीं भी नहीं मिलता। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा—संस्कृत—में विसर्गों का प्रयोग यथेष्ट मात्रा में था, पर कालान्तर में यह प्रयोग धीरे-धीरे समाप्त हो गया। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में संस्कृत शब्दों का तत्सम रूप लिए जाने से इस ओर पुनः प्रवृत्ति हो चली है। विसर्गों को हिन्दी का कहें अथवा संस्कृत का ही—इसमें विद्वानों का मतभेद है। कुछ का तो निश्चित मत है कि विसर्ग हिंदी के नहीं माने जाने चाहिएँ—प्रथम तो वैसे ही इनका प्रयोग बहुत कम होता है, दूसरे हिंदी का हिंदीत्व जैसा तद्भव रूपों में विकसित होता दिखाई देता है, वैसा तत्सम रूपों में नहीं।

(ट) /ऐ/ तथा /औ/ का प्रयोग—

स्थान-भेद से इन ध्वनियों के दो उच्चरित रूप सुनाई पड़ते हैं—एक पश्चिमी-हिन्दी प्रान्त में, दूसरा पूर्वी हिन्दी-प्रान्त में। जैसा इस पुस्तक की छंद-बद्धता से प्रतीत होता है, इन ध्वनियों को पश्चिमी हिन्दी-प्रान्त में उच्चरित सामान्य रूप में लिया गया है। यथा—

/ऐ/—'कै'[१], 'अठारैसै'[२]।

/औ/—'कौए'[३], 'फौजै'[४]।

'क्+[इ]', 'अठार्+[इ] सै'।

'क्+[उ] ए', 'फ्+[उ] जै'।

पीछे लिखे रूपों में नहीं। और यह स्वाभाविक ही है,

१. छं० सं० १। २. छं० सं० ४। ३. छं० सं० २। ४. छं० सं० ६१।

क्योंकि प्रतापरासो की भाषा ब्रज है, जो पश्चिमी हिन्दी की एक शाखा है।

(ठ) /ऋ/ ध्वनि का स्वतंत्र प्रयोग कहीं नहीं मिलता। जहाँ भी इसकी आवश्यकता हुई है, /रि/ द्वारा ही व्यक्त किया गया है—

(१) सुनत वचन रिष सीत के, संग लै गये तास।
दई राषि रिश्नीन संग, वन घन ग्रहै निवास॥[1]

(२) आई फुरमाई अर्वाध, जब रिष बूझे राम।[2]

किन्तु इसका अस्तित्व अवश्य स्वीकार किया गया है। यह अस्तित्व, संभवतः, स्वर की अपेक्षा व्यंजन के रूप में अधिक है—जैसे ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट भी होता है।

मात्रा के रूप में /ऋ/ का प्रयोग अनेक शब्दों में मिलता है और उसी रूप में, जो आज प्रचलित है, अर्थात् [ृ]। साथ ही इस को व्यंजन रूप में स्वीकार करके संयुक्त व्यंजन के रूप में भी देखा जा सकता है और तब इसका रूप [्र]— इस प्रकार है। जैसे—'नृप'[3], 'न्रप'[4]; 'वृजि'[5], 'व्रजधर'[6]।

(ड) स्वर के रूप में /य/ का प्रयोग। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, /ए/ ध्वनि के लिए /ए/ संकेत केवल एक प्रसंग में प्रयुक्त हुआ है। इसके स्थान में /य/ ध्वनि-संकेत दिखाई देता है और संभवतः इसका उच्चारण भी /य/ के रूप में होता रहा होगा—अतः इस ध्वनि-संकेत को हमने स्वर-ध्वनियों में शामिल नहीं किया है, व्यंजन-ध्वनियों के सम्मिलित किया जावेगा। आज तक भी यह /य/, /व/, /ए/ की समस्या मिटी नहीं है। उदाहरण के लिए 'जावेगा' शब्द लीजिए। इसके कम-से-कम तीन रूप तो प्रचलित हैं ही—

'जाएगा', 'जायेगा', 'जावेगा'।

'एक' के स्थान पर 'यक' का प्रयोग, मुसलमानी प्रभाव के कारण हो सकता है, और इसे—

---

१. छं० सं० ११। २. छं० सं० १४। ३. छं० सं० २२, २६, ३८, ४०, ४३, १२८ आदि। ४. छं० सं० १६। ५. छं० सं० २२८। ६. छं० सं० ८६।

'एक'~[यक][1], [येक][2] साथ ही 'येकने', 'येको' आदि प्रयोग भी मिलते हैं।

'ऐसा'~[यैस][3] [येस][4] प्रयोग भी हैं।

इसके अतिरिक्त /य/ कहीं-कहीं/आधुनिक /इ/ ध्वनि का भी कार्य करता दिखाई देता है।

आधुनिक 'इतने', इस पुस्तक में 'यतने'[5]

आधुनिक 'इतनी', इस पुस्तक में 'यतनी' 'यती'[6]

आधुनिक (बोली) 'इतै', इस पुस्तक में 'यतै'[7]

(ढ) /व/ का आधुनिक स्वर-ध्वनि के रूप में प्रयोग। प्रायः देखा जाता है कि आधुनिक हिन्दी में भी /व/ ध्वनि कई स्वरों की स्थानापन्न बन जाती है। यथा—

'कौवा'—'कौआ' के स्थान पर

'हुवे'—'हुए' के स्थान पर

बोलियों में तो इस प्रवृत्ति का और भी प्राचुर्य है। प्रस्तुत पुस्तक में आधुनिक /ओ/ ध्वनि के स्थान पर इसका प्रयोग पाया जाता है। कहीं-कहीं /उ/ ध्वनि के स्थान पर भी इसका प्रयोग हुआ है।

/ओ/ आधुनिक 'ओर', इस पुस्तक में 'वोर'[8]

आधुनिक 'ओट', इस पुस्तक में 'वोट'[9]

/उ/ आधुनिक 'उनसों' इस पुस्तक में 'वनसों'[10]। राजस्थान में आज भी 'वठै', 'उठै' दोनों प्रयोग सुने जाते हैं। इस पुस्तक में 'वतै'[11], 'वत'[12] आदि प्रयोग हुए हैं, जो 'उधर' शब्द के समानार्थी हैं।

/य/, /व/ के ये प्रयोग अभी तक चल रहे हैं, और हिन्दी के स्थिरीकरण में इनका रूप-निर्धारण करना बहुत ही आवश्यक है।

स्वर-समुच्चय

स्थान-स्थान पर दो स्वर-ध्वनियाँ साथ-साथ भी प्रयुक्त हुई हैं—

/अ/+/ई/—'दई'[13], 'लीलई'[14], 'राजई'[15]

---

१. छं० सं० ६६, ६७, ६८, ७७, ९१, १०५, ११४ आदि। २. छं० सं० ४६, १०३, १२१। ३. छं० सं० १६६। ४. छं० सं० १८१। ५. छं० सं० २११। ६. छं० सं०, १६५। ७ छं० सं० २६१। ८. छं० सं० २९, ३७, १२६, १४२, २८३ आदि। ९. छं० सं० ६, २७ आदि। १०. छं० सं० १६६। ११. छं० सं० २५९। १२. छं० सं० २१६। १३. छं० सं० ११। १४. छं० सं० १३५। १५. छं० सं० १६५।

/अ/+/उ/—'वउ'[१]
/आ/+/इ/—'आइय'[२], 'भाइय'[३]
/आ/+/ई/—'लड़ाई'[४], 'पाई'[५], 'रचाई'[६]
सानुनासिक भी 'गुसांईन'[७]
/उ/+/ई/—'दुई'[८]
/ए/+/ई/—'हरेई'[९]
/ओ/+/इ/—'जोइये'[१०], 'सोइ'[११]
/ओ/+/ई/- 'दोई'[१२], 'जोई'[१३], 'सोई'[१४]
/ओ/+/उ/—'दोउ'[१५]
/ओ/+/ऊ/—'कोऊ'[१६]

व्यंजन-ध्वनियाँ

क	ख	ग	घ	
च	छ	ज	झ[१७]	
ट	ठ	ड (ड़)[१८]	ढ (ढ़)[१९]	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब (व)[२०]	भ	म
य	र	ल	व (ब)[२१]	
श	ष (श)	स	ह	
क्ष	त्र	(संयुक्त ध्वनियाँ)		

---

१. छं० सं० २०३ । २. छं० सं० १९३ । ३. छं० सं० १९३ । ४. छं० सं० २६१ । ५. छं० सं० २६१ । ६. छं० सं० २३३ । ७. छं० सं० २६३ । ८. छं० सं० ३८९ । ९. छं० सं० १८७ । १०. छं० सं० ३०५ । ११. छं० सं० १५२ । १२. छं० सं० १३० । १६. छं० सं० ३०६ । १४ छं० सं० २२७ । १५. छं० सं० ८५ । १६. छं० सं० ८१ । १७. हस्तलिखित प्रति में /झ/ का प्राचीन रूप मिलता है, परन्तु प्रेस में /झ/ होने के कारण यही ध्वनि संकेत लगाया गया हैं । १८, १९. /ड़/ तथा /ढ़/ ध्वनियां भी बराबर मिलती हैं । हिन्दी में भी ये ध्वनियां हैं । जैसे 'पड़ना', 'पढ़ना' परन्तु वर्णमाला का ज्ञान कराते समय इन ध्वनियों को नहीं बताया जाता । इस पुस्तक में भी 'गड़े' (छ० स० २१५) 'गढ़' (छ० सं० २१५) प्रयुक्त हुए हैं । २०, २१. /ब/ तथा /व/ में कोई अन्तंर नहीं किया गया है । आधुनिक खड़ी बोली में ये दो अलग ध्वनियां हैं और इनके ध्वनिग्राम भी अलग हैं । पर इस पुस्तक में कोई अन्तर किया गया प्रतीत नहीं होता ।

इन व्यंजन-ध्वनियों का आधुनिक रूप इस प्रकार है :

			द्वयोष्ठ	दन्तोष्ठ्य	दन्त्य	वर्त्स्य	मूर्द्धन्य	तालु वर्त्स्य	तालव्य	कण्ठ्य	काकल्य
स्पर्श	अल्पप्राण	अघोष	प्		त्		ट्			क्	
		सघोष	ब्		द्		ड्			ग्	
	महाप्राण	अघोष	फ्		थ्		ठ्			ख्	
		सघोष	भ्		ध्		ढ्			घ्	
स्पर्श संघर्षी	अल्पप्राण	अघोष						च्			
		सघोष						ज्			
	महाप्राण	अघोष						छ्			
		सघोष						झ्			
संघर्षी		अघोष				स्	[ष्]	श्			
		सघोष									ह्
अनुनासिक		सघोष	म्			न्	ण्				
पार्श्विक		सघोष				ल्					
लुंठित		सघोष				र्					
उत्क्षिप्त	अल्पप्राण	सघोष					ड़्				
	महाप्राण	सघोष					ढ़्				
अर्द्ध स्वर		सघोष	[व्]	व्					य्		

[ष्] यह ध्वनि उस समय के उच्चारणानुसार आधुनिक/ख/ही प्रतीत होती है, 'रिष', 'षट' आदि शब्दों में भी; 'अष्ठ' में निश्चित रूप से ऊष्म ध्वनि है।

मूल स्वर-ध्वनियों के आधार पर प्रतापरासो की स्वर-ध्वनियों तथा व्यंजन-ध्वनियों का अन्तर्राष्ट्रीय चार्ट के अनुसार उच्चारण-स्थान नियत करना संभव नहीं, क्योंकि ध्वनियों के अंकित रूप तो हमें प्राप्त हैं, उच्चरित रूप का अभाव है। जहाँ कहीं भी इन ध्वनियों के उच्चरित रूप की बात कही गई है, वहाँ यही अनुमान लगाया गया है कि आज के अनुसार ही ये ध्वनियां निसृत होती होंगीं। अतः इस बात का प्रयास करना व्यर्थ-सा है कि उच्चारण की दृष्टि से इन ध्वनियों का सम्यक् स्थान निर्धारित किया जांय।

कुछ विशेष बातें—

(१) /ष/ वर्ण का दो ध्वनियों के रूप में प्रयोग हुआ है—

/ष/~[ख], [ष] वर्त्तमान रूप

यथा [ख] 'षुस्यालीराम',[१] 'षत्री',[२] 'षेत',[३] 'षवर',[४] 'षत',[५] 'षिलत',[६] 'षोज',[७] 'षीची',[८] 'षेड़े',[९] 'षरचन',[१०] 'षरी',[११] 'षास',[१२] 'षिसे',[१३] 'षाई',[१४]।

[ष] 'रिष',[१५] 'रिषनीन',[१६] 'अष्टजाम',[१७]।

मूर्द्धन्य-ध्वनि के रूप में /ष/ ध्वनि, जो आधुनिक हिंदी में समाप्तप्रायः है, इस पुस्तक में भी नहीं मिलती। /ष/ का अधिक प्रयोग आधुनिक /ख/ के रूप में ही मिलता है। किसी समय यह प्रचार इतना अधिक था कि पुराने संस्कारों के फलस्वरूप मैं स्वयं कभी-कभी 'तमा/खू/' के स्थान पर 'तमा/षू/' लिख जाता हूँ। इसका कारण परिवार में /ख/ ध्वनि को इस रूप में लिखा जाना है।

इस कृति में /ष/ के दो स्पष्ट रूप हैं—

/ष/~[श][१८], [ख] कंठ्य प्रयोग का बाहुल्य है। लिखित/ख/वर्ण तो मिलता ही नहीं है।

---

१. छं० सं० २०६। २. छं० सं० २९, ११४, ११५, १२४ आदि। ३ छं० सं० ४१, १३० आदि। ४. छं० सं० ७०, ८५, १२९ आदि। ५. छं० सं० ९०, ९१, ९२ आदि। ६. छं० सं० ४३१। ७. छं० सं० ११४। ८. छं० सं० १२६, २५९। ९. छं० सं० २१०। १०. छं० सं० ७७। ११. छं० सं० ४०४। १२. छं० सं० १९३। १३. छं० सं० ३४१। १४. छं० सं० ३४०। १५. छं० सं० १९, २०, ७७, ८५ आदि। १६. छं० सं० ११। १७. छं० सं० ४६५। १८ आधुनिक [ष] को संभवतः उस समय [ख] ध्वनि ही माना जाता रहा होगा। यथा—'रिष' (छं० सं० ९), 'संतोष' (छं० सं० ५५), आजकल इन उदाहरणों में प्रयुक्त [ष], 'श' बोला जाता है।

'श' का स्वतंत्र प्रयोग कई स्थानों पर मिलता है—

'शकति',[१] 'श्रवण',[२] 'श्रीमुष',[३] 'श्रोन'[४]; किन्तु अपेक्षाकृत कम। ऊपर लिखे चार उदाहरणों में केवल एक उदाहरण ही 'श' को स्वतन्त्र रूप में प्रस्तुत कर रहा है, अन्य तीन में उसका संयोग /र/ के साथ है। प्रायः संस्कृत तथा विदेशी /श/ ध्वनि /स/ के रूप में मिलती है। अतः /श/ के दो सहस्वन हैं—

/श/~[श], [स]

ऊपर [श] के उदाहरण दिए गए हैं। [स] के अनेक उदाहरण हैं—

'षुसी',[५] 'नरेस',[६] 'सुभ',[७] 'दिसा',[८] 'साह',[९] 'पेस',[१०] 'सेष'[११]।

(२) /ङ/, /ञ/ध्वनियाँ—आधुनिक हिन्दी खड़ी बोली में ये ध्वनियाँ समाप्तप्राय हैं। संस्कृत तथा बोलियों में इनका प्रयोग देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए हिन्दी में प्रयुक्त 'वाङ्मय' अथवा व्रजभाषा का 'नाञ्' आदि शब्द लिए जा सकते हैं। इसी आधार पर आजकल कुछ विद्वानों द्वारा इन ध्वनि-संकेतों को हिंदी की वर्णमाला से हटा देने के प्रस्ताव भी आ रहे हैं। सरकारी तथा गैर सरकारी कुछ समितियों के सुझाव भी इसी प्रकार के हैं।† इन ध्वनियों के संकेत प्रतापरासो में भी नहीं मिलते, किन्तु कवि इन ध्वनियों का अस्तित्व अवश्य स्वीकार करता है। क्योंकि जब वह नागरी वर्णमाला के वर्णों को गिनाता है‡, तो /ङ/, /ञ/ के स्थानों में /न/ का प्रयोग करता है, इनके अस्तित्व को भुलाता नहीं। हम यह कह सकते हैं कि कवि ने एक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया है और इन ध्वनियों को /न/ की सह-ध्वनियों के रूप में स्वीकार किया है। उसके अनुसार—

/न/~[ङ],[१२] [ञ][१३] [न][१४]

---

१. छं० सं० २। २. छं० सं० १०३। ३. छं० सं० ११४। ४. छं० सं० १३१। ५. छं० सं० १६८। ६. छं० सं० २१, ४७ आदि। ७. छं० सं० १। ८. छं० सं० ८१। ९. छं० सं० ४३०। १०. छं० सं० ४०६। ११. छं० सं० ११८, २३६। १२. छं० सं० १३१। १३. छं० सं० १३१। १४. छं० सं० १३१।

---

†इस संबंध में लेखक द्वारा एक पत्र-वाचन के अखिल विश्व ध्वनि-विज्ञान सम्मेलन, मुंस्टे (पश्चिम जर्मनी) में होने को है।

‡छं० सं० १३१, प्रभाव तृतीय।

कवि द्वारा स्वीकृत ध्वनियाँ†

छंद मोतीदाम—

/उ/ उर उर सों नर सोहै उछाह।
/न/ नर नर नेम लिये षग वाह॥
/म/ मर मर माचि रही दल दोय।
/स़/ सर सर सेल पडै झड होय॥‡

/क/ कर कर कायर रोम सुकंपि।
/ख/ षर षर मोर लई सिर चंपि॥
/ग/ गर गर बजी अरव विरट।
/घ/ घर घर घोरत तास अमट॥
[ङ] /न/ नर नर नैक न त्यागत टेक।
/च/ चर चर चंपत एक कूं एक॥
/छ/ छर छर होय छड़ालस पार।
/ज/ जर जर जोय वहै षगधार।
/झ/ झर झर श्रोन बहैत सुरंग।
[ञ] /न/ नर नर रूप चढ्यो नर अंग॥
/ट/ टर टर येक न येक टरंत।
/ठ/ ठर ठर ठीक सु पांव धरंत॥
/ड/ डर डर त्यागि दियो दल दोय।
/ढ/ ढर ढर जो गज चामर होय॥
/ण/ रण रण रचि रहो रण जंग।*
/त/ तर तर तेग बहंत अभंग॥
/थ/ थक थक थाकियो रवि रथ।
/द/ दर दर टूटत सूर सुमथ॥

---

†तृतीय प्रभाव (मांवड़ा युद्ध-वर्णन) छं० सं० १३१।

‡/उ/, /न/, /म/ तथा /स/—ये चार ध्वनियाँ "ॐ नमः सिद्धम्" के द्योतनार्थ दी गई प्रतीत होती हैं।

*/ण/ का प्रयोग शब्द के आरम्भ में नहीं पाया जाता, अतः कवि ने बड़ी युक्ति से उसका अंत्य प्रयोग करके ध्वनि का स्वतंत्र अस्तित्व प्रतिपादित किया है।

/घ/ घर घर तोवन के धमचक।
/न/ नर नर बाजि गजस गरक॥
/प/ पर पर पोलिये दल बहक।
/फ/ फर फर ते पचरंग फरक॥
/ब/ बर बर षेत पड़े हरसाह।†
/भ/ भर भर भट जोंहार भजाय॥
/म/ मर मर मांन पड़े चहुवान।
/य/ यर यर अजमेरी सुराण॥
/र/ रर रर रण दलो पड़ि अवाज।
/ल/ लर लर लछमण कंवार॥
/व/ वर वर लागि पड़े गुरुसाहि।†
(श) /स/ सर सर सूर किलकित धाय॥
(ष) /ख/ षर षर षेत षीस्यो जोंहार।‡
/स/ सर सर नोवति नृपति दुवार॥

/ह/ आश्चर्य है कि कवि ने /ह/ ध्वनि-संबंधी पंक्ति नहीं लिखी। इस में तो कोई संदेह नहीं कि कवि ने इस ध्वनि का सभी रूपों और स्थानों में प्रयोग किया है, परन्तु इस वर्णमाला-विवरण में इस वर्ण का अभाव है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि यदि /ह/ पर एक पंक्ति लिखी जाती—जैसा प्रत्येक अन्य वर्ण के लिए किया गया है—जो दूसरी पंक्ति लिखने के लिए कवि के पास कोई अन्य ध्वनि बाकी नहीं थी। प्रचलित /क्ष/, /त्र/, /ज्ञ/ ध्वनियों को कवि ने इस विवरण में स्थान नहीं दिया है। इन ध्वनियों में से कवि ने प्रथम दो ध्वनियों का प्रयोग तो प्रथक् ध्वनि-संकेतों के रूप में किया भी है—

---

†कवि ने /ब/ तथा /व/ के स्वतंत्र अस्तित्व तो स्वीकार किए हैं, परन्तु आधुनिक प्रयोग के अनुसार उनका अंतर नहीं दिखाया है और पुस्तक में अनेक स्थानों पर इन ध्वनियों का उलटफेर देखा जाता है।

‡कवि ने तीनों ध्वनियों—/श/, /ष/ तथा /स/—का अस्तित्व स्वीकार किया है, क्योंकि तीनों के लिए पृथक् पंक्तियां लिखी हैं, परन्तु /श/ तथा /स/ दोनों के लिए /स/ का ही प्रयोग करके यह बताया है कि उसे /स/~[श] [स] मानने में आपत्ति नहीं। इसी प्रकार की प्रवृत्ति भी बराबर देखने को मिलती है—/श/ का प्रयोग बहुत कम देखने को मिलता है। /ष/ ध्वनि तो कवि ने मानी है, किन्तु प्रचलित ध्वनि-प्रयोग के आधार पर उसे आधुनिक /ख/ध्वनि का ही स्थानापन्न स्वीकृत किया जाना प्रतीत होता है। इस पंक्ति को पढ़ने में ही आधुनिक /ष/ ध्वनि न बोलकर /ख/ उच्चरित करना ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

/क्ष/ 'अक्षर'[1]

/त्र/ आदि—'त्रियो'[2], 'त्रमाट'[3], 'त्रहूँ'[4], 'त्रिय'[5], 'त्रतीयेस'[6];

अंत—'पुत्री'[7], 'सत्रु'।[8]

ऊपर के उद्धरण से निकले हुए कुछ निष्कर्ष—

/न/ ⌐ [ङ] [ञ] [न]

/न/ ~ ≁ [ण] विकल्प से

प्रयोग की दृष्टि से /ण/ का स्वतंत्र अस्तित्व भी है और राजस्थानी प्रभाव से अनेक स्थानों में /न/ के स्थान पर भी प्रयुक्त हुआ है।

/व/ ⌐ [ब] [व] एक प्रकार से दोनों का अभेद।

/ष/ उच्चारण की दृष्टि से, प्रायः, /ख/ (दो-चार स्थानों को छोड़ कर)

/स/ ⌐ [श] [स] प्रायः /स/ ही।

(३) /य/ अर्द्धस्वर तथा व्यंजन दोनों रूपों में

/य/ ~ [य़] [य]।

उदाहरण [य़] /इ/ तथा /ए/ के रूप में

'होयस'[9], 'कीजिये'[10], 'जोय'[11], 'किय'[12], 'आय'[13],

'येक'[14], 'लियेस'[15], 'लषिये'[16], 'हुय'[17]

[य] 'यों'[18], 'या'[19]—आदि

'त्यागि'[20], 'ध्याय'[21]—मध्य

'गायं'[22], 'भाज्या'[23]—अंत्य स्वर से पूर्व

निष्कर्ष—

$$/य/ \neg [य़]\ [य] : \frac{/इ/, /ए/}{अन्त्य} : \frac{स्वर - अर्द्ध\ स्वर}{व्यंजन}$$

---

१ छं० सं० १। २. छं० सं० २२। ३. छं० सं० ६४, ६६, १२८ आदि। ४. छं० सं० ७८। ५. छं० सं० ८८। ६. छं० सं० २६। ७. छं० सं० १०। ८. छं० सं० ३। ९. छं० सं० ५०। १०. छं० सं० १०५। ११. छं० सं० १०, ५३, १०३, ११० आदि। १२. छं० सं० ११०। १३. छं० सं० १३४। १४. छं० सं० ४६, १०३ आदि। १५. छं० सं० २०५। १६ छं० सं० १३६। १७. छं० सं० ८८। १८. छं० सं० १०१, १०३, ११७ आदि। १९ छं० सं० १५, ८५, ९७ आदि। २०. छं० सं० १३१। २१. छं० सं० १४५। २२. छं० सं० ५२। २३. छं० सं० १३६।

(४) प्रतापरासो की लिखित ध्वनि-संकेतावलि के अनुसार

/ड/ — [ड] [ड़]

/ढ/ — [ढ] [ढ़]

/ब/ — [ब] [व]

आधुनिक हिन्दी में ये ध्वनियाँ अलग-अलग हैं; जैसे—

/ड/ 'डोला'; /ड़/ 'पकड़'

/ढ/ 'ढकना'; /ढ़/ 'पढ़'

/ब/ 'बिस्तर'; /व/ 'विनय'

शब्दों के आदि स्थान में /ड़/ /ढ़/ नहीं मिलते।

प्रतापरासो में इनका अभेद है—

/ढ/, /ढ़/ 'गढ'[१], 'गढ़'[२]; 'चढै'[३], 'चढ़े'[४]

/ड/ /ड़/ 'पडै'[५] 'पड़े'[६]; 'पीपलखेडै'[७] 'षेड़े'[८]; 'वड'[९], 'वड़'[१०]

/ब/ /व/ 'नजब'[११], 'नजव'[१२]; 'बंदूक'[१३], 'वदूकै'[१४]; 'बहै'[१५], 'वहै'[१६]

ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि इन शब्दों का उच्चारण ध्वनियों की दृष्टि से भी ऐसा ही था, जैसा कि लिखा गया है—क्योंकि एक ही छंद में भी दोनों प्रकार के ध्वनि-संकेत देखे जाते हैं। हम इसे लिपिकार की असावधानी भी कहना उचित नहीं समझते, क्योंकि अनुमान यही किया जाता है कि मूल प्रति में भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति रही होगी। इसका एक ही कारण समझ में आता है कि उन दिनों, उस प्रान्त विशेष में, इन ध्वनियों में भेद-भाव नहीं रहा होगा। यह प्रवृत्ति आज भी देखी जाती है—बोलने तथा लिखने, दोनों में ही। अतः इनका इधर-उधर उलट-फेर होना स्वाभाविक-सा ही है।

उच्चारण सम्बन्धी कुछ अन्य बातें

(अ) राजस्थानी ध्वनि-प्रभाव—

ग्रन्थ की भाषा ब्रज है। परन्तु राजस्थान में लिखे जाने के कारण, राजस्थान के राज्यों से सम्बन्धित होने से, राजस्थानी

---

१. छं० सं० ३१। २. छं० सं० २७। ३. छं० सं० ५५। ४ छं० सं० ७४। ५. छं० सं० ८५। ६. छं० सं० १३१। ७. छं० सं० २१०। ८. छं० सं० ४२८। ९. छं० सं० ५१, ५४। १०. छं० सं० २१०। ११. छं० सं० २१७। १२. छं० सं० २१८। १३. छं० सं० २३१। १४. छं० सं० १८७। १५. छं० सं० १८९। १६. छ.० सं० १८९।

वीरों का चित्रण करने से कवि की भाषा पर राजस्थानी प्रभाव पड़ा है। इन सभी कारणों में स्थान का प्रभाव अधिक महत्त्वपूर्ण है। वैसे व्यक्तियों का प्रभाव भी देखा गया है, जैसे सूदन द्वारा लिखित सुजानचरित्र में, काव्य की भाषा ब्रज होने पर भी, मुसलमान पात्रों द्वारा खड़ी बोली का प्रयोग कराया गया है।† इस पुस्तक में यह प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती। इसमें भी अनेक मुसलमान पात्र हैं—नजबखां, फीरोजखां, होशदारखां आदि। परन्तु वे ब्रजभाषा ही बोलते हैं—

नजबखां—

'अलवर साहि सुठांम किला यह हमकु दीजत।'[१]

होशदारखां—

'होसदारषां बोलिये, सुनतो यसो जुवाब।
वा घर या घर येकही, आनों नजब नवाब॥'[२]

फीरोजखां—

'महाराज राजै नृपति नरेस।
दीजियेक हुकम प्रवेस॥[३]

कुछ शब्द प्रस्तुत हैं, जिन पर राजस्थानी ध्वनि-प्रभाव दिखाई देता है—

'पठांण'[४], 'कौण'[५], 'जाण'[६], 'वणी'[७], 'बषाण'[८], 'जीवणषां'[९], 'अणि'[१०], 'निमष'[११], 'हलद्या'[१२], 'सीसोद्या'[१३], 'सींध्यो'[१४], 'राम सेवग'[१५], 'सूँ'[१६], 'राडि'[१७]।

यह स्वाभाविक ही है कि उच्चारण पर यह प्रभाव ढूँढाड़ी और मेवाती है।‡

---

१. छं० सं० २९८। २. छं० सं० २४३। ३. छं० सं० १७६। ४. सं० छं० ११८। ५. छं० सं० २। ६. छं० सं० २९। ७. छं० सं० २०१। ८. छं० सं० २८। ९. छं० सं० १७९। १०. छं० सं० ३६९। ११. छं० सं० ३५९। १२. छं० सं० ३९३। १३. छं० सं० ३६३। १४. छं० सं० ४२१। १५. छं० सं० १७९। १६. छं० सं० ७२। १७ छं० सं० १८५।

---

†"इस वास्ते तुम से अरज बहु भांति कीजत है बली।
अब हाथ उस पर रक्खिये तब लेइ जंग फते अली॥"

‡अलवर के काफी हिस्से में अब भी मेव रहते हैं, जो मेवाती का प्रयोग करते हैं। ढूंढाड़ देश का प्रभाव तो पड़ना ही चाहिए।

(आ) व्रजभाषा-ध्वनि-प्रभाव सर्वत्र लक्षित है और इसी कारण मैं इस काव्य को राजस्थानी ध्वनियों से किंचित प्रभावित व्रजभाषा-काव्य मानता हूँ। ध्वनियों के अतिरिक्त शब्दों पर भी यह प्रभाव है।

(इ) संयुक्त (प्रायः सम-समुच्चय) उच्चरित ध्वनि के स्थान पर एक मात्र ध्वनि। यथा—

'हथ'[१] हथ्थ'; 'भजिय'[२] 'भज्जिय'; 'विरट'[३] 'विरट्ट'; 'गरक'[४] 'गरक्क';
'चक'[५] 'चक्क'; 'फरक'[६] 'फरक्क'; 'रथ'[७] 'रथ्थ'; 'मथ'[८] मथ्थ'।;

इसी प्रकार बहुत-से अन्य स्थानों में —

'कछी अरबी तुरकीस ताजी'[९] पढ़ने पर 'कच्छ्छी अरब्बी तुरक्कीस ताजी' उच्चरित होगा।

संस्कृत के उच्चारण नियमानुसार द्वित्व—

"नर नवलेस व्रजपति सोई"[१०] ('व्रजप्पति' उच्चारण किया जायगा)

(ई) एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता—

अतिरिक्त /स/ का प्रयोग—(अनेक उदाहरणों में से कुछ ही दिए जा रहे हैं)—

/अ/	'अगैस'[११]	'अटकैस'[१२]	'अगै /स/',	'अटकै /स/'
/आ/	'आयेस'[१३]	'आगैस'[१४]	'आये /स/',	'आगै /स/'
/इ/	'इदरेस'[१५]		'इदर /स/'	
/ई/	'ईदरेस'[१६]		'ईदर /स/'	
/उ/	'उवरंतस'[१७]	'उमगेस'[१८]	'उवरंत /स/',	'उमगे /स/'
/अै/	'अैसेस'[१९]		'अैसे /स/'	
/क/	'कीजैस'[२०]	'कहीस'[२१]	'कीजै /स/',	'कही /स/'
	'करनीस'[२२]	'कोटस'[२३]	'करनी /स/',	'कोट /स/'

१. छं० सं० ३९७, 'ज्याये तो मो हथ ही, मारूं तो मो हथ।' २. छं० सं० ३१५ 'घने बड़ भजिय षगनसींह। ३ से ८ तक सभी छं० सं० १३१ में—३ गर गर वजी अरब विरट (अरब्ब भी)। ४. नर नर वाजि गजस गरक (गजस्स भी)। ५. धर धर तोवन के धम चक। ६. फर फर ते पचरंग फरक। ७ थक थक थाकि रवि रथ। ८. दर दर द्रूट सूर सु मथ। ९. छं० सं० ३८२। १०. छं० सं० २२७। ११. छं० सं० ३५५। १२. छं० सं० २७३। १३. छं० सं० २०८। १४. छं० सं० २४६। १५. छं० सं० ५७। १६. छं० सं० २२५। १७ छं० सं० २७। १८ छं० सं० ३२१। १९ छं सं० ६। २०. छं० सं० १९८। २१. छं० सं० १९७। २२. छं० सं० १८१। २३. छं० सं० २१०।

/ष/	'षत्रीस'[1]		'षत्री /स/'	
/ग/	'गजस'[2]	'गढ़स'[3]	'गज /स/',	'गढ़ /स/'
	'गाजीसथान'[4]		'गाजी /स/ थान'	
/घ/	'घड़ीयालस'[5]		'घड़ीयाल /स/'	
/च/	'चलियेस'[6]	'चढियेस'[7]	'चलिये /स/',	'चढिये /स/'
	'च्यारिस'[8]		'च्यारि /स/'	
/छ/	'छत्रीस'[9]		'छत्री /स/'	
/ज/	'जरीस'[10]	'जंपुरस'[11]	'जरी /स/',	'जैपुर /स/'
	'जोड़ीस'[12]	'जोड़ेस'[13]	'जोड़ी /स/',	'जोड़े /स/'
/ट/	'टरिहैस'[14]	'टहलैस'[15]	'टरिहै /स/',	'टहलै /स/'
/ठ/	'ठीकस'[16]		'ठीक /स/'	
/ड/	'डेरास'[17]		'डेरा /स/'	
/त/	'तुरकीस'[18]	'तिनकेस'[19]	'तुरकी /स/',	'तिनके /स/'
	'तेगस'[20]	'तीजैस'[21]	'तेग /स/',	'तीजै /स/'
/थ/	'थपेस'[22]		'थपे /स/'	
/द/	'देषुस'[23]	'दाहिनीस'[24]	'देषु /स/',	'दाहिनो /स/'
	'दगोस'[25]	'दूजैस'[26]	'दगो /स/',	'दूजै /स/'
/ध/	'धणीस'[27]	'धूलैस'[28]	'धणी /स/',	'धूलै /स/'
	'धरेस'[29]	'धारीस'[30]	'धरे /स/',	'धारी /स/'
/न/	'नामस'[31]	'निरवाणस'[32]	'नाम/स/',	'निरवाण /स/'
	'नायस'[33]	'नलस'[34]	'नाय/स/',	'नल /स/'
/प/	'पाछैस'[35]	'पछिमस'[36]	'पाछै/स/',	'पछिम /स/'
	'प्रथमोस'[37]	'पूछीस'[38]	'प्रथमी/स/',	'पूछो /स/'

---

१. छं० सं० १२१। २. छं० सं० १३१। ३ छं० सं० २१०। ४. छं० सं० ३२७। ५. छं० सं० २१५। ६. छं० सं० १५२। ७. छं० सं० १७१। ८ छं० सं० ४३४। ९. छं० सं० ३५। १०. छं० सं० ४६०। ११. छं० सं० ४१४। १२. छं० सं० १०३। १३. छं० सं० १०३। ४. छं० सं० १७६। १५. छं० सं० ४४९। १६. छं० स० २१०। १७ छं० सं० ४७। १८. छं० सं० ३७८। १९. छं० सं० १८?। २०. छं० सं० ३७। २१. छं० सं० १८१। २२. छं० सं० ६। २३. छं० सं० ३३६। २४. छं० सं० १५२। २५. छं० सं० २०२। २६. छं० सं० १८१। २७ छं० सं० २१६। २८. छं० सं० ३५६। २९. छं० सं० ४५। ३०. छं० सं० ३९४। ३१. छं० सं० ४१९। ३२. छं० सं० ३१५। ३३. छं० सं० ४०४। ३४. छं० सं० १९। ३५. छं० सं० २४६। ३६. छं० सं० ४१४। ३७. छं० सं० २८३। ३८. छं० सं० १०।

/फ/	'फिरईस'[१]	फिरजीस'[२]	'फिरई/स/',	'फिरजी/स/'
/ब/	'बाहिरस'[३]	'बूझीस'[४]	'बाहिर/स/',	'बूझी/स/'
	'बोलोस'[५]	'बकसेस'[६]	'बोली/स/',	'बकसे/स/'
/भ/	'भनियेस'[७]	'भजेस'[८]	'भनिये/स/',	'भजे/स/'
	'भारीस'[९]	'भलेस'[१०]	'भारी/स/',	'भले/स/'
/म/	'मानैस'[११]	'मिलियेस'[१२]	'मानै/स/'.	मिलिये/स/'
	'मुहीमस'[१३]	मनहारस'[१४]	'मुहीम/स/',	'मनहार/स/'
	'मंत्रीस'[१५]	'मेरीस'[१६]	'मंत्री/स/',	'मेरी/स/'
/र/	'रावराजास'[१७]	'रटकैस'[१८]	'रावराजा/स/',	'रटकै/स/'
/ल/	'लरिहैस'[१९]	'लीनेस'[२०]	'लरिहै/स/',	'लीने/स/'
	'लियेस'[२१]	'लगेस'[२२]	'लिये/स/'.	'लगे/स/'
/व/	'वीजोस'[२३]	'वढेस'[२४]	'वीजो/स/',	वढे/स/'
	'वसवैस'[२५]		'वसवै/स/'	
/स/	'साजेस'[२६]	'सीतासराम'[२७]	'साजे/स/',	'सीता/स/राम'
	'साम्हीस'[२८]	'सामीस'[२९]	'साम्ही/स/',	'सामी/स/'
	'सुतस'[३०]	'सुनिहोस'[३१]	'सुत/स/',	'सुनिहो/स/'
/ह/	'हसतीस'[३२]	'होदास'[३३]	'हसती/स/ ,	'होदा/स/'
	'होवेस'[३४]	'हुनेस'[३५]	'होवे/स/',	'हुने/स/'

इन उदाहरणों में /स/ का योग—

(क) प्रायः अंत में हुआ है।

(ख) कुछ स्थानों पर बीच में भी है। जैसे—

'गाजी/स/थान'[३६], 'सीता/स/राम'[३७]

---

१. छं० सं० २०८। २. छं० सं० २२३। ३ छं० सं० ३२७। ४. छं० सं० १६६। ५. छं० सं० १०। ६. छं० सं० ६। ७. छं० सं० २१५। ८. छं० सं० २०८। ९. छं० सं० १३८। १०. छं० सं० २८३। ११. छं० सं० १९८। १२. छं० सं० २०८। १३. छं० सं० १७४। १४. छं० सं० ७६। १५ छं० सं० ४७। १६. छं० सं० १०५। १७. छं० सं० ३६६। १८. छं० सं० ३८२। १९ छं० सं० १७६। २० छं० सं० २०८। २१. छं० सं २०५। २२. छं० सं० २०८। २३ छं० सं० १९८। २४. छं० सं० २४४। २५ छं० सं० ३७४। २६ छं० सं० १७१। २७. छं० सं० २२९। २८. छं० सं० ४३२। २९. छं० सं० १२८। ३०. छं० सं० २३। ३१. छं० सं० १२१। ३२ छं०सं० १२१। ३३. छं० सं० २८३। ३४. छं० सं० ४०४। ३५. छं० सं० ३४०। ३६. छं०सं० २२९। ३७. छं० सं० ३२७।

(ग) सभी प्रकार के पदों में हुआ है—

संज्ञा : 'हसतीस'[१], 'होदास'[२], 'रावराजास'[३], 'गढ़स'[४], 'जैपुरस'[५], डेरास'[६]।

सर्वनाम : 'मेरीस'[७], 'तिनकेस'[८]।

विशेषण : 'दुजैस'[९], 'तीजैस'[१०], 'प्रथमीस'[११], 'च्यारिस'[१२] (प्रायः संख्यावाचक विशेषणों में)।

क्रिया : 'पूछीस'[१३], 'थपेस'[१४], 'टरिहैस'[१५], 'चलियेस'[१६]।

अव्यय : 'आगैस'[१७], 'अगैस'[१८], 'अैसेस'[१९], 'बाहिरस'[२०]।

यह एक विचारणीय प्रश्न है कि कवि ने शब्दों के साथ /स/ का योग क्यों किया है। नीचे लिखी कुछ बातें सामने आती हैं—

(१) छंद-भंग की दृष्टि से—जहाँ कहीं छंद-भंग होता दिखाई पड़ता है, कवि /स/ ध्वनि को बढ़ा देता है। इस संभावित कारण में तीन प्रश्न उठते हैं—

(क) क्या कवि इतनी निम्न कोटि का है कि उसे भरती की ध्वनियाँ पग-पग पर अपेक्षित होती हैं ?

(ख) क्या एक /स/ ध्वनि के द्वारा ही कवि छंद-भंग दोष से बचने की चेष्टा करना चाहता है ? ध्वनियाँ तो और भी अनेक हैं, फिर वह /स/ ध्वनि का प्रयोग सर्वत्र क्यों करता प्रतीत होता है ?

(ग) कवि ने इस अतिरिक्त ध्वनि का प्रयोग प्रायः शब्द के अन्त में किया है। दो-चार स्थानों पर बीच में भी यह ध्वनि आ गई है। इस प्रकार का निश्चित प्रयोग क्या केवल छंद-भंग दोष को ही बचाने के लिए किया गया है ?

इन तीनों प्रश्नों के कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिखाई देते। यह तो नहीं माना जा सकता कि कवि को भरती की ध्वनियाँ रखने की आवश्यकता

---

१. छं० सं० १२१। २. छं० सं० २८३। ३ छं० सं० ३६६। ४. छं० सं० २१०। ५ छं० सं० ४१४। ६ छं० सं० ४७। ७. छं० सं० १०५। ८. छं० सं० १८१। ९. छं० सं० १८१। १०. छं० सं० १८१। ११. छं० सं० २४६। १२. छं० सं० ४३४। १३. छं० सं० १०। १४. छं० सं० ६। १५ छं० सं० २१०। १६. छं० सं० १५२। १७. छं० सं० २४६। १८. छं० सं० ३५५। १९. छं० सं० ६। २०. छं० सं० ३२७।

पड़ी हो। यदि उसे ऐसा करने की आवश्यकता भी पड़ी थी, तो एक ही ध्वनि के पीछे पड़ना उचित प्रतीत नहीं होता। कवि का शब्द-कोष और भाषा-ज्ञान देखने पर हम उसे साधारणतः अच्छा ही स्थान देंगे। अतः इस अतिरिक्त वर्ण के प्रयोग में कोई और कारण देखना चाहिए।

(२) संभव है १८०, २०० वर्ष पूर्व बोलचाल में अतिरिक्त /स/ का प्रयोग था और वाणी-माधुर्य की दृष्टि से कवि ने भी इस ध्वनि का प्रयोग किया हो। इस सम्बन्ध में व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर एक निवेदन है।

मैं लगभग चार वर्षों तक अलवर में रहा हूँ और वहाँ सामान्यतः बोली जाने वाली बोली का भी कुछ अध्ययन किया है। आज भी /स/ ध्वनि का योग कई स्थानों पर पाया गया —

(१) अगर आप आ गए, तब /स्/ तौ मैं चला जाऊँगा।

(२) जब /स्/ तौ आप आ गए, तब /स्/ तौ मैं चला ही चलूंगा।

(३) अपन /स्/ तौ कभी पीछे हटते नहीं।

(४) रामू /स्/ तौ काम कर नहीं सकता।

१. यहाँ (क) अव्यय पद 'तब' 'जब'

(ख) सर्वनाम पद 'अपन'

(ग) संज्ञा पद 'रामू'

के साथ /स/ का योग है। और इस अतिरिक्त ध्वनि का योग भी शब्द के अंत में ही है।

२. /स/ ध्वनि के उपरान्त 'तौ' का प्रयोग सभी स्थानों पर हो रहा है। संभव है, अन्य प्रसंगों में भी प्रयोग होता हो, पर मैंने /म/ का प्रयोग इसी प्रकार के संदर्भ में सुना था।

३. /स/ का प्रयोग क्रिया पदों के साथ मेरे सुनने में नहीं आया।

४. ऐसा प्रतीत होता है कि /स/ का योग (क) अर्थ को बल प्रदान करने हेतु किया जा रहा हो, अथवा (ख) बोलने में जो विलगता दिखाई दे रही हैं, उसको जोड़ने के लिए किया जा रहा हो। (ग) 'तौ' सहित शब्द एक ही मालूम होता है

'तबस्तौ'	यदाकदा	'तबस+तौ'
'जबस्तौ'	,,	'जबस+तौ'

'तबस्तौ'	कभी-कभी	'तबस+तौ'
'अपनस्तौ'	,,	'अपनस+तौ'
'रामूस्तौ'	,,	'रामूस+तौ'

इन उदाहरणों के आधार पर यही कहा जा सकता है कि काव्यकार ने बोलचाल की यह सकारता स्वीकार कर ली हो। माधुर्य की अभिवृद्धि तो हुई ही है। संभवतः आज की शब्द-सकारता १५०, २०० वर्ष पूर्व अधिक सकारता का अवशिष्ट मात्र हो। वैसे भी पद-पूर्ति की दृष्टि से स्थान-विशेष में किसी एक ध्वनि को कवि अपनालेता है और स्थल-स्थल पर उसका प्रयोग करता है। संस्कृत, राजस्थानी आदि में भी यह प्रवृत्ति देखी जाती है। यह प्रवृत्ति काव्य-शास्त्र से भी स्वीकृत है।

(उ) आधुनिक हिन्दी में प्रयुक्त 'एक' 'ऐसा' 'लिए' 'सुनिए' आदि स्थान पर
'येक'[१] 'येस'[२] 'लिये'[३] 'सुनिये'[४] आदि।

इस स्थिति पर दो भागों में विचार किया जा सकता है—

(१) 'एक'—'येक', 'यक'[५] भी आरम्भ में प्रयुक्त
'ऐसा'—'येस, 'यैस'[६] भी

संभवतः यह विदेशी प्रभाव है। 'एक' को 'यक' कहा जाता है। कवि ने 'यक' को भी स्वीकार किया है और अनेक पंक्तियों में यह प्रयोग देखा जा सकता है। साथ ही हिन्दी के 'एक' को भी विदेशी 'यक' के साथ मिलाकर 'येक' बना दिया। जब /ए/ ध्वनि को 'ये' में बदल दिया, तब 'ऐसा' के लिए 'येस', यैस', 'यसे'[७] आदि प्रयोग किए। इसके साथ ही—

'ऐसी'—'यसी'[८]	'इन्होंने'—'यन'[१२]
'इतने'—'यतने'[९]	'एकही'—'येकौ'[१३]
'इतनी'—'यतनी'[१०]	'इमि'—'यम'[१४]
'एक ने'—'येक ने'[११]	'इन'—'यन'[१५]

आदि में /य/ का प्रयोग देखा जाता है।

---

१. छं० सं० ४६, १०३, १२७ आदि। २. छं० सं० १८१। ३. छं० सं० २०५। ४. छं० सं० ६८। ५. छं० सं० ६६, ६७, ६८, ७७ आदि। ६ छं० सं० १६६। ७. छं० सं० २४३। ८ छं० सं० ८५, १४२। ९. छं० सं० १०३। १०. छं० सं० ५२। ११. छं० सं० ४४६। १२ छं० सं० ३५२। १३. छं० सं० ३१०। १४. छं०सं० ६८। १५. छं० सं० २३९।

कवि ने केवल एक स्थान को छोड़कर /ए/ का प्रयोग नहीं किया है। इसके स्थान पर /य/, /ये/, /यै/ आदि का यथा अवसर प्रयोग किया है। साथ ही बहुत-से स्थानों पर आधुनिक आरम्भिक /इ/ ध्वनि भी /य/ के द्वारा प्रतिपादित की गई है। (ऊपर के उदाहरण देखें)।

(२) 'लिए' 'लिये' —अन्त में (स्वर सहित) प्रयुक्त
'सुनिए' 'सुनिये'

/ये/ और /ए/—वर्तनी का यह विवाद आज भी चल रहा है। वर्णमाला-सुधार तथा वर्तनी-स्थिरीकरण की अनेक बातें और प्रस्ताव सुने जाने पर भी, /ये/ और /ए/ (यदाकदा /यी/ और /ई/) की समस्या हल होती दिखाई नहीं देती। वर्णमाला के तो कुछ प्रस्ताव भी उपस्थित हुए और आज भी प्रश्न चल रहा है, परन्तु शब्दों के अन्त में आने वाले इन वर्णों के तो अभी तक सुझाव भी नहीं देखे गये। किशोरीदास वाजपेयी आदि ने अपना निष्कर्ष देने की चेष्टा अवश्य की, परन्तु विद्वानों ने अभी तक कुछ निश्चित् मत नहीं बनाया है और मनमाने रूप में इनका प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी एक ही लेखक बिना किसी कारण के कभी एक प्रकार से लिखता है, कभी दूसरे प्रकार से। कवि ने /ए/ ध्वनि को स्वीकार न करके अपने को इस विवाद से बचा लिया है। जब वह /ए/ को मानता ही नहीं, तब

/ए/ ~ [ए] [ये]

का विवाद ही कैसा? हिन्दी में—

'सुनि/ए/ ~ /ये', 'करि/ए/ ~ /ये', 'कीजि/ए/ ~ /ये'
'दि/ए/ ~ /ये', 'लि/ए/ ~ /ये', 'ग/ए/ ~ /ये'

बिना किसी अंतर के चलते हैं। इन अङ्कनों पर पर्याप्त विचार-विनिमय होकर कोई रूप स्थिर होना चाहिए। ध्वनि-विज्ञान, लिपि-विज्ञान, भाषा-विज्ञान आदि किसी भी दृष्टि से यह स्थिति वांछनीय नहीं। जाचीक जीवण ने इस स्थिति को समाप्त कर दिया है, लिपिकार के लिए किसी प्रकार के विकल्प का प्रश्न ही नहीं छोड़ा।† /ए/ के स्थान पर /ये/ का प्रयोग आदि, मध्य, अंत—तीनों स्थानों में हुआ है—

---

†एक स्थान पर जो /ए/ का प्रयोग मिलता है, उसे लिपिकार की भ्रांति मानना ही उचित होगा। मैं इस विषय पर अपना निर्णय देकर स्वीकृत-लिपि के महत्त्व को घटाना उचित नहीं समझता।

आदि—'ये/क/'[1]

मध्य —'चलि/ये/स'[2]

अंत —'लि/ये/'[3]

हिंदी के उदाहरणों में/ए/~/ये/ की समस्या प्रायः अंत में आती है। जाचीक जीवण ने इस समस्या के सभी पहलुओं पर अपना व्यक्तिगत समाधान प्रस्तुत किया है। हिन्दी के विद्वान आदि तथा अंत दोनों स्थानों का भी ध्यान रखते हुए कवि द्वारा प्रस्तुत समाधान पर विचार कर सकते हैं।

इस प्रकार प्रतापरासो के ध्वनिग्राम ऊपर लिखे अनुसार हैं। इनका प्रयोग नीचे लिखे प्रकारों में मिलता है—

(१) स्वर (i) एक स्वर का स्वतंत्र रूप में प्रयोग—

'अरबी'[4] 'आज'[5] 'इति'[6]—आदि

'उपाईय'[7], 'जोईये'[8]—मध्य

'षाई'[9] 'लराई'[10]—अंत

(ii) एक से अधिक स्वरों का साथ-साथ प्रयोग—

'आइय'[11],

(iii) व्यजनों के साथ मात्रा रूप में—

'लड़ाई'[12]—'/ल्/+/अ/+/ड़्/+/आ/+/ई/'

'षिलत'[13]—'/ष्/+/इ/+/ल्/+/अ/+/त्/+/अ/

(२) व्यंजन (i) व्यंजन+स्वर⌣'गजस'[14]—'/ग्^{C}/+/अ^{V}/+/ज्^{C}/+/अ^{V}/+/स्^{C}/+/अ^{V}/' CVCVCV

(ii) व्यंजन+व्यंजन+स्वर⌣'स्योह'[15]—

'/स्^{C}/+/य्^{C}/+/ओ^{V}/+/ह/+/अ/' CCV

(iii) व्यंजन+व्यंजन+व्यंजन+स्वर 'सत्र' का 'त्र'⌣/स्^{C}/+/त्^{C}/+/र्^{C}/+/अ^{V}/ CCCV

(vi) अन्य समुच्चय

१. स्वर+व्यंजन+स्वर 'अति'[16]⌣'/अ$_{V}$/+/त्$_{C}$/+इ$_{V}$/' VCV

---

१. छं० सं० ४६। २. छं० सं० २२५। ३. छं० सं० २०५। ४. छं० सं० १८७। ५. छं० सं० २५७। ६. छं० सं० २८९। ७. छं० सं० २७६। ८. छं० सं० ३०५। ९. छं० सं० ३४०। १०. छं०सं० ३५४। ११. छं०सं० १९३। १२. छं०सं० २६१। १३. छं०सं० ४३१। १४. छं०सं० १३१। १५. छं०सं० ४३७। १६. छं०सं० २०३।

२. स्वर+स्वर+व्यंजन+स्वर

'आइय'[1]—'/आ$_v$/+/इ$_v$/+/य्$_c$/+/अ$_v$/' VVCV

३. स्वर+व्यंजन+स्वर+व्यंजन

'आयव'[2]

'/आ$_v$/+/य्$_c$/+/अ$_v$/+/व्$_c$/' VCVC

यहाँ /व्/ व्यंजनांत ही बोला जाता है—लिखने में स्वरांत करते हैं।

संयुक्त वर्णों में विभिन्न प्रकार के योग उपलब्ध होते हैं, जिनका स्पष्टीकरण संलग्न तालिका से हो सकेगा। बहुत-से योग इस पुस्तक में ऐसे हैं, जो लिखित रूप में उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु जिनका उच्चरित रूप निःसदेह 'समुच्चय' प्रवृत्ति का प्रतिपादन करता है। यथा—

'हथ'[3]—'हत्थ', 'हथ्थ'

'चक'[4]—'चक्क'

'जट'[5]—'जट्ट'

'जुधं'[3]—'जुद्धं', 'जुध्धं'

'कजै'[7]— कज्जै'

'वरछी'[8] 'बरच्छी', 'बरछ्छी'

'चलयं'[9]—'चल्लयं'

'नवाव'[10]—'नव्वाब'

इन संयुक्त वर्णों का उच्चरित अस्तित्व दो रूपों में दिखाई पड़ता है—

(i) लेखन-सुगमता—'हथ', 'चक', 'जट', 'जुधं' (ऊपर के उदाहरणों में),

(ii) छंद-पूर्ति, लय-नियोजन—'वरछी, 'नवाब' (ऊपर के उदाहरणों में)।

प्रतापरासो में व्यंजन-वितरण

/क/ आदि—'कनक'[11] 'कोट'[12] 'कारी'[13]

मध्य —'कांकबाड़ी'[14] 'वाकावत'[15] 'वकसेस'[16]

---

१. छं० सं० १६३। २. छं० सं० ३७५। ३. छं० सं० ३६७—'ज्याये तो मो हथ ही मारे तो मो हथ'। ४. छं० सं० १३१— घर घर तोवन के घमचक'। ५ व ६. छं० सं० १३०—'दतै जट जोंहार हल भूप जुधं'। ७. छं० सं० १८७—'वजी अमाव चढ़े जुध कजै'। ८. छं० सं० १८७—'चढे तेग तीरे कमानै वरछी'। ९. छं०सं० १६४—'गजंस बाजि चलयं'। १०. छं०सं० ४०१ – 'यों सुन जुवाब नवाव नर, दल साम्ही घर ध्याय'। ११. छं०सं० १४६। १२. छं० सं० २०८। १३ छं० सं० २३१। १४. छं० सं० २१०। १५. छं०स० १२६। १६. छं०सं० ६।

अंत†—'कनक'[1] 'येक'[2] 'कीतेक'[3] 'कटक'[4]

/ख//ष/ आदि—'षुसाल'[5] 'षवरि'[6] 'षास'[7]

मध्य —'नषेस'[8] 'दिषणी'[9] 'तोषार'[10]

अंत —'असेष'[11] 'दुष'[12] 'लष'[13]

/ग/ आदि—'गगन'[14] 'गरकै'[15] गढ़ी'[16]

मध्य —'गगन'[17] 'चौगान'[18] 'जगतेस'[19]

अंत —'जोग'[20] 'चंग'[21] 'संग'[22]

/घ/ आदि—'घर'[23] 'घायल'[24] 'घटि'[25]

मध्य —'वाघणी'[26] 'सुघर'[27] 'सुघाट'[28]

अंत —'बाघ'[29] 'दीरघ'[30]

/च/ आदि—'चमचमै'[31] 'चौबीस'[32] 'चौकौर'[33]

मध्य —'चमचमै'[34] 'चचोहै'[35] 'पचरंग'[36]

अंत —'करिहैंच'[37] 'पंच'[38] 'कुंच'[39]

/छ/ आदि—'छाजूराम'[40] 'छल'[41] 'छुटे'[42]

मध्य —'लछमण'[43] 'लछधण'[44] 'चरछंद'[45]

अंत —'मोरपछ'[46] 'प्रतछ'[47]

---

१. छं० सं० १४६। २. छं० सं० ३४०। ३. छं० सं० १५२। ४. छं० सं० २२४। ५. छं० सं० ५४। ६ छं० सं० १७२। ७. छं० सं० १९३। ८ छं० सं० ४०४। ९. छं० सं० ४१९। १०. छं० सं० ४२१। ११. छं० सं० २४२। १२. छं० सं० ४२९। १३. छं० सं० २८। १४. छं० सं० २३०। १५. छं० सं० १८७। १६ छं० सं० ३७७। १७. छं० सं० २३०। १८. छं० सं० १६५। १९. छं० सं० १८१। २०. छं० सं० २४५। २१. छं० सं० ३६८। २२. छं० सं० ११। २३. छं० सं० १०१। २४. छं० सं० ३१५। २५. छं० सं० १३४। २६. छं० सं० २६१। २७. छं० सं० १४२। २८. छं० सं० १४३। २९ छं० सं० १४३। ३०. छं० सं० १०। ३१. छं० सं० ४६२। ३२. छं० सं० २३३। ३३ छं० सं० २८३। ३४. छं० सं० ४६२। ३५. छं० सं० २५७। ३६. छं० सं० १९४। ३७. छं० सं० ३२७। ३८. छं० सं० २९। ३९. छं० सं० २८५। ४०. छं० सं० ७३। ४१. छं० सं० ४११। ४२. छं० सं० ८५। ४३ छं० छं० १३१। ४४. छं० सं० ८८। ४५. छं० सं० ३४९। ४६. छं० सं० २८३। ४७ छं० सं० २९।

---

†अन्त से यहाँ स्वर में पहले व्यंजन का अभिप्राय है, क्योंकि इस पुस्तक में पूर्णंत: व्यंजनांत शब्दों का प्रायः अभाव ही है। उच्चारण करने में कुछ शब्द व्यंजनांत अवश्य हैं, पर लिखित रूप में उनकी संख्या बहुत ही कम है।

/ज/ आदि—'जमूरा'[१] 'जवमर्द'[२] 'जलद'[३]
मध्य—'जोजन'[४] 'जरजोध'[५] 'कीजिय'[६]
अंत—'समाज'[७] 'तेज'[८] 'भुज'[९]

/झ/† आदि—'झरोष'[१०] 'झड़'[११] 'झलकंत'[१२]
मध्य—'झुझार'[१३] 'समझाय'[१४] 'सझके'[१५]
अंत—'मझ'[१६]

/ट/ आदि—'टीवन'[१७] 'टरिहै'[१८] 'टेक'[१९]
मध्य—'टूटत'[२०] 'कटक'[२१] 'अटकि'[२२]
अंत—'टूट'[२३] 'थाणथट'[२४] 'जट'[२५]

/ठ/ आदि 'ठाम'[२६] 'ठानी'[२७] 'ठोर'[२८]
मध्य—'ठाठस'[२९] 'पठान'[३०] 'पठवाय'[३१]
अंत—'दूठ'[३२] 'ठाठ'[३३] 'ठठ'[३४]

/ड/ आदि—'डेरा'[३५] 'डहरा'[३६] 'डिग्रात'[३७]
मध्य—'डंडन'[३८] 'मुरडंत'[३९] 'मंडली'[४०]
अंत—'वड'[४१] 'रूंड'[४२] 'मुंड'[४३]

[ड़] आदि—×
मध्य—'जामड़ोली'[४४] 'लड़ाई'[४५] 'जोड़ेस'[४६]
अंत—'छीबड़'[४७] 'छोड़ि'[४८] 'पकड़'[४९]

---

१. छं०सं० १८९। २. छं० सं० २४३। ३. छं० सं० ३४३। ४. छं० सं० २१३। ५. छं० सं० ४६१। ६. छं० सं० १०५। ७. छं० सं० २३। ८. छं०सं० २५। ९. छं० सं० २६। १०. छं० सं० २१५। ११. छं० सं० १३१। १२. छं० सं० २८३। १३ छं० सं० १८१। १४. छं० स० ११२। १५ छं० सं० १८७। १६. .० ७०। १७. छं० सं० २३३। १८. छं० सं० १९८। १९. छं० सं० १०३। २०. छं० सं० २३९। २१. छं० सं० १३२। २२. छं० सं० २४१। २३. छं० सं० १३१। २४. छं० स० २१०। २५. छं० स० १०२। २६. छं० सं० ४। २७. छं० सं० ४९। २८ छं० सं० ३४०। २९. छं० सं० २४४। ३०. छं० सं० २१५। ३१ छं० सं० १९०। ३२ छं० सं० २१०। ३३. छं० सं० ४९। ३४. छं० सं० ३२१। ३५ छं० सं० ६४। ३६. छं० सं० ७८। ३७. छं० सं० ३११। ३८. छं० सं० ४७। ३९ छं० सं० ४१४। ४०. छं० सं० ४५७। ४१. छं० सं० १५५। ४२. छं० सं० १८९। ४३. छं० सं० १८९। ४४. छं० सं० ३७९। ४५ छं० सं० २६१। ४६. छं० सं० ३८५। ४७. छं० सं० ३७८। ४८. छं० स० ३५४। ४९ छं० सं० ४१९।

---

†पुराना झ टाइप न होने से सर्वत्र नया /झ/ ही प्रयुक्त किया गया है।

/ढ/ आदि—'ढुंढाहर'[१] 'ढाल'[२] 'ढरढर'[३]
मध्य—'ढुंढाहर'[४] 'चढिये'[५] 'वढेस'[६]
अंत—'चढ'[७] 'गढ'[८]

[ढ़] आदि—×
मध्य—'चढ़िया'[९] 'गुढ़ीगंज'[१०] 'गढ़पति'[११]
अंत—'गढ़'[१२] 'चढ़'[१३]

/ण/ आदि—×
मध्य—'हणवंत'[१४] 'गणपति'[१५] 'थाणपट'[१६]
अंत—'जीवण'[१७] 'कौण'[१८] 'निरवाण'[१९]

/त/ आदि—'तलाव'[२०] 'ताजी'[२१] 'तातै'[२२]
मध्य—'ततकाल'[२३] 'तातेस'[२४] 'पातलि'[२५]
अंत—'तकत'[२६] 'तषत'[२७] 'लीजत'[२८]

/थ/ आदि—'थान'[२९] 'थिर'[३०] 'थपे'[३१]
मध्य—'प्रथमहि'[३२] 'नाथूसिह'[३३] 'पोथल'[३४]
अंत—'दसरथ'[३५] 'हथ'[३६] 'साथ'[३७]

/द/ आदि—'दुलहनि'[३८] 'दसौं'[३९] 'देषत'[४०]
मध्य—'ईद्रेस'[४१] 'चांदसी'[४२] 'हमीरदेका'[४३]
अंत—'गरद'[४४] 'हद'[४५] 'कागद'[४६]

/ध/ आदि—'धरा'[४७] 'धरंत'[४८] धाभाई'[४९]
मध्य—'बलबधोत'[५०] 'माधव'[५१] 'मुरधरपति'[५२]

---

१. छं० सं० १३३। २. छं० सं० ६४। ३. छं० सं० १९। ४ छं० सं० २४२। ५. छं० सं० ६८। ६. छं० सं० २४४। ७ छं० सं० ४२७। ८. छं० सं० २१२। ९. छं० सं० १८१। १०. छं० सं० २१०। ११. छं० सं० ३७६। १२. छं० सं० २४३। १३. छं० सं० ८४। १४. छं० सं० २। १५. छं० सं० २। १६. छं० सं० २१०। १७. छं० सं० ४। १८. छं० सं० ७। १९. छं० सं० १८१। २०. छं० सं० २१५। २१ छं० सं० १५५। २२ छं० सं० १७४। २३. छं० सं० १४७। २४. छं०सं० २१५। २५. छं०सं० ९९। २६ छं सं० २२८। २७. छं सं० २१६। २८. छं० सं० २२०। २९ छं० सं० ५८। ३०. छं० सं० ११८। ३१. छं० सं० ५५। ३२. छं०सं० १। ३३. छं०सं० ५९। ३४. छं०सं० १४८। ३५. छं० सं० ७। ३६. छं० सं० ३७। ३७. छं० सं० ४७। ३८. छं सं० १५३। ३९. छं०सं० १५४। ४० छं० सं० १५९। ४१. छं० सं० ५१। ४२. छं० सं० १०३। ४३. छं० सं० १०३। ४४. छं० सं० ६४। ४५. छं० सं० ६४। ४६. छं० सं० ९५। ४७. छं० सं० ७४। ४८. छं० सं० १३१। ४९. छं० सं० ४३७। ५०. छं० सं० १०३। ५१. छं० सं० १०३। ५२. छं० सं० १०७।

अंत —'जुध'[१] 'सुध'[२] 'जरजोध'[३]

/न/ आदि—'नकीव'[४] 'निसान'[५] 'नगर'[६]

मध्य —'जानियो'[७] 'मनहारस'[८] -'अनमानत'[९]

अंत —'जान'[१०] 'कीन'[११] 'गगन'[१२]

/प/ आदि—'पीथल'[१३] 'परताप'[१४] 'पचरंग'[१५]

मध्य —'भूपति'[१६] 'रजपूत'[१७] 'नृपति'[१८]

अंत —'भूप'[१९] 'नृप'[२०] 'प्रताप'[२१]

/फ/ आदि—'फतमाल'[२२] 'फरकै'[२३] 'फूरमाई'[२४]

मध्य —'कुफर'[२५] 'सानफतेलो'[२६] 'तड़फड़त'[२७]

अंत —'माफ'[२८]

/ब/ आदि—'बीकानेरि'[२९] 'बैकुंठ'[३०] 'धणी'[३१]

मध्य —'सबल'[३२] 'षबर'[३३] 'मजबूत'[३४]

अंत —'नवाब'[३५] 'नजब'[३६] 'बंब'[३७]

/भ/ आदि—'भोमिया'[३८] 'भीर'[३९] 'भई'[४०]

मध्य —'अभंगिय'[४१] 'सुरभर'[४२] 'बलिभद्र'[४३]

अंत —'नायभ'[४४]

/म/ आदि—'मारिलै'[४५] 'मंत्री'[४६] 'मन'[४७]

मध्य —'अंमावति'[४८] 'समय'[४९] 'सामोत'[५०]

अंत —'राम'[५१] 'तुम'[५२] 'सम'[५३]

---

१. छं० सं० १२१। २. छं० सं० १०१। ३. छं० सं० ४५७। ४. छं० सं० ६४। ५. छं० सं० ६४। ६. छं० सं० ७०। ७. छं० सं० ८०। ८. छं० सं० ७६। ९. छं० सं० १०५। १०. छं० सं० ८१। ११. छं० सं० ८३। १२. छं० सं० ८२। १३. छं० सं० १५८। १४. छं० सं० १६३। १५. छं० सं० १७१। १६. छं० सं० १७५। १७. छं० सं० १७६। १८. छं० सं० १६९। १९. छं० सं० १६६। २०. छं० सं० १२१। २१ छं० सं० ९३। २२. छं० सं० २४। २३. छं० सं० १३०। २४. छं० सं० ४०५। २५. छं० सं० २६६। २६. छं० सं० ३४६। २७. छं० सं० ४६५। २८. छं० सं० १९८। २९ छं० सं० १४७। ३०. छं० सं० ४५८। ३१. छं० सं० २०९। ३२ छं० सं० २६। ३३. छं० सं० २३६। ३४ छं० सं० २५९। ३५. छं० सं० २६१। ३६. छं० सं० २५६। ३७. छं० सं० २५७। ३८. छं० सं० २०८। ३९. छं० सं० २८७। ४०. छं० सं० १८७। ४१ छं० सं० २३६। ४२. छं० सं० २४४। ४३. छं० सं० २८१। ४४. छं० सं० २४०। ४५. छं० सं० ३०६। ४६. छं० सं० ३०९। ४७. छं० सं० ३०५। ४८. छं० सं० २८९। ४९. छं० सं० २७६। ५०. छं० सं० २८१। ५१. छं० सं० ३०१। ५२ छं० सं० २९९। ५३. छं० सं० ३०३।

/य/ आदि—'यसो'[१] 'यत'[२] 'यसोराव'[३]
मध्य —'स्याम'[४] 'सुनैयत'[५] 'षुस्याली'[६]
अंत —'जोय'[७] 'झारिय'[८] 'जाय'[९]

/र/ आदि—'राव'[१०] 'रच्चियेस'[११] 'रसिये'[१२]
मध्य —'भ्रात'[१३] 'धारिये'[१४] 'विरठ'[१५]
अंत —'वार'[१६] 'धमधार'[१७] 'नर'[१८]

/ल/ आदि – 'लषन'[१९] 'लार'[२०] 'लघुता'[२१]
मध्य —'पलवाह'[२२] 'अलवर'[२३] 'सलाह'[२४]
अंत —'वल'[२५] 'काबिल'[२६] 'हरोल'[२७]

/व/ आदि—'वोट'[२८] 'विरुध'[२९] 'विक्रम'[३०]
मध्य —'रावराजा'[३१] 'नवाब'[३२] 'रणवार'[३३]
अंत —'दाव'[३४] 'दलव'[३५] 'राव'[३६]

/श/ आदि—'शकति'[३७] 'श्रवण'[३८] 'श्री'[३९]
मध्य - ×
अंत —'द्वादश'[४०]

/ष/ (आधुनिक हिंदी में मूर्द्धन्य /ष/ बोले जाने वाले)
आदि—'षट'[४१]
मध्य —'अष्टजाम'[४२]†

---

१. छं० सं० ३०६ । २. छं० सं० ३०५ । ३ छं० सं० ५१ । ४. छं० सं० ३०२ ।
५. छं० सं० ३१० । ६. छं० सं० ३०१ । ७. छं० सं० ३०३ । ८. छं० सं० ३१० ।
९. छं० सं० ३०६ । १०. छं० स० २९९ । ११. छं० सं० ३०५ । १२. छं० सं० ३०५ ।
१३. छं० सं० ३०३ । १४. छं० सं० ३०५ । १५. छं० सं० ३०७ । १६. छं० सं०
३०२ । १७. छं० सं० ३०८ । १८. छं० सं० ३०५ । १९. छं० सं० २३५ । २०. छं०
सं० २१८ । २१. छं० सं० ३९६ । २२. छं० सं० ३१५ । २३. छं० सं० ३२० ।
२४. छं० सं० ३२० । २५. छं० सं० ३१३ । २६. छं० सं० ३२१ । २७. छं० सं०
३२१ । २८. छं० सं० २०८ । २९. छं० सं० ३४० । ३०. छं० सं० ४५७ ।
३१. छं० सं० ३१२ । ३२. छं० सं० ३२१ । ३३. छं० सं० ३१५ । ३४. छं०
सं० ३१६ । ३५. छं० सं० ३०५ । ३६. छं० सं० २९९ । ३७ छं० सं० २ ।
३८. छं० सं० १०३ । ३९. छं सं० १ । ४०. छं० सं० १४ । ४१. छं० सं० ३५३
४२. छं० सं० ४६५ ।

---

† 'ष' की /ष/ ध्वनि वास्तव में मूर्द्धन्य ऊष्म है । इसे दूसरे रूप में बोला भी नहीं जा सकता ।

अंत —'रिष'[१], 'संतोष'[२], 'पुरष'[३] ।†

/स/ आदि—'सुनतै'[४], 'समाज'[५], 'स्याम'[६] ।

मध्य —'सिवसाहि'[७], 'षुस्यालीराम'[८], 'रसिये'[९] ।

अंत —'हसतीस'[१०], 'पास'[११], 'दिस'[१२] ।

/ह/ आदि—'होदास'[१३], 'हमीरदेक'[१४], 'हमकु'[१५] ।

मध्य —'सोहन'[१६], 'पहौचे'[१७], 'बहोरि'[१८] ।

अंत —'कहं'[१९], 'छोह'[२०], 'पतिसाह'[२१] ।

इनके अतिरिक्त /क्ष/ तथा /त्र/ के प्रयोग भी हैं। /ज्ञ/ का प्रयोग नहीं मिलता—

/क्ष/ आदि—

मध्य —'अक्षर'[२२]‡

अंत —

/त्र/ आदि—'त्रिमाट'[२३], 'त्रिय'[२४], 'त्रहाँ'[२५] ।

मध्य —'चत्रसाल'[२६], 'चत्रभुजोत'[२७], 'छत्रीस'[२८] ।

अंत —'चत्र'[२९], 'पुत्र'[३०], 'नषत्र'[३१] ।

/क्ष/, /त्र/ व्यंजन-गुच्छ के रूप में लिये जा सकते हैं, किन्तु प्रचलित वर्णमाला में इनका स्वतन्त्र अस्तित्व है. अतः इन्हें भी इस रूप में दिखा दिया गया है।

---

१. छं० सं० ९। २. छं० सं० ५४। ३. छं० सं० २२३। ४. छं० सं० २५४। ५. छं० सं० २५३। ६. छं० सं० २५२। ७. छं० सं० २५३। ८. छं० सं० २६८। ९. छं० सं० ३०५। १०. छं० सं० २८३। ११. छं० सं० २८१। १२. छं० सं० २८३। १३. छं० सं० २८३। १४. छं० सं० २८१। १५. छं० सं० २९८। १६. छं० सं० २९१। १७. छं० सं० २८५। १८. छं० सं० ३०४। १९. छं० सं० ४५७। २०. छं० सं० ४३९। २१. छं० सं० ४२९। २२. छं० सं० १। २३. छं० सं० ४९। २४. छं० सं० ८८। २५. छं० सं० ३०३। २६. छं० सं० ११८। २७. छं० सं० १०३। २८. छं० सं० १५१। २९. छं० सं० २१। ३०. छं० सं० २१। ३१. छं० सं० २३।

---

†यद्यपि इनके तत्सम रूप में /ष/ ध्वनि ऊष्म है, परन्तु उस काल के उच्चारणानुसार तथा कहीं-कहीं आज भी इसे आधुनिक /ख/ के रूप में मानना चाहिए।

‡प्राय यह ध्वनि /छ/ के रूप में पाई जाती है। यथा 'लछमन' (छं० सं० ८), 'छत्री' (छं० सं० ७८), 'छिति' (छं० सं० ८२), 'छिनक' (छं० सं० ३५), 'कुरुछेतर' (छं० सं० ८४)।

व्यंजन-गुच्छ

आधुनिक हिंदी के अनुसार प्रताप-रासो में आदि, मध्य तथा अन्त स्थिति में पर्याप्त व्यंजन-गुच्छ मिलते हैं। व्यंजन-गुच्छों की क्लिष्टता और लेखन-कठिनाई के कारण प्रताप-रासो के लेखक ने उन्हें सरल बनाने का भी प्रयास किया है। यहाँ परिनिष्ठित हिंदी को आधार मान कर इस पर विचार किया जा रहा है। इस पुस्तक में व्यंजन-गुच्छ हमें दो प्रकार से मिलते हैं—

१. उच्चारण के अनुरूप लिखे गए व्यंजन-गुच्छों के रूप में।

२. व्यंजन-गुच्छों के रूप में न लिखे जाकर उच्चारण के आधार पर।

पहले के उदाहरण—'प्रतापरासो'[१], 'गर्भवंति'[२], 'उद्योत'[३]।

दूसरे के उदाहरण—'सथै'[४], 'सज'[५], 'चलिब'[६]।

'सथ्थै', 'सज्ज', 'चल्लिब'।

दूसरे प्रकार के उदाहरणों में सम व्यंजन-गुच्छों की अधिकता मिलती है। तीनों स्थितियों में व्यंजन-गुच्छ देखिए—

आदि—'प्रतापरासो'[७], 'ह्वैयत'[८], 'स्योव्रह्मवोत'[९]।

मध्य —'भगवतस्यंह'[१०], 'चक्रसांल'[११], 'इंद्रेस'[१२]।

अंत —'महमत्त'[१३], 'वैस्य'[१४], 'मध्य'[१५]।

यह कहा जा सकता है कि व्यंजन-गुच्छ अधिक मात्रा में लक्षित नहीं होते और वर्णं-द्वित्व—सम व्यंजन-गुच्छ—उच्चारंण रूप में अधिक पाया जाता है। /य/ के साथ योग के वहुत उदाहरण मिलते हैं—

/क्/ + /य/ ↳ 'बक्यो'[१६]

/ग्/ + /य/ ↳ 'जग्य'[१७]

/च्/ + /य/ ↳ 'च्यारि'[१८]

/ज्/ + /य/ ↳ 'भाज्या'[१९]

/झ्/ + /य/ ↳ 'अ रझ्यौ'[२०]

/ठ्/ + /य/ ↳ 'बैठ्यौ'[२१]

---

१. छं० सं० २। २. छं० सं० ८। ३. छं० सं० ८८। ४. छं० सं० ९७।
५. छं० सं० ४४०। ६ छं० सं० ४३२। ७. छं० सं० २। छं० सं० ४।
९. छं० सं० २८०। १०. छं० सं० २७८। ११. छं० सं० २२९। १२. छं० सं० १३०।
१३ छं० सं० ५११ १४. छं० सं० ७८। १५. छं० सं० २१५।
१६ छं० सं० ३०६। १७ छं० सं० १६३। १८ छं० सं० ६८। १९. छं० सं० १३६।
२०. छं० सं० ३८०। २१. छं० सं० ३६४।

प्रताप-रासो व्यञ्जन-गुच्छ

	प	त	ट	क	ब	द	ड	ग	म	न	ण	फ	थ	ठ	ख	भ	ध	ढ	घ	व	स	श	च	ज	छ	झ	य	ह	ल	र	
प	२																										६७			१	
त		२०६																									४८			२३१	
ट			†८५																												
क				†१९९																		८५					३०६			१०५	८५ क्ष=क्श [क्ष]
ब					†३८२																						१५०			१३८	
द						२४५											†१२८			१४							८८			३७	१२८ आधुनिक वर्तनी के आधार पर, सम्भवतः
ड							†३८२																								
ग								†१												१९							४६१			२८४	
म	५५				२६१				१८७							१०३												६८		१४०	
न		४५७		‡४६६		४५९	‡१८७	‡२५१		†५२			१०३				२९		११९		५१		४४०	‡४१८			३	११०		१९	
ण																															
फ																															
थ													†७																		
ठ														†१८७													३६४				
ख															†२२																
भ																														१२	
ध																	†६										१७४			३२	
ढ																		†३१२									*१३१				*१३१ ढ्+य्+ओ ३१२ ढ्ढ
घ																															
व																				†१८१							२४४			४	
स		२४६													२२५						†३७						१०३				
श			४६५ (ष्ट)																											११४	४६५ 'ष्ट'
च																							३०६		†१२४		६८				१२४ आधुनिक वर्तनी के आधार पर, सम्भवतः
ज																				९७				२८७			१३८				
छ																									†८५						
झ																										†२५३	३८०				
य																															
ह									७८											१६३							३८६				
ल																											२६१	५३	†८२		
र						२४३										८								४०७			३२०			†१३१	

† अंकित ध्वनियाँ शुद्ध/न/नहीं हैं; [ड़] [ञ] के रूप जैसी प्रतीत होती हैं।

‡उच्चारण के अनुसार

नोट : खानों में लिखे अंक 'प्रताप-रासो' की छंद-संख्या के द्योतक हैं।

T

/ड्/ + /य/ ⌣ 'जुड्येस'[१]
/ढ्/ + /य/ ⌣ 'चढ्यौ'[२]
/त्/ + /य/ ⌣ 'त्यागि'[३]
/द्/ + /य/ ⌣ 'द्यौसा'[४]
/ध्/ + /य ⌣ 'अजुध्या'[५]
/न्/ + /य/ ⌣ हन्यौ'[६]
/ब्/ + /य/ ⌣ 'ब्याहन'[७]
/र्/ + /य/ ⌣ 'हार्यौ'[८]
/ल्/ + /य/ ⌣ 'ल्यों'[९]
/व्/ + /य/ ⌣ 'व्योन'[१०]
/स्/ + /य/ ⌣ 'स्याम'[११]
/ह्/ + /य/ ⌣ 'ह्याई'[१२] आदि ।

/ल्ह/, /म्ह/, /न्ह/, /ह्व/ ध्वनियाँ भी पाई जाती हैं। इन्हें स्वतन्त्र ध्वनियाँ कहें या व्यंजन-गुच्छ—यह प्रश्न हिंदी भाषा-शास्त्रियों के सामने है। /म्ह/, /न्ह/ आदि के सम्बन्ध में स्वतन्त्र ध्वनि-संकेत होने के विचार सुने गए हैं। /ल्ह/ ध्वनि बोलियों में चलती है। प्रताप-रासो में इनके अतिरिक्त /ह्व/ ध्वनि भी मिलती है। इनके उदाहरण नीचे लिखे अनुसार हैं—

/म्ह/ ⌣ 'तुम्हारिय'[१३], 'तुम्हारौ'[१४], 'तुम्हरे'[१५]
/न्ह/ ⌣ 'कन्ह'[१६]
/ह्व/ ⌣ 'ह्वैयत'[१७]

लिखित रूप में वर्णों की संयुक्त प्रवृत्ति अपेक्षाकृत कम दिखाई देती है। उच्चरित रूप में कुछ 'एकत्व' भी 'द्वित्व' प्राप्त कर लेते हैं। उदाहरण अन्यत्र दिए गए हैं।

कुछ संयुक्त वर्णों के दो रूप भी मिलते हैं—

---

१. छं० सं० ३५। २. छं० सं० १३१। ३ छं० सं० १३१। ४. छं० सं० १६। ५. छं० सं० ८। ६. छं० सं० ५। ७. छं० सं० १५०। ८. छं० सं० ३२०। ९. छं० सं० २। १० छं० सं० २४४। ११. छं० सं० २५७। १२. छं० सं० ९७। १३. छं० सं० ६८। १४. छं० सं० १११। १५. छं० सं० ११२। १६. छं० सं० २५५। १७. छं० सं० ४।

व्यंजन+स्वर (व्यंजन ध्वनि के रूप में ही लिया गया)

/न्/+/ऋ/~'नृप'[१], 'नृपति'[२], 'वृजि' (२२८)

'न्रप'[३], 'न्रपति'[४], 'व्रज'[५]

व्यंजन+व्यंजन/श्/+/र्/~'श्रवण'[६], 'स्रवण'[७]

एक अन्य प्रवृत्ति संस्कृत तत्सम शब्दों के तद्भव रूप में देखी जाती है। इस प्रकार के अनेक शब्द ध्वनि-परिवर्तन सहित दृष्टिगोचर होते हैं।

कवि ने विदेशी भाषाओं के शब्दों को भी लिया है, परन्तु उनको देशी ढांचे में ढाला है। ध्वनि की दृष्टि से हमें कोई विदेशी ध्वनियाँ नहीं मिलतीं। सभी ध्वनियाँ स्वीकृत हिन्दी ध्वनियों के अन्तर्गत हैं। उदाहरण—

'हुकम'[८], 'कुफर'[९], 'अवाज'[१०], 'किला'[११]।

'जालिम'[१२], 'कागद'[१३], 'जंघ'[१४], 'षबर'[१५]।

'फौजे'[१६], 'फिरंगिय'[१७], 'तुरक'[१८]।

'षंदार'[१९], 'मुगल'[२०], 'नजब'[२१], 'नजबषांन'[२२]।

'नकीब'[२३], 'षुसी'[२४], 'लायक'[२५], 'अला'[२६], 'अरज'[२७]।

संस्कृत तत्सम शब्दों की ध्वनियों में भी अनेक परिवर्तन हैं। कुछ शब्द देखें—

'छत्री'[२८] < 'क्षत्रिय'

'जोग'[२९] < 'योग्य'

'जोग्य'[३०] < 'योग्य'

'स्यो'[३१] < 'शिव'

'माझि'[३२] < 'मध्य'

---

१. छं० सं० २२। २. छं० सं० ३९। ३. छं० सं० १९। ४. छं० सं० २२८। ५. छं० सं० ४०५। ६. छं० सं० १०३। ७. छं० सं० ३५७। ८. छं० सं० ४ (हुक्म)। ९ छं० सं० २६६ (कुफ्र)। १०. छं० सं० ७२ (आवाज़)। ११. छं० सं० २५६ (क़िला)। १२. छं० सं० ५३ (ज़ालिम)। १३. छं० सं० ९५ (कागज़)। १४ छं० सं० ११९ (जंग)। १५. छं० सं० १२८ (ख़बर)। १६. छं० स० १३१ (फ़ौजें)। १७ छं० सं० २३९ (फ़िरंगी)। १८. छं० सं० २२८ (तुर्क)। १९. छं० सं० २३६ (क़ंदहार)। २०. छं० सं० २३६ (मुग़ल)। २१. छं० सं० ०५६ (नजफ़)। २२ छं० सं० २६२ (नजफ़ख़ां)। २३. छं० सं० १८६ (नक़ीब)। २४ छं० सं० २२५ (ख़ुशी)। २५. छं० सं० २५५ (लायक़)। २६ छं० सं० २६१ (अल्लाह)। २७ छं० सं० ३१० (अर्ज़)। २८. छं० सं० ३०८। २९. छं० सं ४७। ३०. छं० सं० १३०। ३१ छं० सं० २८०। ३२. छं० सं० २६०।

'जादम'[१] < 'यादव'

'परताप'[२] < 'प्रताप'

'जुद्द'[३] < 'युद्ध'

'पछिम'[४] < 'पश्चिम'

'दीठि'[५] < 'दृष्टि'

'रछिक'[६] < 'रक्षक'

व्यंजन-गुच्छ

वर्णों का क्रम भाषा-वैज्ञानिकों द्वारा स्वीकृत क्रम के अनुसार है। शब्दों के आगे छंद-संख्या दी गई है—

/प/ 'प्रथमहि'—१, 'छप्प'—४, 'कोप्यो'—६७

/त/ 'उत्तर'—२०६, 'कत्री'—२३१, 'त्याग'—४८

/क/ 'कुरुक्षेत्र'—८५, 'क्रोध'—१०५, 'वक्यौ'—३०६

/ब/ 'ब्रजि'—१३८, 'ब्याहन'—१५०

/द/ 'इंद्र'—३७, 'उद्योत'—८८, 'जुद्द'—२४५, 'द्वादश'—१४, 'द्यौसा'—१९

/ग/ 'ग्वालेर' १९, 'ग्राम'—२८४, 'डिग्यो'—४६१, 'नग्र'—१६३

/म/ 'कुंभावत'—१०३, 'कंमैत' १८७, 'तुम्हारिय'—६८, 'कंपे'—५५

/न/ 'ग्रहमंदान'—३९८, 'ग्रटंच'—४४०, 'कीन्ह'—११०, 'किलंगी'—१८७. 'जगत्रंध'—२९, 'न्याय'—३, 'न्रप'—१९, 'न्हान' ११०, 'भंडार'—१८७, 'भंजैस'—४१८, 'मंगलेस'—१३०, 'राजवंस'—५१, 'भिन'—५२, 'समंय'—१०३, 'जंघ'—११९, 'सहुंनी'—४०८

/ठ/ 'बैठ्यो'—३६४

/भ/ 'भ्राता'—१२

/ध/ 'ध्रम'—३२, 'मध्यम'—१७६

/ढ/ [ढ़] 'चढ़चो'—१३१

/व/ 'व्योन'—२४४, 'व्रत'—४

/स/ 'षुस्याल'—१०३, 'पुस्षा'—२२५, 'ग्रस्त'—२४६

---

१. छं० सं० २५९। २. छं० सं० २५७। ३. छं० सं० २४५। ४. छं० सं० २३५। ५. छं० सं० २२२। ६. छं० सं० १८३।

/श/ 'श्रीमुख'—११४

/च/ 'च्यारि'—६८, 'मुच्चो'—३०६

/ज/ 'उपज्यौ'—१३८, 'गज्जत'—२८७, 'ज्वाब'—९७

/झ/ 'अलझ्यौ'—३८०

/ह/ 'कह्यौ'—३८६, 'ब्रह्म'—७८, 'ह्व' - १६३

/ल/ 'दुल्है'—५३, 'मारल्यौ'—२६१

/र/ 'अर्जं'—४०७, 'हारयौ'—३२०, 'गर्भवंति'—८, जवमर्द—२४३

उच्चारण के आधार पर—

'नि/क्/कासै'—१६, 'अ/ष्/षिय'—२२, 'तेग/स्/स'—३७,
'दि/ल्/ली'—८२, 'जु/ट्/टे'—८५, 'वर/छ्/छी'—८५,
'अ/र्/रै'—१४५, 'स/ब्/बै'—१८१, 'ठ/ठ्/ठै'—१८७,
'म/झ्/झ'—२५३, 'च/ढ़्/ढ़ै'—३१२, 'उ/ड्/डें'—३८२,
'च/ढ्/ढि'—४२५, 'प/च्/छिम'—२१४, 'बु/द्/धितम'—२,
'अर/ब्/बी'—३८२।

व्यंजन-गुच्छों पर कुछ निष्कर्ष—

(१) सम-व्यंजन द्वित्वों में प्रायः सभी योग मिलते हैं, किन्तु आधिक्य उन द्वित्वों का ही है, जो उच्चारण के आधार पर स्वीकृत किए गए हैं।

(२) आधुनिक/ष/का योग दो स्थानों में स्पष्ट है। (यद्यपि/ष/का उच्चारण/श/में होने लगा है।)
'अक्षर'[1] [क्ष], [क्श]
'अष्ट'[2] [ष्ट], [श्ट]

(३) /न/के योग के अनेक उदाहरण हैं। जहाँ भी अनुस्वार का योग होता है, वहाँ/न/तथा/म/की संभावना होती है।
/म/का अन्य व्यंजनों में योग अपेक्षाकृत स्पष्ट है—
'कंपे'[3], 'कंमैत'[4]
'तंबू'[5], 'पातलंराव'[6]
/न/का योग इतना स्पष्ट नहीं है। कहीं कहीं जाचीक जीवण द्वारा अस्वीकृत वर्णों (/ङ/तथा/ञ/) का आभास होने लगता

---

१. छं० सं० १। २. छं० सं० ४६५। ३. छं० सं० ५५। ४. छं० सं० १८७।
५. छं० सं० २६१। ६ छं० सं० १४०।

है। ये सभी/न/के अंतर्गत लिए गए हैं। 'त' वर्ग के योग में कोई कठिनाई नहीं आती। अन्य वर्गों में ऐसा नहीं है।

(४) गुच्छों में दूसरे वर्ण के स्थान पर/य/काफी आया है। यह व्रज भाषा का प्रभाव है। इस संबंध में अन्य वर्णों के साथ/य/का योग अन्यत्र दिखाया गया है।

(५) /ढ/, /ढ़/को व्यंजन-गुच्छों में अलग न दिखाकर एक ही स्थान पर लिया गया है, क्योंकि ये दोनों ध्वनियाँ एक दूसरे की स्थानापन्न-सी प्रतीत होती हैं—
'चढ़चो'[१], 'चढ्यो'[२]।

(६) जिन अंकों को '†' से अंकित किया गया है, वे गुच्छ उच्चारण के अनुसार माने गए हैं। लिपिकार ने उन्हें एक ही वर्ण के रूप में लिखा है।

(७) '‡' अंकित अंक उन गुच्छों को बताते हैं, जिनकी संबंधित ध्वनियाँ शुद्ध/न/को स्पष्टतः नहीं बतातीं।

(८) ध्वनियों का क्रम भाषा-वैज्ञानिकों द्वारा स्वीकृत-क्रम के अनुसार है, वर्णमाला के अनुसार नहीं।

तीन व्यंजनों के गुच्छ—

'रामचन्द्र'[३]—'न्द्र' /न्/+/द्/+/र्/+/अ/
'सस्त्र'[४]—'स्त्र' /स्/+/त्/+/र्/+/अ/
'मंत्री'[५]—'न्त्री' /न्/+/त्/+/र्/+/अ/

रूप-तत्त्व

किसी भाषा-विशेष का अध्ययन और विश्लेषण करने में उस भाषा का रूप-तत्त्व बहुत महत्त्वपूर्ण होता है सबंध-तत्त्व के आधार पर ही भाषा की प्रकृति का निर्णय अधिक उपयुक्त माना गया है। इसीलिए प्रायः माना जाता है कि आकृतिमूलक वर्गीकरण भाषा के समझने में अधिक सहायता प्रदान करता है। आज की प्रवृत्ति भी यही है कि भाषा के रूप-तत्त्व का अध्ययन करने में अधिक ध्यान दिया जाय। मौखिक भाषा का अध्ययन, भाषा के छात्रों का प्रिय विषय

---

१. छं० सं० १३१। २. सं० सं० १३१। ३. छं० सं० ५। ४. छं० सं० ६३। ५. छं० सं० २७५।

होता जा रहा है और किसी भी क्षेत्र-विशेष की भाषा अथवा बोली का ध्वनि तथा रूप के आधार पर वर्णन करने की ओर विभिन्न प्रयास हो रहे हैं। भाषा-अध्ययन को इस प्रवृत्ति को अधिक प्रचलित कराने में अमेरिकन भाषा-विदों का योग माना जाता है, यद्यपि वहाँ के विद्वानों ने भी इस बात को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है कि भाषा-अध्ययन की यह विवरणात्मक पद्धति भी भारतवर्ष की देन है। अमेरिका द्वारा निर्मित एक योजना के अनुसार भारत तथा अमेरिका के भाषा-शास्त्रियों को पारस्परिक मिलन और अध्ययन का अवसर मिला है। भारत के अनेक भाषा-छात्र अमेरिका गए और अमेरिका के भाषा-शास्त्री यहाँ आए। साथ ही भाषा के क्षेत्र में नवागंतुकों के हेतु भाषा-विज्ञान के स्कूल भी आयोजित किए गए। इन सब का परिणाम यह हुआ कि भाषा-विज्ञान के अध्ययन में अमेरिकन पद्धति का अधिक प्रचार हो गया और भारत के कुछ विश्वविद्यालयों में भाषा-शोध के छात्रों ने अपने अध्ययन के लिए इस प्रकार के विषय चुने। भाषा-अध्ययन की यह पद्धति लिखित भाषा का रूप स्पष्ट करने में अधिक सहायक होती है। भाषा का मौखिक रूप जहाँ निरंतर बदलता रहता है, उसका लिखित रूप स्थिर रहता है, अतः उसका अध्ययन भी अधिक निश्चित होना चाहिए। प्रयत्न तो इस ओर भी चल रहा है, और हिंदी के तुलसी, सूर आदि प्रमुख कवियों के भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत हो रहे हैं। कुछ समय पूर्व मैंने १६ वीं सदी की गुजराती का एक भाषा-अध्ययन देखा था, जिस पर श्री दवे को डॉक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त हुई थी, इसी प्रकार एक विदेशी विद्वान हैलीडे का 'सीकरेट हिस्ट्री ऑव दि मंगोल्स' पर किया गया कार्य भी देखा। भारतवर्ष में भाषा-संबंधी किए गए कार्य व्याकरणमूलक अधिक हैं, भाषामूलक कम, और इसी प्रकार का अध्ययन कुछ समीपवर्ती-सा प्रतीत होता है। मैं भी अपने अध्ययन में इसी प्रणाली का अनुकरण करूँगा, यद्यपि स्थान-स्थान पर यह चेष्टा की जायगी कि भाषा-प्रवृत्ति का भी ध्यान रखा जाय।

प्रतापरासो में प्रयुक्त शब्दों की आकृतियों को देखने से पता लगता है कि भाषा का रूप निश्चित नहीं है। उस समय की कृतियों को प्रायः इसी रूप में देखा गया है। लिखित साहित्य का अधिक प्रचार न होने से परिनिष्ठित रूप क्या हो सकता है, इस ओर ध्यान देना संभव भी नहीं था। यह समझा जाता रहा होगा कि भाव-प्रकाशन सुविधा के साथ हो और यदि शब्दाकृतियों में कुछ फेर-फार भी दिखाई दे, तो उसकी विशेष चिन्ता नहीं थी। एक स्थान की

कृति को दूसरे स्थान पर लिखा जाना भी इस रूप-बाहुल्य का एक कारण है और समय की दूरी भी इस में अपना योग प्रदान करती है। यही कारण है कि हमें प्रताप-रासो में संबंधतत्त्व के अनेक रूप देखने को मिलते हैं, जिनका विवरण यथास्थान दिया जायगा। रूप-वैविध्य की यह स्थिति बहुत समय तक रही और आज भी अनेक स्थितियों में इसके रूप अवशिष्ट हैं। यह एक विचारणीय विषय है कि विज्ञान और हिन्दी-भाषा-विस्तार के इस युग में स्थिरीकरण का प्रश्न बहुत कुछ अनिश्चित अवस्था में पड़ा हुआ है। ध्वनि और रूप, भाषा के इन दोनों तत्त्वों में स्थिरीकरण और नियमन की आवश्यकता प्रतीत होती है। अतः इस में कुछ भी आश्चर्य तथा दोष नहीं समझना चाहिए कि प्रतापरासो में हमें यह स्थिति कुछ बढ़े हुए रूप में दिखाई देती है। मुझे इस ग्रंथ की केवल दो ही प्रतियाँ प्राप्त हो सकीं और ऐसा भी प्रतीत हुआ कि ये दोनों भी किसी एक मूल प्रति के आधार पर लिखी गई हैं। इसका एक परिणाम तो यह हुआ कि रूपों की विभिन्नता अपेक्षाकृत कम हो गई, और दूसरे पाठ-निर्धारण में भी अनिर्णीत स्थितियाँ अधिक नहीं आईं।

हिंदी-भाषा के व्याकरण में स्वीकृत शब्दावलि, परिभाषाएँ, पद के प्रकार आदि ही यहाँ ग्रहण किए गए हैं और उन्हीं के आधार पर प्रतापरासो का विवरणात्मक व्याकरण देने की चेष्टा की गई है। उसमें भी वे अंश लिए गए हैं, जिनका शब्दों के रूपों पर प्रभाव पड़ता है तथा जिनके द्वारा प्रतापरासो की भाषा का स्पष्टीकरण होता है। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय (समुच्चयबोधक, संबंधवाचक, क्रियाविशेषण और विस्मयादिबोधक) के विभिन्न रूपों पर विचार किया गया है। शुद्ध व्याकरण और विवरणात्मक व्याकरण के अंतर का बराबर ध्यान रखा गया है और जहाँ आवश्यकता हुई है, हिंदी के व्याकरण से तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किए गए है। रूप-वैविध्य और रचना-संक्षिप्तता के कारण नियम देना तो संभव नहीं हो सका, पर स्थान-स्थान पर प्रवृत्तियों का उल्लेख अवश्य किया गया है।

संज्ञा के रूप

(लिंग, वचन और कारक)

लिंग—उस समय से बहुत पहले ही नपुंसकलिंग का प्रयोग समाप्त हो चुका था—पुंल्लिग और स्त्रीलिंग दो ही लिंग थे। प्रतापरासो में ये दो ही

लिंग मिलते हैं। अप्राणिवाचक शब्दों के लिंग निर्धारण में, प्रायः, वही पद्धति दिखाई देती है, जो आधुनिक हिंदी में प्रचलित है। व्यंजनांत संज्ञा-शब्द नहीं के बराबर हैं। प्रायः सभी शब्द स्वरांत हैं—

अकारान्त संज्ञा शब्द—

चरण[१], गणपतिदेव[२], पातिलराव[३], व्रत[४], दौलतराम[५], नरेस[६], कछवाह[७], पंवार[८], रावराज[९], राजकवर[१०]।

आकारान्त संज्ञा शब्द—

आग्या[११]. सला[१२], होदा[१३], राजा[१४], काका[१५], हाड़ा[१६], हलद्या[१७], लाड़ा[१८], हमीरदेव[१९], जमूरा[२०]।

इकारान्त संज्ञा शब्द—

आमेरि[२१], नृपति[२२], कांनि[२३], रिषि[२४], रारि[२५]।

ईकारान्त संज्ञा शब्द—

विनती[२६], षीची[२७], षाई[२८], जाबती[२९], मलैली[३०], धणी[३१] षोहरी[३२], मंत्री[३३], तुरकी[३४], छत्री[३५], गुसाई[३६], लड़ाई[३७]।

उकारान्त संज्ञा शब्द—

गुरु[३८], सत्रु[३९], बंधु[४०], तिलगु[४१]।

ऊकारान्त संज्ञा शब्द—

नरू[४२], बंधू[४३], तंबू[४४], घू[४५], छाजू[४६]।

---

१. छं० सं० २। २. छं० सं० २। ३. छं० सं० ३। ४. छं० सं० ४। ५. छं० सं० २०६। ६. छं० सं० ३५६। ७. छं० सं० ३६४। ८. छं० सं० ३६३। ९. छं० सं० ३६५। १०. छं० सं० ३९१। ११. छं० सं० २। १२. छं० सं० २६२। १३ छं० सं० ३०८। १४. छं० सं० ३०८। १५ छं० सं० २७४। १६. छं० स० ३६२। १७. छं० सं० ३९३। १८. छं० सं० १५६। १९. छं० सं० १०३। २०. छं० सं० १८९। २१. छं० सं० ९४। २२. छं० सं० ९६। २३. छं० सं० १६६। २४. छं० स० १५। २५. छं० स० १२१। २६. छं० सं० २। २७. छं० सं० १२६। २८. छं० सं० ३५३। २९. छं० सं० ६४। ३०. छं० सं० १९। ३१. छं० सं० ३३। ३२. छं० सं० ११०। ३३. छं० सं० १२०। ३४. छं० सं० १८७। ३५. छं० सं० १९८। ३६. छं० सं० २६२। ३७. छं० सं० २६१। ३८. छं० सं० २। ३९. छं० सं० ३। ४०. छं० सं० १०१। ४१. छं० सं० २३६। ४२. छं० सं० ३१। ४३ छं० सं० ५०। ४४. छं० सं० २६१। ४५. छं० सं० ४६१। ४६. छं० सं० ५५।

एकारान्त संज्ञा शब्द—

डेरे[1], नगारे[2], फते[3], वीकरो[4], वरसाने[5], पारचे[6], फौजे[7], हलकारे[8]।

ऐकारान्त संज्ञा शब्द—

सिवदानस्यंघै[9], षोहरै[10], समाजै[11], उसासै[12], बदूकै[13], वातै[14], तुपकै[15]।

ओकारान्त संज्ञा शब्द—

कीलो[16], थानो[17], दोलो[18], दंगो[19], वालो[20], सीधो[21]।

औकारान्त संज्ञा शब्द—

सींध्यौ[22]।

औकारान्त की अपेक्षा ओकारान्त की ओर अधिक प्रवृत्ति है।

	पुल्लिग	स्त्रीलिंग
अकारान्त	पातिलराव[23]	सेन[24]
आकारान्त	होदा[25]	आग्या[26]
इकारान्त	रिषि[27]	कांनि[28]
ईकारान्त	षीची[29]	विनती[30]
उकारान्त	गुरु[31]	—
ऊकारान्त	बंधू[32]	—
एकारान्त	नगारे[33]	फौजे[34]
ऐकारान्त	सिवदानस्यंघै[35]	बंदूकै[36]

---

१. छं० सं० २९१। २. छं० सं० १३०। ३. छं० सं० ४४०, ८०। ४. छं० सं० ४६१ ५. छं० सं० २३३। ६. छं० सं० ४३१। ७. छं० सं० ३७४। ८. छं० सं० ३६०। ९. छं० स० ५५। १०. छं० स० ५६। ११. छं० सं० १३०। १२. छं० सं० १३३। १३. छं० सं० १८७। १४. छं० सं० ३४३। १५. छं० सं० ८५। १६. छं० सं० २१०। १७. छं० सं० १८३। १८. छं० सं० १७८। १९. छं० सं० २१०। २०. छं० सं० २२। २१. छं० सं० ४११। २२. छं० सं० ४२१। २३. छं० सं० ३। २४. छं० सं० २२०। २५. छं० सं० २०८। २६. छं० सं० २। २७. छं० सं० १५। २८. छं० सं० १६६। २९. छं० सं० १२६। ३०. छं० सं० २। ३१. छं० सं० २। ३२. छं० सं० ५०। ३३. छं० सं० १३०। ३४. छं० सं० ३७४। ३५. छं० सं० ५५। ३६. छं० सं० १८७।

ओकारान्त दोलो[1]
औकारान्त सींध्यौ[2]

१. संज्ञा शब्दों का अध्ययन करने पर पता चलता है कि अकारान्त शब्दों की वहुलता है।

२. कुछ शब्दों के लिंग आधुनिक हिन्दी-लिंग-व्यवस्था के विपरीत हैं—

कंचन की 'मोर'[3] ~ कचन का 'मोर' [मोहर] [मोर]
गिरे 'लोथ'[4] ~ गिरीं 'लोथ'
दीनी 'षत' पठवाय[5] ~ दीने 'षत' पठवाय
कीनी 'रण' भारी[6] ~ कीनौ 'रण' भारी
'षाई' ऊँचे[7] ~ 'षाई' ऊँची
वहे 'तेग'[8] ~ वहीं 'तेग'

३. पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग दोनों प्रकार के शब्दों में सुविधानुसार ह्रस्व और दीर्घ का प्रयोग—

/अ/ ~ /आ/ :: 'सीत'[9] ~ 'सीता'[10]
/इ/ ~ /ई/ :: 'नरपति'[11] ~ 'नरपती'[12]
/उ/ ~ /ऊ/ :: 'बंधु'[13] ~ 'बंधू'[14]

पुल्लिग से स्त्रीलिंग बनाने की कुछ प्रवृत्तियाँ—

१. अकारान्त से ईकारान्त—'पुत्र'[15] ~ 'पुत्री'[16]
२. अकारान्त से इकारान्त—'कंवर'[17] ~ 'कवारि'[18]
३. आकारान्त से ईकारान्त—'गोला'[19] 'गोली'[20]
४. 'इन' प्रत्यय लगाकर—'दूलह'[21] ~ 'दुलहिन'[22]
५. 'नी' प्रत्यय लगाकर—'रिष'[23] ~ 'रिषनी'[24] (एक विशेष आकृति) 'गिर' ~ 'गिरनो'[25]

---

१. छं०सं० १७८। २. छं०सं० ४२१। ३ छं० सं० १५३। ४. छं० सं० १८९। ५. छं० सं० १९०। ६. छं० सं० १९१। ७. छं० सं० २१३। ८. छं० सं० ४०८। ९ छं० सं० १०। १०. छं० सं० ९। ११. छं० सं० १४५। १२. छं० सं० २०८। १३. छं० सं० ४७। १४. छं० सं० ४८। १५ छं० सं० २१। १६. छं० सं० १०। १७. छं० सं० ३८७। १८. छं० सं० १४८। १९. छं० सं० ८५। २०. छं० सं० १२३। २१. छं० सं० १५७। २२. छं० सं० १५४। २३. छं० सं० ९। २४. छं० सं० ११। २५. छं० सं० १४२।

(यद्यपि ऊपर लिखे प्रयोग कुछ विचित्र से हैं, परन्तु आधुनिक हिंदी में भी 'नी' प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिंग शब्द बनाये जाते हैं 'बाघ+नी', 'शेर+नी' 'भील+नी'।)

प्रायः आधुनिक हिंदी के व्याकरणानुसार ही लिंग-भेद किया गया है। कुछ उदाहरण—

पुल्लिंग —'वंधु'[1], 'हुकम'[2], 'कुल'[3], 'वचन'[4], 'दल'[5], 'कोट'[6], 'देस'[7], 'जुध'[8], 'मोरछा'[9], 'कामें'[10], 'क्रोध'[11], 'अमाट'[12], 'दरबार'[13]।

स्त्रीलिंग—'नोवति'[14], 'विद्या'[15], 'अवधि'[16], 'फोज'[17], 'राड'[18], 'भुजा'[19], 'वात'[20], 'सीष'[21], 'सेन'[22], 'निसा'[23], 'महैमा'[24], 'अवाज'[25]।

लिंग की अनिश्चितता भी कई स्थानों में देखी गई—

(i) १. **बजी** 'अमाट' चढ़े जुध कजै[26] – स्त्रीलिंग

२. **बजे** नाद 'अमाट' ठाठ रजपूत वाज सज[27]—पुल्लिंग

(ii) १. भूप **पूजी** 'भुजा'[28]—स्त्रीलिंग

२. **लोने** उपारि सो 'भुजा' वीस[29]—पुल्लिंग

वचन

वचनों की व्यवस्था आधुनिक हिंदी व्याकरण के अनुसार ही है। क्रिया और विशेषण पर भी वचन का उसी प्रकार प्रभाव पड़ता है जैसा आधुनिक हिंदी में। आकृति की दृष्टि से रूप परिवर्तन कहीं होता है कहीं नहीं।

(i) तेजल के तिहु सुत भये[30] ('सुत' एक वचन में ही है क्रिया वहु-वचन की है)।

(ii) फाड़ि फौजे घनी[31] ('फौजे' बहुवचन में)।

---

१. छं० सं० २। २. छं० सं० ४। ३. छं० सं० १८। ४. छं० सं० १६। ५. छं० सं० १७। ६. छं सं० २७। ७. छं० सं० ३१०। ८. छं० सं० ३७। ९. छं०सं० ३७। १०. छं० सं० ३७। ११. छं० सं० ४६। १२. छं० सं० ४९। १३. छं० सं० ५०। १४. छं० सं० ३। १५. छं० सं० १३। १६. छं० सं० १४। १७. छं० सं० ३४६। १८. छं० सं० ३७। १९. छं० सं० ४५। २०. छं० सं० ४७। २१. छं० सं० ७०। २२. छं० सं० ८२। २३ छं० सं० १८६। २४. छं० सं० २९७। २५. छं० सं० ३५७। २६. छं० सं० १८७। २७. छं० सं० ४९। २८. छं० सं० ८०। २९. छं० सं० ६। ३०. छं० सं० ३०। ३१. छं० सं० ३१२।

(iii) भूप मुकाम बहोत दिन कीने[1] ('बहोत' विशेषरा—'दिन' एकवचन)

(iv) तिहुँ बंधुन को न्रपति नर, पहराये सिरपाव[2] ('तिहुँ' तथा 'बंधुन' दोनों बहुवचन में)।

बहुवचन बनाने में नीचे लिखी कुछ प्रवृत्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

१. /न/के योग से बने हुए बहुवचन शब्द—

'रिषनी'+'न' > 'रिषनीन'[3], 'सत्रु'+'न' > 'सत्रुन'[4]।
'लष'+'न' > 'लषन'[5], 'दल'+'न' > 'दलन'[6]।
'वंधु'+'न' > 'बंधुन'[7], 'कान'+'न' > 'कानन'[8]।
'बल'+'न' > 'बलन'[9]।
'डेरा'+'न' > 'डेरन'[10] (आकारान्त का अकारान्त में परिवर्तन)।
'मीर'+'न' > 'मीरन'[11], 'मुगलां'+'न' > 'मुगलांन'[12]।
'गज'+'न' > 'गजन'[13]।
'सथान'+'न' > 'सथानन'[14]।
'मुकता'+'न' > 'मुकतान'[15], 'तोव'+'न' > 'तोवन'[16]।
'परवान'+'न' > 'परवानन'[17]।
'भोमिया'+'न' > 'भोमियन'[18] (आकारान्त का अकारान्त)।
'तुरका'+'न' > 'तुरकान'[19]।
'टीवा'+'न' > 'टीवन'[20] (आकारान्त का अकारान्त)।
'ब्रजदेस'+'न' > 'ब्रजदेसन'[21], 'गोसाईं'+'न' > 'गोसाईंन'[22]।
'घाय'+'न' > 'घायन'[23], 'सब'+'न' > 'सबन'[24]।
'नर'+'न' > 'नरन'[25]।

अंतिम दीर्घ स्वर को ह्रस्व करने की ओर प्रवृत्ति दिखाई देती है। अकारान्त शब्दों को/न/के योग से बहुवचन बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया है। ब्रजदेश में/न/ के योग से बहुवचन बनाने की प्रवृत्ति आजकल भी उसी प्रकार है। यथा—

१. छं० सं० ३९२। २. छं० सं० ४०५। ३. छं० सं० ११। ४. छं० सं० ३३। ५. छं० सं० १०२। ६. छं० सं० १२३। ७. छं० सं० ४०५। ८. छं० सं० १६६। ९ छं० सं० २३५। १०. छं० सं० १६१। ११. छं० सं० २६७। १२. छं० सं० ३४०। १३. छं० सं० ४०२। १४. छं० सं० २१६। १५. छं० सं० १५१। १६. छं० सं० १३१। १७. छं० सं० १६६। १८. छं० सं० २०७। १९. छं० सं० २१५। २०. छं० सं० २३३। २१. छं० सं० २३३। २२. छं० सं० २६३। २३. छं० सं० ३७४। २४. छं० सं० ३३४। २५. छं० सं० ४६३।

'लड्डुग्रा' > 'लड्डुग्रान्', 'मिठाई' > 'मिठाइन्' ।

'छोरा' > 'छोरन्', 'छोरी' > 'छोरीन्' ।

'ग्राम' > 'ग्रामन्', 'गांम' > 'गांमन्' ।

ग्रंतिम ध्वनि स्वरहीन प्रतीत होती है, क्योंकि इसके ग्रागे जो योग होता है, वह ग्रंतिम /न्/ से मिला हुग्रा जान पड़ता है। ग्रतः कह सकते हैं—

ए० व०+/न/→ब० व०

/न/ में ग्रंत होने वाली बहुवचन संज्ञाग्रों की प्रचुरता है, साथ ही ग्रंतिम स्वर ह्रस्व होता भी दिखाई पड़ता है।

२. एकवचन तथा बहुवचन में एक ही रूप रहना—

	ए० व०	ब० व०
'कोस'[१] पचीस	'कोस'	'कोस'
'जुघ'[२] कीने किते	'जुध'	'जुघ'
'भुज'[३] मिलिब	'भुज'	'भुज'
दिये 'बाजि-गजराज'[४]	स० 'बाजि'	'बाजि' ।
	'गजराज'	'गजराज'
बोले 'मंत्री'[५]	'मंत्री	'मंत्री'
जोरि जुगल 'कर'[६]	'कर'	'कर'
ते 'षत' पातिल बंचि[७]	'षत'	'षत'
'तोव' टीवन ठहराई[८]	'तोव'	'तोव'
मंत्री सुनतै 'वचन' ये[९]	'वचन'	'वचन'
करी 'मास' दोय क़िला सूं लड़ाई[१०]	'मास'	'मास'
होनी 'सलाम' दिस दोय बार[११]	'सलाम	'सलाम'
दीजिये 'फोज' संगै समूच[१२]	'फौज'	'फौज'
'गढ़' यतने महाराव के[१३]	'गढ़'	'गढ़'
'दिसि' च्यारि[१४]	'दिसि'	'दिसि'

---

१. छं० सं० १३४। २. छं० सं० ८०। ३. छं० सं० २९१। ४. छं० सं० ३९१। ५. छं० सं० ७२। ६. छं० सं० ६८। ७. छं० सं० २२०। ८. छं० सं० २३३। ९. छं० सं० २५४। १०. छं० सं० २६१। ११. छं० सं० २८३। १२. छं० सं० १९६। १३. छं० सं० २११। १४. छं० सं० २१३।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्रतापरासो में मिलते हैं। आधुनिक हिन्दी की भी यही प्रवृत्ति देखी जाती है। बहुवचन बनाते समय किन परिस्थितियों में विकार होता है और किन में नहीं, यह एक पठनीय विषय है

३. आदरसूचक स्थानों पर एकवचन के लिए बहुवचन क्रिया का प्रयोग-

संज्ञा एकवचन	क्रिया बहुवचन
(i) 'पीथल'	'पहोचे' (पहोचे पोथल ता नगर)[१]
(ii) 'राव'	'बोले' (बोलेस राव नृपराज सों)[२]
(iii) 'पातिल'	'पहुँचे' (पातिल पहुँचे जाय गढ़)[३]
(iv) 'राजसिंह'	'बोले' (राजसिंह बोले)[४]
(v) 'पातिलराव'	'कोके' (कोके पातिलराव)[५]
(vi) 'नजब'	'बोले' (सुनत बात बोले नजब)[६]
(vii) 'छाजूराम'	'बुलाये' (मंत्री छाजूराम बुलाये)[७]
(viii) 'भूप'	'सिधाये' (व्याह भूप दिसि देस सिधाये)[८]

४. प्रताप-रासो में समुदाय का बोध कराने वाले भी कुछ शब्द प्रयुक्त हुए हैं—

'भीर'[९] 'भीरि'[१०] 'भीरि बोलि लीनी नजब, लछमनगढ़ की घेर'

'सेना'[११]—'सेन'[१२] 'सेना सुभर अनंत';

'लगे संग की सेन गोला गरकै'

'फौज[१३] 'सिताबी षवर फौज में जाय दै हो'

'दल'[१४] 'रची राड कुरुषेत्र दल दोय जुटे'

'कटक'[१५] 'कटक धाय सूधे धकि आयब'

इन समुदाय-सूचक संज्ञाओं का कोई विशेष नाम हिन्दी-व्याकरण में उपलब्ध नहीं होता। इनको एकवचन ही माना जाता है और इनके बहुवचन भी, इसी कारण देखे जाते हैं। यथा—

'फाड़ि फौजे घनी। देस आये घनी ॥'[१६]

'आये कटकै रटकै सज साजै।'[१७]

१. छं० सं० १५३। २. छं० सं० १६९। ३. छं० सं० १८४। ४. छं० सं० १८६। ५. छं० सं० २१९। ६. छं० सं० २६३। ७. छं० सं० १७८। ८. छं० सं० १५८। ९. छं० सं० १५१। १०. छं० सं० २७२। ११. छं० सं० ७८। १२. छं० सं० १३०। १३. छं० सं० ८५। १४. छं० स० ८५। १५. छं० सं० १२८। १६. छं० सं० ३१२। १७. छं० सं० १८७।

५. अकारान्त शब्दों को ऐकारान्त बनाकर भी बहुवचन शब्द देखने में आते हैं—

'बात' > 'बातै'[१], 'फौज' > 'फौजै'[२], 'तुपक' > 'तुपकै'[३],
'उसास' > 'उसासै'[४], 'कटक' > 'कटकै'[५], 'बदूक' > 'बदूकै'[६],
'कमान' > 'कमानै'[७], 'अवाज' > 'अवाजै'[८], 'तेग' > 'तेगै'[९]।

६. आकारान्त शब्दों का ऐकारान्त बहुवचन रूप—

'अरावा' > 'अरावै'[१०], 'जजाला' > 'जजालै'[११]।

७. आकारान्त संज्ञा शब्दों को एकारान्त वनाकर—

'डेरा' > 'डेरे'[१२]
'नगारा' > 'नगारे'[१३]
'हलकारा' 'हलकारे'[१४]

८. अकारान्त को एकारान्त बनाकर—

'तोव' > 'तोवे'[१५]
'फौज' 'फौजे'[१६]

९. कुछ अन्य बहुवचन—

'बंधु' > 'वंधव'[१७]	('बांधव' शब्द का द्योतक)
'राकस' > 'राकसां'[१८]	(राजस्थानी प्रभाव)
'बीवी' > 'बीबियाँ'[१९]	(खड़ी बोली के अनुसार)
'फिरंगी' > 'फिरंगिय'[२०]	('इय' प्रत्यय लगाकर)
'मुगल' > 'मुगलानु'[२१]	('आनु' प्रत्यय द्वारा)
'अमीर' > 'उमरा /व/'[२२]	(प्रचलित पद्धति के अनुसार। 'उमरा' स्वयं बहुवचन है)

कारक

प्रताप-रासो में कारक-चिह्न नीचे लिखे अनुसार हैं—

कर्त्ता :

---

१. छं० सं० ५५। २. छं० सं० ८४। ३. छं० सं० ८५। ४. छं० सं० १३३। ५. छं० सं० १८७। ६. छं० सं० १८७। ७. छं० सं० १८७। ८. छं० सं० १८२। ९. छं० सं० २६१। १०. छं० सं० ९३। ११. छं० सं० १८९। १२. छं० सं० २९१। १३. छं० सं० १८७। १४. छं० सं० २३६। १५. छं० सं० २८३। १६. छं० सं० ३१२। १७ छं० सं० ६१। १८. छं० सं० ६। १९. छं० सं० २६१। २०. छं० सं० २३६। २१. छं० सं० २६१। २२. छं० सं० ७१।

कर्म : को[१], कौं[२], कूं[३], कौं[४], कु[५], कू[६], कौ[७]।
करण : सों[८], सौ[९], सूं[१०], सौं[११], सू[१२], सु[१३], सुं[१४], सो[१५]।
सम्प्रदान : को[१६], कौ[१७], कू[१८], कु[१९]।
अपादान : सौं[२०], सूं[२१], ते[२२], सों[२३], सुं[२४]।
सम्बन्ध : कै[२५], के[२६], को[२७], को[२८], कौ[२९], को[३०], कौं[३१], कै[३२]।
अधिकरण : मै[३३], में[३४], मैं[३५], पै[३६], पर[३७], कै[३८], मो[३९]।

(कहीं-कहीं संयोगात्मक अवस्था में भी शब्द मिलते हैं। जैसे—
'लोके'[४०]—"गिरे षेत सूजा गये सुरगलोके"
'उरं'[४१] —"उरै दिसि चालनौं जों हम धारो")

उदाहरण—

कर्त्ता—आधुनिक हिन्दी में भी कर्त्ता कारक का चिह्न 'ने' कुछ परिस्थितियों में प्रयुक्त होता है और कुछ में नहीं। प्रताप-रासों में 'ने' चिह्न कहीं भी नहीं दिखाई दिया। जहाँ आधुनिक हिंदी में 'ने' की आवश्यकता होती है, वहाँ भी प्रयोग नहीं किया गया है। कुछ उदाहरण देखिए—

(१) जुध येक मैं कीन[४२] 'मैं'+=‘मैं'+'ने'।
(२) षत मंत्री लिषी भूप कौं[४३] 'मंत्री'+='मंत्री'+'ने'।
(३) नृप आसन दे भुजा पसारिय[४४] 'नृप'+='नृप'+'ने'।

जहाँ आधुनिक हिन्दी में भी आवश्यकता नहीं होती—

(१) 'मैं करूँ जुध वन सो स जाय'[४५]।
(२) सहल करन कू राव सिधाये'[४६]।
(३) ताते कहूँ मैं सुनो साथ सारो[४७]।

---

१. छं० सं० ३७। २. छं० सं० ४३४। ३. छं० सं० १०५। ४. छं० सं० ११७।
५. छं० सं० १७३। ६. छं० सं० १६१। ७. छं० सं० ३९१। ८. छं० सं० १६९।
९. छं० सं० १२३। १०. छं० सं० २५८। ११. छं० सं० २६२। १२. छं० सं०
२६८। १३. छं० सं० ३२०। १४. छं० सं० ३८३। १५. छं० सं० ४५६।
१६. छं० सं० २९। १७. छं० सं० २४२। १८. छं० सं० १६१। १९. छं० सं०
२९८। २०. छं० सं० ४७। २१. छं० सं० १३४। २२. छं० सं० ३०२।
२३. छं० स० ३३०। २४ छं० सं० ४२४। २५. छं० सं० १। २६. छं० सं०
२३। २७. छं० सं० १६८। २८. छं० सं० २०४। २९. छं० सं० ६६। ३०. छं०
सं० १३८। ३१. छं० सं० २४५। ३२. छं० सं० ३२६। ३३ छं० सं० १६।
३४. छं० सं० २६। ३५. छं० सं० ३७१। ३६. छं० सं० ३७४। ३७. छं० सं०
१७४। ३८. छं० सं० ३१६। ३९. छं० सं० २७१। ४० छं० सं० ८५।
४१. छं० सं० १६३। ४२. छं० सं० ८३। ४३. छं० सं० ३१७। ४४. छं० सं०
१९३। ४५. छं० सं० १६६। ४६. छं० सं० १६१। ४७. छं० सं० १६३।

कर्म कारक 'को'—पनै राव परताप 'को' आप धारी ।[1]

'कौं'—षत भूपति 'कौं' दिये पठाये ।[2]

'कूं'—भेजि सदासिव भट 'कूं' अनमानत जुध कीजिये ।[3]

'कों'—बोल सुनाहो यों सबही 'कों' करौ जुध जो राषन जी 'कों' ।[4]

'कु'—जवर राव 'कु' जाय है, रहै भंग कछु होय ।[5]

'कू'—'बहरचो दिसि डेरन 'कू' आये' ।[6]

'कौ'—'धरपती भूप 'कौ' किसत दीन ।[7]

करण 'सों'—बोले सुराव नृपराज 'सों' करत याद फिर आय है ।[8]

कहे वचन यौं स्याम 'सों' दीने आडे हाथ ।[9]

'सौ'—मिली तुम 'सौ' जिनहूँ मिल हों ।[10]

'सूं'—मंत्री बोले कंवर 'सूं' बहोर सेन गढ़ लीन ।[11]

'सौं'—बोलि गुसाईं 'सौं' कही सला होअ सुनाय ।[12]

'सू'—जा नवाव 'सू' जवाब सला सुधि—बुधि सु कीजे ।[13]

'सु'—धरम राव पातल 'सु' हारचौ ।[14]

'सुं'—बोलि षुस्यालीराम 'सुं' कहे भूप बर बैन ।[15]

'सो'—मंत्री बंधुन 'सो' वा वारे ।[16]

सम्प्रदान—'कौ'—ढूढाहर देषन 'कौ' चलि हौ ।[17]

राजकवर 'कौ' सीष दी, नरपति करी निवाज ।[18]

'कू'—आये जुड जाचन 'कू' जोई ।[19]

'को'—जगबंध 'को' कलियाण ।[20]

'कु'—किला यह हम 'कु' दीजत ।[21]

अपादान—'सौं'—टरया सु स्याम 'सौं' यहै जोग ।[22]

'सूं'—आय भूपदल दीघ 'सूं' रह घटि कोस पचीस ।[23]

'सों'—यों सुनाय सब, साथ 'सों' निकसे चावड़दान ।[24]

---

१. छं० सं० ३७ । २. छं० सं० ४३४ । ३. छं० सं० १०५ । ४. छं० सं० ११७ । ५. छं० सं० १७३ । ६. छं० सं० १६१ । ७. छं० सं० ४१४ । ८. छं० सं० १६६ । ९. छं० सं० ३८ । १०. छं० सं० २४२ । ११. छं० सं० २५८ । १२. छं० सं० २६२ । १३. छं० सं० २६८ । १४. छं० सं० ३२० । १५. छं० सं० ३८३ । १६. छं० सं० ४५६ । १७. छं० सं० २४२ । १८. छं० सं० ३९१ । १९. छं० सं० १५४ । २०. छं० सं० २९८ । २१. छं० सं० २९ । २२. छं० सं० ४७ । २३. छं० सं० १३४ । २४. छं० सं० ३३० ।

'सुं'—लैए होय सो मो 'सुं' लीजै ।[1]

'तें'—मंत्री सिर 'तें' स्याम तजि, हुये नजब दल लारि ।[2]

संबंध— 'कै'—गवरि पुत्र गणराज 'कै', प्रथमहि लगुं पाय ।[3]

मत्री बुलाय महाराज 'कै', यौ पूछी व्रजराज ।[4]

'के'—तास तात 'के' बंधु कवर मंगल व्रत धारिय ।[5]

सुतस राव वरसिंह 'के', हुयो राव महाराज ।[6]

'की'—भुजा दाहिनी भूप 'की', बैसत पातलराव ।[7]

'को'—हुकम साहि 'को' सोई कीजै । दिसा-दिसा सिर डेरा दीजै ।[8]

'कौ'—ले बंधु आदि आमैरि 'को', सुलझावत आमैरपति ।[9]

'कों'—इसो राजसी 'कों' हुकम भूप होई ।[10]

'कौं'—जुद्धकरन 'कौं' जोग है, करै सु सीताराम ।[11]

'कैं'—सुणि जवाव नवाब 'कैं', बोलि मीर उमराव ।[12]

अधिकरण–'मैं'—गयो बाज वनवास 'मैं', ते लव कर गह लीन ।[13]

'में'—मारि लिये मावास 'में', कामा राव कल्याण ।[14]

'पै'—किये जुध जो 'पै' किलै मास दोई ।[15]

सिर 'पै' नाहिन स्याम है ।[16]

'पर'—ता 'पर' हमैं मुहीमस होई ।[17]

दगेस पातल राव 'पर', कियेस दुरजन हाथ ।[18]

'कै'—अठारैसै षटतीस 'कै', दिये नजब सिर दाव ।[19]

'मो'—दल 'मो' षुस्याल डेरा कराय ।[20].

कुछ स्थानों पर कारक चिह्नों का लोप भी पाया जाता है—

(i) कर्त्ता कारक—पहले ही दिखाया जा चुका है कि इसका चिह्न किसो भी स्थिति में लक्षित नहीं होता ।

---

१. छं० सं० ४२४ । २. छं० सं० ३०२ । ३. छं० सं० १ । ४. छं० सं० ७१ ।
५. छं० सं० ३ । ६. छं० सं० २३ । ७. छं० सं० ४५ । ८. छं० सं० २०४ ।
९. छं० सं० ३८० । १०. छं० सं० १३८ । ११. छं० सं० २४५ । १२. छं० सं०
३२६ । १३. छं० सं० १६ । १४. छं० सं० २६ । १५. छं० सं० ३७ । १६.
छं० सं० ३५१ । १७. छं० सं० १७४ । १८. छं० सं० १६२ । १९. छं० सं० ३१६ ।
२०. छं० सं० २७१ ।

(ii) कर्म—क्यों तुम दिल्ली नजब तजि दीनों।[1] (दिल्ली-नजब+'को')
षत वंचि भूप लिषयेस आप।[2] (षत+'को')

(iii) संबंध— राज मलेसी सुत भये, बीजल राव वषान।[3] (मलेसी+'के')
समस्त पद के रूप में तो यह स्थिति है ही।

(v) अधिकरण—ता बन यक तपसी तपत।[4] ('बन'+में)
गढ सैथल मुकाम करि।[5] ('सैथल'+में)

संबंध कारक में राजस्थानी चिह्न का प्रयोग—

'रै'—नरूधर 'रै' गढ़ राजस्थान।[6]

'रौ'—वत दिलीधर नजब नर, यत आमेर 'रौ' अधिराज।[7]

'रा' दोहु दलां बिच राव 'रा', मंत्री चाढ़ै रंग।[8]

पर अपेक्षाकृत इन चिह्नों का कम ही प्रयोग है।

कुछ निष्कर्ष

१. कारकों के चिह्न प्रायः व्रजभाषा के हैं। किसी भाषा का निर्णय करने में कारक-चिह्न बहुत सहायक होते हैं। प्रताप-रासो में व्रजभाषा के कारक चिह्नों का प्राचुर्य है।

२. यत्र तत्र कारक चिह्नों पर राजस्थानी प्रभाव भी है। कहीं-कहीं तो 'रै', 'रौ', 'रा' संबंध कारक के चिह्नों का प्रयोग भी हुआ है। 'सं', 'कूं' मेवाती प्रयोगों का मिलना स्वाभाविक है, क्योंकि अलवर में मेवाती प्रभाव रहा है।

३. आवश्यकता होने पर चिह्नों का प्रयोग नहीं भी किया गया है। उदाहरण अलग दिए गए हैं।

४. सप्तमी विभक्ति के चिह्नों को शब्दों के संयोगात्मक रूप में भी ग्रहण किया गया है। ऐसे स्थानों पर अकारान्त से ऐकारान्त किया गया है।

'सिर'—'सिरै'—करी कीनहार 'सिरै' दोस मोही[9]

'उर'—'उरै' 'उरै' दिसि चालनों जों हम धारो।[10]

'मन'—'मनै'—पनधारी पातिल 'मनै'[11]

---

१. छं० सं० ३५०। २. छं० सं० ३५२। ३. छं० सं० २०। ४. छं० सं० ७। ५. छं० सं० ३५८। ६. छं० सं० २१५। ७. छं० सं० २८६। ८. छं० सं० २३२। ९. छं० सं० १६३। १०. छं० सं० १६३। ११. छं० सं० ४४७।

५. कारक चिह्नों के रूपों में बहुत विभिन्नता है; संभवतः लिपि के कारण—

(i) ‘को’[१], ‘कौं’[२], ‘कों’[३], ‘कौ’[४]।

(ii) ‘सों’[५], ‘सौ’[६], ‘सौं’[७], ‘सो’[८]।

(iii) ‘कूं’[९], ‘कु’[१०], ‘कू’[११]।

(iv) ‘सू’[१२], ‘सु’[१३], ‘सुं’[१४], ‘सूं’[१५]

(v) ‘कूँ’[१६], ‘कु’[१७]।

(vi) ‘कै’[१८], ‘के’[१९]।

(vii) ‘मै’[२०], ‘में’[२१], ‘मैं’[२२]।

हिन्दी के चिह्नों की अपेक्षा अधिक विविधता है

६. संबोधन का प्रयोग कम ही हुआ है। एक प्रयोग देखें—

‘रे’—यसी जान कै आप सुजास बोले।
है ‘रे’ कोऊ या वार यौ बैन बोले॥[२३]

७. मूल रूप और विकृत रूप दोनों मिलते हैं—

विकृत रूप

‘व्याहन’ बीकानेर घर[२४]—	‘व्याहने’+‘को’
‘हसतीस’ बैठि दिस सह लिये[२५]	‘हसती’+‘पर’
‘यतै’ व्रजराजन कीनो हकारो[२६]	‘व्रजराज’+‘ने’

८. कुछ सर्वनामों के साथ भी कारकों के चिह्न देखें—

		मूल	विकृत
कर्त्ता	:	‘मै’+‘०’[२७]	‘तिन’[३०]
कर्म	:	‘हम’+‘कु’[२८]	‘मोहि’[३१]
करण	:	‘तुम’+‘सै’[२९]	‘ताते’[३२]

---

१. छं० सं० २३। २. छं० सं० २८। ३. छं० सं० ११७। ४. छं० सं० ६६।
५. छं० सं० ३८। ६. छं० सं० १२३। ७. छं० सं० २६२। ८. छं० सं० २३८।
९. छं० सं० १७३। १०. छं० सं० ४१६। ११. छं० सं० १५४। १२. छं० सं०
२६८। १३. छं० सं० ३२०। १४. छं० सं० ३८३। १५. छं० सं० २५८।
१६. छं० सं० १०५। १७. छं० सं० १७३। १८. छं० सं० १। १९. छं० सं० २।
२०. छं० सं० १६। २१. छं० सं० २६। २२. छं० सं० ३१। २३. छं० सं०
८५। २४. छं० सं० १५०। २५. छं० सं० १५१। २६. छं० सं० ८५।
२७. छं० सं० १६३। २८. छं० सं० २९८। २९. छं० सं० २४२। ३०. छं० सं०
३७५। ३१. छं० सं० १०। ३२. छं० सं० ३७१।

सम्प्रदान : 'हम' + 'कु'[१]
अपादान : 'मो' + 'सुं'[२]
सम्बन्ध : 'तिन' + 'के'[३] 'तेरे'[६], 'मो'[७]
अधिकरण : 'ता' + 'पर'[४] 'तिन'[८]
'हम' + 'पै'[५]

इस सम्बन्ध में विशेष विवरण सर्वनाम के अन्तर्गत देना उपयुक्त होगा। यहाँ इस बात को दिखाने की चेष्टा की गई है कि कारक-चिह्नों का प्रयोग संज्ञा सर्वनाम दोनों के साथ देखा जाता है। प्राय: शब्द अपने मूल रूप में ही रहते हैं, परन्तु कभी-कभी उनका रूप विकृत भी हो जाता है। संज्ञा की अपेक्षा सर्वनाम में विकृत होने की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक है।

संज्ञाओं के कुछ विशेष रूप—

(१) व्यक्तिवाचक संज्ञाओं की सूची प्रस्तावना में अलग दी गई है—इसमें इस पुस्तक में आए हुए पात्रों तथा स्थानों की नामावलि है। व्यक्तिवाचक संज्ञा-शब्दों की भी एकरूपता नहीं पाई जाती। जैसे—
'जवाहर'[९], 'जोहार'[१०], 'जौहार'[११], 'जोंहार'[१२]।
'पातिल'[१३], 'पातलि'[१४], 'पातल'[१५]।

(२) विशेष प्रत्ययों से बनी संज्ञाएँ—
'वारे' ⌣ 'आमैरिवारे'[१६] = 'आमैरि' + 'वारे'
'वारौ' ⌣ 'आमावतिवारौ'[१७] = 'आमावति' + 'वारौ'
'क' ⌣ 'पायक'[१८] = √'पाय' + 'क'
'दायक'[१९] = √'दाय' + 'क'
'वांन' ⌣ 'आधीनवांन'[२०] = 'आधीन' + 'वांन'
'हार' ⌣ 'कीनहार'[२१] = √'कीन' + 'हार'
'कहनहार'[२२] = √'कहन' + 'हार'
'—ई' ⌣ 'करनी'[२३] = √'करना' + 'ई'

---

१. छं० सं० २९८। २. छं० सं० ४२४। ३. छं० सं० २०। ४. छं० सं० ४५। ५. छं० स० १९१। ६. छं० सं० १०। ७. छं० सं० ४६६। ८. छं० सं० १०। ९. छं० सं० १३३। १०. छं० सं० ९७। ११. छं० सं० ८९। १२. छं० सं ९२। १३. छं० सं० ६५। १४. छं० सं० ९९। १५. छं० सं० १०२। १६. छं० सं० ९७। १७. छं० सं० २८९। १८. छं० सं० ११२। १९. छं० सं० ४६६। २०. छं०सं० १६३। २१. छं०सं० २४१। २२. छं०सं० २७३। २३. छं०सं० ३१०।

'न' ⌣ 'चलन'[१] = √'चल' + 'न'
'आवन'[२] = √'आना' + 'न'

सर्वनाम

प्रताप-रासो में सर्वनाम के प्रायः वे सभी रूप देखे गए, जो आधुनिक हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं। आधुनिक हिन्दी व्याकरण के अनुसार सर्वनाम के आठ भेद हैं—

१. पुरुषवाचक : मैं[३], हम[४], तुम[५], वह[६], ते[७], सो[८]।
२. निजवाचक : अप[९], आप[१०], आपन[११]।
३. निश्चयवाचक : यह[१२], ये[१३], वह[१४]।
४. सम्बन्धवाचक : जो[१५]।
५. नित्यसम्बन्धी : सो[१६]।
६. अनिश्चयवाचक : कोय[१७]।
७. प्रश्नवाचक : कौन[१८]।
८. आदरवाचक : आप[१९]।

रूप-विन्यास की दृष्टि से पुरुषवाचक सर्वनाम बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं और उनकी आकृति के आधार पर किसी भाषा या बोली का वर्गीकरण करना संभव होता है। जैसा कारक के प्रसंग में देखा गया, उसी प्रकार सर्वनाम के रूपों पर विचार करने से भी यही सिद्ध होता है कि प्रताप-रासो ग्रन्थ की भाषा निश्चय रूप से व्रजभाषा है। यत्र-तत्र थोड़ा बहुत अन्तर होना तो अनिवार्य-सा है, क्योंकि कोई भी लेखक स्थानीय प्रयोगों में प्रभावित होता ही है।

पुरुषवाचक सर्वनाम

उत्तम पुरुष 'मैं' के रूप

कारक	एक वचन	बहुवचन
कर्त्ता	मैं[२०], मै[२१]	हम[२२]

---

१. छं० सं० ३४४। २. छं० स० ३८०। ३. छं० स० ३९६। ४. छं० स० १६३। ५. छं० सं० १६६। ६. छं० सं० १०५। ७. छं० सं० ११४। ८. छं० सं० १५। ९. छं० सं० २२४। १०. छं० सं० १४८। ११. छं० सं० २५५। १२. छं० सं० ४७। १३. छं० सं० ३२५। १४. छं० सं० १६६। १५. छं० सं० १६३। १६. छं० सं० १६६। १७. छं० सं० २४३। १८. छं० सं० १६६। १९. छं० सं० ४७। २०. छं० सं० ३९३। २१. छं० सं० १६३। २२. छं० सं० १६३।

कर्म	मोहि[१]	हमैं[२], हमैं[३]
करण	(मोसुं)	(हमसुं)
संप्रदान	(मोहि)	हमकु[४]
अपादान	मोसु[५]	(हमसुं)
संबंध	मोरिय[६], मेरीस[७], मो[८], मेरो[९], मेरे[१०], मोही[११],	हमारो[१२], हमारी[१३], हमरी[१४], हमारिय[१५]।
अधिकरण	(मो पैं)	हम पैं[१६]।

प्रयोग—'मैं'—ताते कहूँ 'मैं' सुनो साथ सारौ।[१७]

'मैं'—बालिक जिम पाले अहु भाई। लघुवा ते 'मैं' किये बड़ाई।[१८]

'हम'—रावरीय अनमान सला सलाह करी 'हम'।[१९]

'मोहि'—महाराज 'मोहि' यह माफ कीन।[२०]

'हमैं'—ता पर 'हमैं' मुहीमस होई।[२१]

'हमकु'—अलवर साहि सुठाम किला यह 'हमकु' दीजत।[२२]

'मोसुं'—लैए होय सो 'मोसुं' लीजै।[२३]

'मेरीस'—अरज येक 'मेरीस' यह जो नरेस सुनि लीजिये।[२४]

'मो'—'मो' बलकी यह बात प पातल जीवत देत कब।[२५]

'मोरिय'—आ नसंक तजि संक है सुनि लीने 'मोरिय'।[२६]

'मेरो'—जो है षुस्याल 'मेरो' सुनांम।[२७]

'मेरे'—'मेरे' मेरे नांय बिकांनें। दोय परा दिस च्यार रौ जानैं।[२८]

'मोही'—करी कीनहार सिरै दोस 'मोही'।[२९]

'हमारो'—हुकमै 'हमारो' यही भांति दीज्यो।[३०]

'हमारी'—इसी नग्र नाही न चैही 'हमारी'।[३१]

'हमरी'—रहिये असेष व सेष षुसी। तुमरी'हमरी' घर येक वशी।[३२]

---

१. छं० सं० १६३। २. छं० सं० २६३। ३. छं० सं० ९७। ४. छं० सं० २९८। ५. छं० सं० ४२४। ६. छं० सं० ९१। ७. छं० सं० १०५। ८. छं० सं० २९८। ९ छं० सं० ३२१। १०. छं० सं० ३९६। ११. छं० सं० १६३। १२. छं० सं० १३८। १३. छं० सं० १६३। १४. छं० सं० २४२। १५. छं० सं० ४२४। १६. छं० सं० ३९८। १७. छं० सं० १६३। १८. छं० सं० ३९६। १९. छं० सं० २६३। २०. छं० सं० १९८। २१. छं० सं० १७४। २२. छं० सं० २९८। २३. छं० सं० ४२४। २४. छं० सं० १०५। २५. छं० सं० २९८। २६. छं० सं० ९१। २७. छं० स० ३२१। २८. छं० सं० ३९६। २९. छं० सं० १६३। ३०. छं० सं० १३८। ३१. छं० सं० १६३। ३२. छं० सं० २४२।

'हमारिय'—कहरण होय सो कहो जिसी बल बुधि 'हमारिय' ।[१]

'हम पै'—'हम पै' भारी भीर धीर धरिये न येक छिन ।[२]

मध्यम पुरुष 'तुम' के रूप

प्रताप-रासो में कर्म कारक 'तू' का प्रयोग नहीं हुआ है। इसके केवल कुछ ही रूप मिलते हैं। जैसे—'तो ही'[३], 'तेरे'[४]।

कारक	एक वचन	बहुवचन
कर्त्ता	×	तुम[५], तम[६],
कर्म	तो[७]	तुमै[८], तमै[९]
करण	×	(तुम सौं)~सूं, सुं
संप्रदान	×	(तुम कौं) (तुमै)
अपादान	×	(तुम सौं)~सूं, सुं
संबंध	तेरे[१०]	तुमरो[११], तुम्हारो[१२], तुम्हरे[१३], तुमारी[१४], तुमरी[१५],
अधिकरण	—	तुम्हरी[१६], तुम्हारी[१७], तुम्हारिय[१८] तिहारी[१९] (तुम पै)

प्रयोग—'तुम'—'तुम' कीन बंधु जो बंधु काम ।[२०]

'तम'—रावराज परताप करन होय सो कहो 'तम' ।[२१]

'तो'—दुरजन 'तो' ही जानियत, छत्री धरम डिगात ।[२२]

'तुमै'—करि है पर और हरोल 'तुमै' ।[२३]

'तमै'—'तमै' देखनों ठाम सोही विचारे ।[२४]

'तेरे'—को पुत्री को तात कौन 'तेरे' पति कहियत ।[२५]

'तुमरो'—सुत 'तुमरो' पकरेगो सोई ।[२६]

'तुम्हारो'—मिलिबे माधव नृपति सौ, सदा 'तुम्हारो' सीर ।[२७]

'तुम्हरे'—आपक 'तुम्हरे' तात सदा पायक वा घर के ।[२८]

---

१. छं० सं० ४२२। २. छं० सं० ३९८। ३. छं० सं० ३११। ४. छं० सं० १०। ५. छं० सं० १६६। ६. छं० सं० ४४५। ७. छं० सं० ३११। ८. छं० सं० २४२। ९. छं० सं० ९७। १०. छं० सं० १०। ११. छं० सं० १५। १२. छं० सं० ३२०। १३. छं०सं० ११२। १४. छं०सं० १९३। १५. छं०सं० २४२। १६. छं० सं० २४२। १७. छं० सं० ३२०। १८. छं० सं० ६८। १९ छं० सं० ४०६। २०. छं० सं० १६६। २१. छं० सं० ४००। २२. छं० सं० ३११। २३ छं० सं० २४२। २४. छं० सं० ९७। २५. छं० सं० १०। २६. छं०सं० १५। २७ छं० सं० १११। २८. छं०सं० ११२।

'तुमारी'—सरी 'तुमारी' रार आरि मिलियेस वेगियत ।[१]

'तुमरी'—'तुमरी' हमरी घर येक वशी ।[२]

'तुम्हरी'—'तुम्हरी' हद देषन आंन हमैं। करि है पर और हरोल तुमैं ।[३]

'तुम्हारी'—कह्यौ 'तुम्हारी' सोई कीजै ।[४]

'तुम्हारिय'—रहिय दोय निसि च्यारि गाँव यह ठाँव 'तुम्हारिय' ।[५]

'तिहारी'—ये आये दिली दल भारी। यह मंत्री है वार 'तिहारी' ।[६]

अन्यपुरुष (वह—ता) के रूप

कारक	एक वचन	बहुवचन
कर्त्ता	वह[७], वा[८]	जिनै[९], ते[१०], तिन[११], ता[१२] ।
कर्म	ते[१३], तास[१४], ता[१५], ताहि[१६]	तए[१७], तिन[१८] ।
करण	तेन[१९]	(तिन)[२०] ।
सम्प्रदान	ताहि[२१]	(तिनै), (तिन) ।
अपादान	तासुं[२२], तेन[२३]	(तिनसुं)
संबंध	ताको[२४], तास के[२५] तास कै[२६], ता[२७] तास[२८],	तिनके[२९], तिन[३०], तिनकी[३१] ।
अधिकरण	तापै[३२], तापर[३३]	तिन[३४] ।

ऊपर लिखे रूपों से स्पष्ट है कि एक ही शब्द कई कारकों का काम भी करता है, यथा—'तिन' (कर्त्ता, कर्म, सम्प्रदान, संबंध, अधिकरण)

प्रयोग—'वह'—'वह' नोकर तुम नृपति क्रोध कापै यह कीजिय ।[३५]

'वा'—मंत्री बंधुन सो 'वा' वारे ।[३६]

'ते'—सुनि सामतन 'ते' तो रुद्र प्रवानी ।[३७]

---

१. छं०सं० १९३ । २. छं०सं० २४२ । ३. छं०सं० २४२ । ४. छं०सं० ३२० । ५. छं०सं० ६८ । ६. छं०सं० ४०६ । ७. छं०सं० १०५ । ८. छं०सं० ४५६ । ९. छं०सं० १३८ । १०. छं० सं० ४६३ । ११ छं० सं० ३४० । १२ छं० सं० १७८ । १३. छं० सं० १६ । १४. छं० स० ११ । १५. छं० सं० १८ । १६. छं० सं० २१८ । १७. छं० सं० १८० । १८. छं० सं० ३३६ । १९. छं० सं० ४०१ । २०. छं० सं० ३०१ । २१. छं० सं० १४८ । २२. छं० सं० ३२९ । २३ छं० सं० ४०१ । २४ छं० सं० २२० । २५. छं० सं० ४११ । २६. छं० सं० ४३२ । २७ छं० सं० २६८ । २८. छं० सं० १९ । २९. छं० सं० २० । ३०. छं० सं० ३०१ । ३१. छं० सं० ३४६ । ३२. छं० सं० १७६ । ३३. छं० सं० २३४ । ३४. छं० सं० १० । ३५. छं० सं० १०५ । ३६. छं० सं० ४५६ । ३७. छं० सं० ५१ ।

'तिन'—अलिगवर से साहि ताहि 'तिन' यसी सुनाई ।[१]
'ता'—'ता' सुन त्रहू सुनतहि आये ।[२]
'तें'—गयो बाज वनवास में, 'तें' लव कर गह कीन ।[३]
'तास'—सुनत वचन रिष सीत के, संग लै गये 'तास' ।[४]
'ता'—'ता' तजि बंधि गए बन जोई ।[५]
'ताहि'—अलिगवर से साहि 'ताहि' तिन यसी सुनाई ।[६]
'तरण ने'—यती ठाव कलियारण 'तरण ने' वुल वरीया वरु ।[७]
'तिन'—अैन बैन नर न जव बोलि 'तिन' बोलि सुनायव ।[८]
'तेन'—षवर भई भूपति कटक, 'तेन' तपत अति ताय ।[९]
'ताहि'—पीथल है आमैर पतिं, दीजै 'ताहि' कवारि ।[१०]
'तासके'—दषरण दल बल सबल 'तासके' कहिये नायक ।[११]
'ताको'—कोके नजब नवाब काज 'ताको' चल कीजत ।[१२]
'तासकै'—अस मग जहै वास 'तासकै' घने माल लिय ।[१३]
'ता'—नाम षुस्यालीराम तिन नजबषान 'ता' दल मिलन ।[१४]
'तास'—हरणू 'तास' वति होय जारिण जनरस हए.वत ।[१५]
'तिनके'—राजदेव 'तिनके' भये सुत कील्हन द्दे जान ।[१६]
'तिन'—'तिन' सिर तषत सु राजगढ़, रहनि आप सुख ठांम ।[१७]
'तिनकी'—'तिनकी' मार फौज घन मेली ।[१८]
'तापै'—को नृप रषै 'तापै' रहै। नाहि चले दिली दिस जहै ।[१९]
'तापर'—'तापर' बैठे नजब नर, इंद्रपुरी सम ठाम ।[२०]
'तिन'—सुत चार दसरथ के, 'तिन' दीरघ पति जानिये ।[२१]

पुरुषवाचक सर्वनाम के बलात्मक प्रयोग भी प्रताप-रासो में हैं। कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं—

प्र० पु०—'मोही'—करी कीनहार सिरै दोस 'मोही' ।[२२]

---

१. छं० सं० २१८। २. छं० सं० १७८। ३. छं० सं० १६। ४. छं० सं० ११। ५. छं० सं० ८। ६ छं० सं० २१८। ७. छं० सं० १८०। ८. छं० सं० ३३६। ९ छं० सं० ४०१। १० छं० सं० १४८। ११. छं० सं० ४११। १२. छं० सं० २२०। १३. छं० सं० ४३२। १४. छं० सं० २६८। १५. छं० सं० १९। १६ छं० सं० २०। १७. छं० सं० २११। १८. छं० सं० ३४६। १९. छं० सं० ७२। २०. छं० सं० २३४। २१. छं० सं० १०। २२. छं० सं० १६३।

म० पु०—'तोहीं'—दुरजन तोही जानयत्त छत्री धरम डिगात ।[1]

अ० पु०—'तेहि'—सुनं बात हमीर 'तेहि' सिधारै ।[2]

'ताही'—'ताही' नृप सारीष राव परताप भोमि भर ।[3]

पुरुषवाचक सर्वनाम के रूप बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। प्रतापरासो में इनके रूप इस तथ्य की ओर निश्चित प्रमाण उपस्थित करते हैं कि ये सभी रूप ब्रजभाषा के हैं। रूप की विभिन्नता अवश्य देखी जाती है। जैसा पहले भी लिखा जा चुका है—इस विभिन्नता का कारण लिखने में अधिक ध्यान न देना है। दो एक उदाहरण देखें—

प्र०पु०--'मो'[4], मोरिय'[5], 'मेरोस'[6]।

म०पु०—'तुमारो'[7], 'तुमरी'[8], 'तिहारी'[9], 'तुम्हारी'[10], 'नुम्हरी'[11], 'तुम्हारिय'[12]।

अ०पु०—'ताके'[13], 'तासके'[14], 'तासकै'[15], 'ता'[16], 'तास'[17]।

पर कहीं-कहीं एक रूप ही अनेक विभक्तियों में प्रयुक्त हुआ है—

'तिन'—'तिन'[18]—कर्त्ता। 'तिन'[19]—कर्म। 'तिन'[20] —संबंध 'तिन'[21]—अधिकरण।

निजवाचक—'आप' का प्रयोग निजवाचक और आदरसूचक दोनों रूपों में हुआ है। जब कोई अन्य व्यक्ति संबोधन करता है, तो आदरसूचक प्रयोग होता है और जब स्वयं के लिए होता है, तो निजवाचक। अनेक स्थानों पर कवि ने आदरस्वरूप 'आप' का प्रयोग किया है। 'तू' का प्रयोग बहुत ही कम मिला। यह प्रवृत्ति कवि की शालीनता की परिचायक कही जा सकती है। निजवाचक में 'आप' के तीन रूप मिलते हैं—

'अप' —'अप' पटतर से आप राव परताप संग दिय ।[22]

चढ़े चवर बघ चाय दाय 'अप' नरू नृपति नर ।[23]

'आप' —'यों सुन बीकानेर नृप, गजै 'आप' उरधारि ।[24]

---

१. छं० सं० ३११। २. छं० सं० ५१। ३. छं० सं० २०१। ४. छं० सं० २९८।
५ छं० सं० ९१। ६. छं० सं० १०५। ७. छं० सं० १९३। ८. छं० सं० २४२।
९. छं० सं० ४०६। १०. छं० सं० ३२०। ११. छं० सं० १४०। १२. छं० सं० ६८।
१३. छं० सं० २२०। १४. छं० सं० ४११। १५. छं० सं० ४३२। १६. छं०
सं० २६८। १७. छं० सं० १९। १८. छं० सं० ३४०। १९. छं० सं० ३३६।
२०. छं० सं० ३०१। २१. छं० सं० १०। २२. छं० सं० २२४। २३. छं० सं०
१५९। २४. छं० सं० १४८।

बोलिये 'आप' यह ठाम कामं ।[1]

'आपन'—'आपन' पै सिवसिंह बुलाये ।[2]

निजवाचक के साथ कारक चिह्न का भी प्रयोग हुआ है। जैसे ऊपर दिए गए उदाहरण में—'आपन'+'पै'—(अधिकरण कारक का चिह्न)। इस प्रकार का प्रयोग आधुनिक खड़ी बोली में नहीं देखा जाता।

निश्चयवाचक—निश्चयवाचक सर्वनाम के दो रूप देखे जाते हैं—(१) निकटवर्ती—'यह'[3], 'ये'[4]। (२) 'दूरवर्ती'—'सो'[5], 'ते'[6]। निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के रूप इस प्रकार मिलते हैं—

एकवचन	बहुवचन
'यो', 'यह', 'या', 'याहि', 'यहै'।	'यन', 'ये', ।

प्रयोग—'यो'—बुझी पातल चाह करि, कोन यक 'यो' बात ।[7]

'यह'—कलियाण वंस सो 'यह' न होय ।[8]

'या'—गुंम भारी भली। नवाब 'या' ही सिलो ।[9]

'याहि'—बोलेसु मीर सुनिये नजब 'याहि' तोड़ कीजे चलन ।[12]

'यहै'—टरचा सु स्यांम सौं 'यहै' जोग ।[13]

'यन'—हम घर तुम घर दाय आय 'यन' कियो हुंद दल ।[10]

'ये'—'ये' आये दिली दल भारी। यह मंत्री है वार तिहारी ।[11]

यहाँ भी बलात्मक प्रयोग के लिए /ही/~ [हो][14], [हि][15], [है][16] का प्रयोग किया गया है। रूप-विभिन्नता यहाँ भी लक्षित होती है। यथा—एक वचन कर्त्ताकारक—

'यह'~ [यो], [यह], [या], [य]—इनमें [यो] अलवरी-राजस्थानी, [यह] खड़ी बोली, [या] व्रजभाषा तीनों के रूप लक्षित होते हैं। [य] विकृत रूप है।

दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम—

---

१. छं० सं० ४७। २. छं० सं० २५५। ३. छं० सं० ४७। ४. छं० सं० ४०६। ५. छं० सं० ३२०। ६. छं० सं० ११४। ७. छं० सं० ४३७। ८. छं० सं० ४७। ९. छं० सं० ३१२। १०. छं० सं० ४१८। ११. छं० सं० ४०६। १२. छं० सं० २४८। १३. छं० सं० ४७। १४. छं० सं० ३१२। १५. छं० सं० २४८। १६. छं० सं० ४७।

एकवचन	बहुवचन	
(वह), (वा), 'सौ' 'सो'	'ते'	—सामान्य प्रयोग
'सोय', 'जोई', 'सोही', 'जोय'	तेहि'	—बलात्मक प्रयोग

प्रतापरासो के उदाहरण—

'सो'—'सो' सुनी राव पातिल नरेश ।[1]

'सोय'—सुनियेत 'सोय' नजब नवाब ।[2]

'सोही'—तमै देखनों ठाम 'सोही' विचारे ।[3]

सम्बन्धवाचक—सर्वनाम का यह प्रकार नित्यसम्बन्धी से संलग्न कहलाता है, क्योंकि इसका दूसरा प्रयोग, प्रायः नित्यसम्बन्धी 'जो' के साथ होता है। प्रतापरासो में 'जो' और 'सो' अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते प्रतीत होते हैं। 'जो' के नीचे लिखे रूप मिलते हैं—

'जो'—'जो' होय मोही दुरजन बताव'। मैं करूँ जुध वन सोस जाय ।[4]

'जोय'—दगोस देत मंत्रि ये । कहोस 'जोय' कीजिये ।[5]

'जोई'—'जोई' होय जौंहार लँन सोही चलि तोजै ।[6]

'जे'—गढ मझारि करि राड़ि के कुल कछवाह 'जे' जिते ।[7]

'जोय' और 'जोई'—'जो' के बलात्मक प्रयोग हैं।

प्रश्नवाचक—सर्वनाम का यह प्रकार नीचे लिखे रूपों में मिलता है—

'कौण'[8], 'कौन'[9], 'को'[10], 'काके'[11], 'कौन की'[12], 'कोन'[13] ।

ऊपर लिखे सभी रूप आधुनिक हिन्दी के 'कौन' से संबंधित हैं। प्रतापरासो में इनका प्रयोग देखिए –

'कौण'—अगम अलेख अपार 'कौण' पावंत पार नर ।[14]

'कौन'—सुनै 'कौन' की को वहा जानहारो ।[15]

कही 'कौन' है सो यसी करनहारो ।[16]

---

१. छं० सं० १९८ । २. छं० सं० २७१ । ३. छं० सं० ९७ । ४. छं० सं० १६६ । ५. छं० सं० ३०३ । ६. छं० सं० ११२ । ७ छं० सं० २५९ । ८. छं० सं० २ । ९. छं० सं० १६३ । १०. छं०सं० २५७ । ११ छं०सं० ३९५ । १२ छं० सं० ८५ । १३. छं० सं० ४३७ । १४. छं० सं० २ । /ण/ इस प्रान्त की विशेषता है अन्य शब्द 'लछमण' (छं० सं० १७); 'हणवत' (छं० सं० १९); 'जाणि' (छं० सं० १९); 'परवाण' (छं० सं० २५); 'वषाण' (छं० सं० २७) हिन्दी में ये ध्वनियाँ /न/ हैं। १५. छं० स० ८५ । १६. छं० सं० १६१ ।

'को'—बुझी सवत विचार लार सेनापति 'को' है।[१]
'काके'—'काके' हलद्या कौन नृप, पड़े फंद कहां जाय।[२]
'कौन की'—सुनै 'कौन की' को वहा जानहारो।[३]
'कोन'—बुझी पाताल चाह करि, 'कोन' यक यो बात।[४]
'का पै'—वह नोकर तुम नृपति क्रोध 'का पै' यह कीजिये।[५]

कौन को विविध रूप

'कौन' ~ [कौण], [कौन , [कोन], [का]

'कौन' के साथ कारक चिह्नों का प्रयोग भी ऊपर दिखाया गया है।

'का' + 'के' = 'काके'
'का' + 'पै' = 'कापै'
'कौन' + 'की' = 'कौन की'

ऊपर के उदाहरणों में कारक चिह्नों के साथ 'कौन' का रूप 'का' हो जाता है। यथा 'काके', 'कापै' 'काकी' भी।

नित्यसंबंधी—प्रायः देखा जाता हैं कि हिन्दी के नित्यसंबंधी सर्वनाम 'सो' का व्यवहार आधुनिक साहित्यिक हिन्दी में कम होता हैं। परन्तु प्रतापरासो लगभग २०० वर्ष पहले की रचना है और उसमें 'सो' का प्रयोग काफी हुआ है। आजकल भी बोलियों में 'सो' (नित्यसंबंधी) का प्रयोग देखा जाता है। प्रतापरासो में 'सो' के कई रूप मिलते हैं, यथा—

	एकवचन	बहुवचन
मूल	'सो', 'सौ'	'सो'
विकृत	'तिस'	'तिन'
बलात्मक	'सोही', 'सोई' 'सोय'	'तिनै'

कुछ प्रयोग—

'सो'—(जो) लैण होव 'सो' मोसुं लीजै।[६]
'सौ'—(जो) वचन तुम्हारो 'सौ' मै पारो।[७]
'सोही'—(जो) राव कहै 'सोही' तुम कीजै।[८]

१. छं० सं० २५७। २. छं० सं० ३६५। ३. छं० सं० ८५। ४. छं० सं० ४३७। ५. छं० सं० १०५। ६. छं० सं० ४२४। ७. छं० सं० ३२०। ८. छं० सं० ३८४।

'सोय'—(जो) कहिहै षुस्याल मै 'सोय' कीन।[1]

'सोई'—कीजो (जो) राव कहै अब 'सोई'।[2]

'तिन'—जिन दाडिये धर देस। 'तिन' पाट पए अएदेस ॥[3]

इन रूपों के साथ कारकीय रूप कम ही मिलते हैं। कर्त्ताकारक में विकृत रूप प्राप्त होते हैं। 'जिन' के साथ 'तिन'[4] आदि।

अनिश्चयवाचक—

एक वचन	बहुवचन
'कोई', 'कोय'	(कोई)
'कोऊ', 'काहू', 'काहु'	
'कछु'	
'कछू'	

प्रतापरासो में प्रयोग-

'कोय'—न को 'कोय' सूझै भयो जुध भारी।[5]

जीते न 'कोय' न 'कोय' हारि।[6]

'काहू'—केते सेनापति संग हुकम 'काहू' यक दीजिय।[7]

'काहु'—'काहु' कही नृपराज सूं, अरज जुगल कर जोरि।[8]

'कोई'—स्याम-द्रोह आगै न 'कोई'।[9]

नृपति नरू साछात यसो नर करति न 'कोई'।[10]

'कोऊ'—जान न दूजो और 'कोऊ', पातिल सो रए सथ।[11]

है रे 'कोऊ' या वार यौ बैन बोले।[12]

'कछु'—जवर राव कु जाय है, रहे भंग 'कछु' होय।[13]

'कछू'—देस त्याग अब दीजिये, और न 'कछू' विचार।[14]

यहाँ 'कोई' ⁓ [कोय],[कोई],[कोऊ]; 'कुछ'[15] ⁓ [कछु],[कछू]।

आदरवाचक—शिष्ट भाषा में मध्यम पुरुष 'तू' या 'तुम' के स्थान पर प्रायः 'आप' व्यवहृत होता है। प्रतापरासोकार ने 'आप' का प्रयोग निजवाचक और आदरवाचक दोनों में किया है। जैसा ऊपर लिखा गया है—'आप' का आदर-

---

१. छं० सं० २७१। २. छं० सं० ३८४। ३. छं० सं० २९। ४. छं० सं० २९। ५. छं० सं० २३१। ६. छं० सं० २४६। ७. छं० सं० १०५। ८. छं० सं० ३९३। ९. छं० सं० ४७। १०. छं० सं० ४६१। ११. छं० सं० ८१। १२. छं० सं० ८५। १३. छं० सं० १७३। १४. छं० सं० ४८। १५. आधुनिक हिंदी।

वाचक सर्वनाम के रूप में प्रयोग, प्रायः, तभी होता है जब किसी अन्य द्वारा सम्बोधित किए जाने का प्रसंग उपस्थित होता है । कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं—

१. अरज दास की 'आप' लगि औगुण गुण निवारियै ।[1]
(अपादान कारक)

२. धारीस 'आप' कीजैसि चाव । चाहि 'आप' पै भूप नाय ।[2]
(अधिकरण कारक)

३. कीजेस 'आप' आवै सदाय ।[3]
(कर्त्ता कारक)

४. मंत्री बंधू वचन सुनाये । ते परवानि 'आप' मनि आये ।[4]
(संबंध कारक)

५. 'आप/क/' तुम्हरे तात सदा पायक वा घर के ।[5]
/क/अतिरिक्त ध्वनि का साभिप्राय योग ।

६. सुनिहोस 'आप' नृप जुध होत ।[6]

संबंधकारक के संयोग में 'रावरी' आदि शब्दों का प्रयोग भी हुआ है । 'रावरी'[7], 'रावरे'[8], 'रावरो'[9] आदि व्रजभाषा में प्रचलित हैं—

प्रतापरासो में निम्न प्रयोग हुए हैं—

'रावरी'[10] य अनमान सला सलाह करौ हम ।[10]
दोहु दलां बिचि 'रावरा', मंत्री चाढ़ै रंग ।[11]
तव प्रत पातिल 'रावरो', वणो तिलक वषतेस ।[12]

सर्वनाम संबंधी कुछ अन्य बातें—

१. कहीं-कहीं दोहरे सर्वनामों का प्रयोग हुआ है—
'को'+'कोय'—न 'को' 'कोय' सूझै भयो जुध भारी ।[13]

२. लिपि की अस्थिरता से बहुरूपता मिलती है। यह प्रवृत्ति संबंध कारक के रूपों में अधिक पाई जाती है। उदाहरण यथास्थान दिए गए हैं ।

---

१. छं० सं० ३८५ । २. छं० सं० ३८६ । ३. छं० सं० ३८९ । ४. छं० सं० २२२ । ५. छं० सं० ११२ । ६. छं० सं० १२१ । ७. छं० सं० २६३ । ८ 'रावरे दोष न पायन को ।' ९. 'बावरो रावरो नाह भवानी ।' १०. छं० सं० २६३ । ११. छं० सं० २३२ । १२. छं० सं० ४६२ । १३. छं० सं० २३१ ।

३. सर्वनामों के प्रयोग मूल, विकृत, विभक्ति सहित, विभक्ति रहित तथा बलात्मक रूपों में पाये जाते हैं। उदाहरण स्थान-स्थान पर दिए गए हैं।

४. कुछ ऐसे भी प्रयोग हैं, जो आज नहीं पाये जाते—
'तिन'[१], 'रावरी'[२], 'जिन'[३], 'मो'[४], 'कोऊ'[५], 'कोय'[६],
'ता'[७], 'कछु'[८], 'या'[९], 'का'[१०], 'क़ाहू'[११] आदि।

५. आधुनिक हिंदी के वियोगात्मक रूपों की अपेक्षा व्रजभाषा के संयोगात्मक रूप काफी हैं—
'जिन'[१२], 'तिन'[१३], 'ता'[१४], 'तमै'[१५],
'हमै'[१६], 'मो'[१७], 'काहु'[१८], 'यहै'[१९]।

६ राजस्थानी प्रभाव—'तम'[२०], 'कौए'[२१] आदि।

विशेषण

आधुनिक हिंदी के विशेषण, लिंग और वचन के द्वारा, कुछ परिस्थितियों में प्रभावित होते हैं, कुछ में नहीं। प्राचीन भारतीय आर्य-भाषाओं में लिंग, वचन और कारक के अनुसार विशेषण का रूप-परिवर्तन देखा जाता है। विशेषण-प्रयोग की यह पद्धति काफी समय से प्रचलित है। प्रतापरासो में विशेषण के रूप हिंदी की प्रचलित पद्धति पर पाये जाते हैं। विशेषण शब्दों के वर्गीकरण में आधुनिक हिंदी-व्याकरण को ही आधार मानकर प्रयुक्त शब्दों के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। विशेषण रूपों पर भी व्रजभाषा की ओकारांत प्रवृत्ति का प्रभाव दिखाई देता है। व्रजप्रदेश में ओकारांत प्रवृत्ति दो रूपों में देखी जाती है—ओकारान्त और औकारान्त। व्रजदेश में यदि डीग के आसपास एक सीमा बना लें, तो पश्चिम की ओर ओकारान्त तथा उसके पूर्व की ओर औकारान्त ध्वनियाँ सुनी जावेंगीं। अतः अलवर-राजगढ़ क्षेत्र में ओकारान्त प्रवृत्ति देखी जाती है। जयपुर में तो 'और' शब्द को भी बहुत बार 'ओर' सुना जाता है।

---

१. छं० सं० २११। २. छं० सं० २६३। ३. छं० सं० २९। ४. छं० सं० २९८। ५. छं० सं० ८५। ६ छं० सं० २३१। ७. छं० सं० २६८। ८ छं० सं० १७३। ९. छं० सं० ३१२। १० छं० सं० ३९५। ११. छं० सं० १०५। १२. छं० सं० ३४४। १३. छं० सं० ३३६। १४. छं० सं० १७८। १५. छं० सं० ९७। १६ छं० सं० ९७। १७. छं० सं० २९८। १८ छं० सं० ३९३। १९. छं० सं० ४७। २०. छं० सं० ४००। २१. छं० सं० २।

कुछ विशेषणों के ओकारान्त रूप देखिए—

(१) सिव 'चोथो' सिवब्रह्म, ठाम नीदरगढ़ दषिय ।[१]
(२) जान न 'दूजो' और कोऊ, पातिल सो रण सथ ।[२]
(३) वालो 'त्रियो' सुनाम, ठाम अमरसर दषिय ।[३]
(४) दयो पातलराव सों वैन 'नीको' ।[४]
(५) प्रथम षोहरा ठाम 'वीयो' पलवास नामचर ।[५]
(६) जानै जवाहर जो है 'नरूको' ।[६]
(७) इति अधपति 'अमावति वारो' ।[७]
(८) वति नवाव दिली दल 'भारो' ।[८]

ओकारान्त और औकारान्त में कहीं अभेद भी देखा जाता है। जैसे—'मनों'[९], 'मनौं'[१०]। प्रतापरासो की प्रमुख प्रवृत्ति ओकारान्त है।

विशेषणों का रूप-निर्माण कई पद्धतियों से हुआ है। यथा—संज्ञामूलक, सर्वनाममूलक, क्रियामूलक।

संज्ञामूलक—(i) 'आमैरी'[११], 'सोवनी'[१२], 'हिंदवानी'[१३], 'दिषणी'[१४], (ईकारान्त प्रयोग के द्वारा)

(ii) अन्य पद के योग से—

'तप+पूरण'[१५] (संज्ञा+विशेषण)
'किलो+वंघ'[१६] (संज्ञा+क्रिया)
'समर+वाज'[१७] (संज्ञा+विदेशी प्रत्यय)
'आमैरि+वारे'[१८] (सज्ञा+हिंदी प्रत्यय)
'विद्या+दाता'[१९] (संज्ञा+संज्ञा)

(iii) संबंध कारक के आधार पर—(संज्ञा+संज्ञा)

'नजीम'—'फौजें'+ ∽'नजीमफौजें'[२०]
'व्रज'—'देसा'+ ∽'व्रजदेसा'[२१]
'आदि'—'अजुध्या'+ ∽'आदि अजुध्या'[२२]

---

१. छं० सं० २२। २. छं० सं० ८१। ३. छं० सं० २२। ४. छं० सं० १४०। ५. छं० सं० १८०। ६. छं० सं० १३०। ७. छं० सं० २८९। ८. छं० सं० २८९। ९. छं० सं० १८७। १०. छं० सं० १८७। ११ छं० सं० १३८। १२. छं० सं० ६। १३. छं० सं० १४४। १४. छं० सं० ३२२। १५. छं० सं० ३२। १६. छं० सं० ३७। १७. छं० सं० ८१। १८. छं० सं० ९७। १९. छं० सं० १२। २०. छं० सं० ८४। २१. छं० सं० ८७। २२. छं० सं० ५।

'हरवल'—'हथै' + ~ 'हरवल हथै'[१]

'मंगल'—'दल' + ~ 'मंगलदल'[२]

(iv) विशेष अर्थ में—जैसे 'नर'[३] ~ 'वीर' के अर्थ में

'नर' अषमाल ईंद्र सुठाम ।[४]

'नर' नजबषान कीनौं चलन ।[५]

तापर बैठे नजब 'नर'[६], इंद्रपुरी सम ठाम ।

विशेषणमूलक—

(i) प्रत्यय लगाकर—'आधीन' + 'वांन' ~ 'आधीनवांन'[७]

(ii) संज्ञा के साथ—विशेषण + संज्ञा 'जव + मर्द' ~ 'जवमर्द'[८]

(iii) /स/नामक विशिष्ट प्रत्यय सहित—

'दाहिनी' + /स/ ~ 'दाहिनीस'[९]

'तुरकी' + /स/ ~ 'तुरकीस'[१०]

'सांची' + /स/ ~ 'सांचीस'[११]

'च्यारि' + /स/ ~ 'च्यारिस'[१२]

सर्वनाममूलक—

इसके अनेक उदाहरण हैं और सार्वनामिक विशेषण नाम से एक अलग प्रकार ही स्वीकृत किया गया है, जिसका वर्णन यथास्थान होगा।

क्रियामूलक—जैसे 'फुरमाई' + 'अवधि'

आई 'फुरमाई' अवधि तब रिष पूछे राम ।[१३]

अव्ययमूलक - जैसे 'जलद' + 'चलन'; 'उलटिवाटि' + 'चलन'

'जलद' चलन दिली दिस कीजै ।[१४]

'उलटिवाट' कीनो चलन लारे मंत्री लेर ।[१५]

इस स्थान पर विश्लेषण की दृष्टि से विशेषण के तीन प्रमुख प्रकार (हिन्दी-व्याकरण के अनुसार हो) स्वीकार किए जा रहे हैं—

१. सार्वनामिक (पुरुषवाचक आदि प्रकारों सहित)

२. गुणवाचक (कालवाचक, व्यक्तिवाचक, स्थानवाचक, आकारवाचक, रंगवाचक, दशावाचक, गुणवाचक आदि)

---

१. छं०सं० ९७ । २. छं०सं० २७९ । ३ छं०सं० २१८,२७८ । ४. छं०सं० २७८ । ५. छं०सं० २१८,९ । ६. छं० सं० २३४ । ७. छं० सं० ४६६ । ८ छं० स० २४३ । ९. छं० सं० १५२ । १०. छं०सं० ३७८ । ११. छं०सं० ४२१ । १२. छं० सं० ४३४ । १३. छं० सं० १४ । १४. छं० सं० ३४३ । १५. छं० सं० २७२ ।

३. संख्यावाचक (पूर्ण, अपूर्ण, अनिश्चित, क्रम, समुदाय, परिमाण आदि विशेषण)

सार्वनामिक विशेषण

(i) पुरुषवाचक—प्रथम—हुकमै 'हमारो' यही भांति दीज्यो।[१]
मध्यम—'रावरीय' अनमान सला सलाह करी हम।[२]
अन्य—किये 'तास' वनवास में, समै जुध सुत तात।[३]

(ii) निजवाचक—'आप'—राजाराव 'आप' दल आये।[४]
'अप' 'अपदल' कोक बुलाविये, रावराज परताप।[५]
तप बल 'अप' बल संग लै, गज हौदा सजि आप।[६]
'निज'—धरचौ चरन 'निज' ध्यान।[७]

(iii) निश्चयवाचक—'यह'—परताप राव 'यह' सला धारि।[८]
'या'—रिषि बोले विधि 'या' विधि बोधो।[९]
'वा'—'वा' घर या घर एक ही, आनो नजब नबाब।[१०]
पहुँचे सु जाय 'वा' नृपति ठाम।[११]
'ते'—'ते' जबाब नबाब बंचि।[१२]

इनके बलात्मक प्रयोग भी—
'याही'—नवाब 'याही' सला।[१३] 'या'+'ही'
'वाही'—वीर 'वाही' दलै।[१४] 'वा'+'ही'
'ताही'—जो अवाज नर नजब पै, पौंची 'ताही' बार।[१५]

(iv) संबंधवाचक—'ज'—'ज' दिन न्याय नोबति बजी, उपजे पातिलराव।[१६]
'जो' ~ 'ज'
'जो'—'जो' विद्या जितनी पढ़ी, बालमीक गुरु कीन।[१७]
'जो' अवाज पातिल सुन कानन।[१८]

(v) अनिश्चयवाचक—'को'—'को' भूप उतरे आय।[१९]
'को' नृप रखे तापै रहै। नाहि चले दिली दिस जहै।[२०]

---

१. छं० सं० १३८। २. छं० सं० २६३। ३. छं० सं० २७। ४. छं० सं० २९४।
५. छं० सं० २९०। ६. छं० सं० ४१५। ७ छं० सं० ४५८। ८. छं० सं०
३६६, ४९ भी। ९. छं० सं० १५। १०. छं० सं० २४३। ११. छं० सं० १५२।
१२. छं० सं० ३२५। १३. छं० सं० ३१२। १४. छं० सं० ३१२। १५. छं०
सं० २५६। १६. छं० स० ३। १७. छं० सं० १३। १८. छं० सं० २३७।
१९. छं० सं० ७०। २०. छं० सं० ७२।

(vi) नित्य संबंधी—

'सो'—पातिलराव सुनी 'सो' बातें।[१]
होय धरा 'सो' बात।[२]
'सोइ'—सीसोद हाड़ा 'सोइ'। उमर षीची जोय।[३]
'सोही'—तमै देखनों ठाम 'सोही' विचारे।[४]

'वही'—आधुनिक हिंदी का यह रूप [सोइ], [सोअ], [सोही]—/ही/ ~ [इ], [य], [ही] आदि में देखा जाता है।

गुणवाचक विशेषण

कालवाचक—'छिनक'—लई न 'छिनक' अवार।[५]
'तत'—'तत' काल कूच बजाय।[६]
'जलद'—'जलद' चलन दिली दिस कीजे।[७]

संज्ञामूलक (व्यक्तिवाचक तथा जातिवाचक+प्रत्यय)
'आमैरिवारे'—हमें जानियो बंधु 'आमैरिवारे'।[८]
'गर्भवंति' – 'गर्भवंति' सीता संग होई।[९]
'दषिनी'—'दषिनी' हरोल आगैस षंम।[१०]
'देषणी'—अरु 'देषणी' दल संग।[११]
'सोवनी'—बकसेस लंक 'सोवनी' कोट।[१२]
'विद्यादाता'—बालमीक गुरु 'विद्यादाता'।[१३]
'समरवाज'—'समरवाज' सूजै कही, देषे हलवर हथ।[१४]
'नरूवारे'—नरपत 'नरूवारे' ठाठ।[१५]
'हिंदवानी'—'हिंदवानी' हद रषना, तुरकानी सिरताज।[१६]

'वारे', 'वंति', 'ई', 'बाज़', 'वानी' आदि प्रत्ययों से बने विशेषण पद जातिवाचक अथवा व्यक्तिवाचक संज्ञा पदों पर आधारित हैं। अन्य पद के योग से भी संज्ञा पद विशेषण का कार्य करते हैं : इन पदों के बीच संबंधकारक महत्त्वपूर्ण कार्य करता प्रतीत होता है।

---

१. छं० सं० ३५०। २. छं० सं० ४०। ३. छं० सं० १२६। ४. छं० सं० ६७।
५. छं० सं० ५। ६. छं० सं० ७०। ७ छं० सं० ३४३। ८. छं० सं० ६७।
९. छं० सं० ८। १०. छं०सं० २४६। ११. छं०सं० ३१८। १२ छं० सं० ६।
१३. छं० सं० १२। १४. छं० सं० ८१। १५. छं० स० २७८। १६ छं० सं० १४४।

'राम'+'दल' →	पीछे मिलिये 'राम' दल।[१]
'कुल'+'मंडण'+'कलियान' →	'कुल मंडण' कलियान।[२]
'आमेरि'+'धणी'+'माधव' } 'रघुवंस'+'पति'+'माधव' } →	'आमेरधणी' 'रघुवंसपति', भुज पूजत माधव नृपति।[३]
'किलो'+'बंध'+ठामैं →	वतैं देषियो तो 'किलो वंध' ठामैं।[४]
'मंगल'+'दल' →	'मंगल' दल आवन कियो।[५]
'सूजा'+'सूत'+'जौहार' →	'सूजासुत' जौहार जग, गाढे जोर जरूर।[६]
'गंग'+'न्हान' →	सजि राजसिंह किय 'गंग' न्हान।[७]
'पछ्छिम'+'दिसि' →	चढि 'पछ्छिम' दिसि धाय।[८]
'आदि'+'थांन' →	'आदि' थांन आमैंरगढ़ विकट ठाम घर घर दिये।[९]
'नजीम'+'फौजैं' →	सुनि 'नजीम' फौजै चढ़ आई।[१०]

यहाँ संज्ञा पद अपने स्वतंत्र रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं—किन्हीं प्रत्यय आदि का योग नहीं है।

स्थानवाचक —'ऊँचे'—जल षाई 'ऊँचे' किला, तोवै इंद्र अवाज।[११]
'दाहिनी' बंधु जानि आसन दिये, लिये 'दाहिनी' ठांम।[१२]
भुजा 'दाहिनी' भूप की, बैसत पातल राव।[१३]

आकारवाचक—'गोल'—बहै 'गोल' गोला तुपकै सु अछ्छी।[१४]
'चोकोर'—भले भलेस 'चोकोर' चालि।[१५]
'बंके' 'बंके' किला विकट सुठांम।[१६]

रंगवाचक —'कारी'—मनो वास रंग की भई भूमि 'कारी'।[१७]
'पचरंग' फहरैं निसान 'पचरंग' रंग।[१८]
लै फौजे 'पचरंग' संगि लडि लेह राव घर।[१९]

दशावाचक —'ताजी'—'ताजी' वाजी वरत तेज तुरकी ज षदारिय।[२०]
'तेज'—'तेज' तुरकी ज षदारिय।[२०]

---

१. छं० सं० १७। २. छं० सं० २५। ३. छं० सं० ३३। ४. छं० सं० ३७। ५. छं० सं० ३७१। ६. छं० सं० ८१। ७. छं० सं० ११०। ८. छं० सं० १२४। ९. छं०सं० ३१४। १०. छं०सं० ८४। ११. छं०सं० ३५३। १२. छं०सं० १००। १३. छं०सं० ४५। १४. छं०सं० ८५। १५. छं०सं० २८३। १६. छं० सं० २१०। १७. छं० सं० ३८२। १८. छं० सं० ६४। १९ छं० सं० ३७५। २०. छं० सं० १५५।

गुणवाचक ‘अछी’—बहै गोल गोला तुपकं स ‘अछी’ ।[१]
‘नेक’—बोले दलेल करि काम ‘नेक’ ।[२]
‘नीको’—दयो पातलंराव सो वैन ‘नीको’ ।[३]
‘बड़ी’—पड़ावी ‘वड़ी’ बीवियां यो विलखै ।[४]
‘षास’—तिन लिषिये षत ‘षास’ कोकि ये नजब तास वर ।[५]
‘प्रवल’—इत चलिये पातिल ‘प्रवल’ ।[६]
‘भोले’—कहे वचन मंत्री तुम ‘भोले’ ।[७]

गुणवाचक विशेषणों की संख्या काफी बड़ी है । यथा—

‘अछिय’[८], ‘कायर’[९], ‘कची’[१०], ‘गाढ़े’[११], ‘चक्कवै’[१२], ‘चौड़े’[१३], ‘जवर’[१४], ‘ज्याढो’[१५], ‘जड़’[१६], ‘ठठ’[१७], ‘दलेल’[१८], ‘भ्रु’,[१९] ‘परवीन’[२०], ‘भलेस’[२१] ‘सोहंता’[२२], ‘पूर’[२३], ‘लघु’[२४], ‘भरपूर’[२५], ‘अगम’[२६], ‘अपार’[२७], ‘महा’[२८], ‘लार’[२९], ‘सारे’[३०], ‘वीरट’[३१], ‘सुघर’[३२], ‘वहादर’[३३], ‘बली’[३४], ‘राजसी’[३५], ‘वड़’[३६], ‘सलौन’[३७], ‘सबल’[३८], ‘सकला’[३९], ‘समरथ’[४०], ‘सारीष’[४१], ‘सुभ’[४२], ‘परम’[४३], ‘विमल’[४४], ‘निपुन’[४५], ‘वर’[४६], ‘लायक’[४७], ‘कम’[४८], ‘जटत’[४९], ‘सुध’[५०], ‘छबीले’[५१], ‘छरे’[५२],..........

बहुत-से विशेषण [सु] के योग से बने हैं—

[सु]+........प्रायः संज्ञा पद—‘सुभर’[५३], ‘सुबंध’[५४], ‘सुठाम’[५५], ‘सुभाय’[५६], ‘सुगढ़’[५७], ‘सुरंग’[५८] ।

---

१. छं० सं० ८५ । २. छं० सं० १२१ । ३. छं० सं० १४० । ४. छं० सं० २६१ । ५. छं० सं० ३२५ । ६. छं० सं० ९९ । ७. छं० सं० ३३८ । ८. छं० सं० १२३ । ९. छं० सं० १३१ । १०. छं० सं० ३०६ । ११. छं० सं० ८९ । १२. छं० सं० ४५७ । १३. छं० सं० २३९ । १४. छं० सं० १६० । १५. छं० सं० १८० । १६. छं० स० २१२ । १७. छं० सं० ३२१ । १८. छं० सं० १०३ । १९. छं० सं० ४६१ । २०. छं० स० ४६७ । २१. छं० सं० २८३ । २२. छं० सं० ४६५ । २३. छं० सं० ४६६ । २४ छं० सं० ४६६ । २५. छं० सं० ४६६ । २६. छं० सं० २ । २७. छं० सं० २ । २८. छं० सं० ९ । २९. छं० सं० ५१ । ३०. छं० सं० ५१ । ३१. छं० सं० १२८ । ३२ छं० सं० ४२ । ३३. छं० सं० २०३ । ३४. छं० सं० ८५ । ३५. छं० सं० १३८ । ३६. छं० सं० १५५ । ३७. छं० सं० १२१ । ३८. छं० सं० २६ । ३९. छं० सं० २७ । ४०. छं० सं० १६३ । ४१. छं० सं० २०१ । ४२. छं० सं० १ । ४३. छं० सं० २ । ४४. छं० सं० २ । ४५. छं० सं० ९३ । ४६. छं० सं० १२८ । ४७ छं० सं० २५१ । ४८. छं० सं० ४६६ । ४९. छं० सं० ४३१ । ५०. छं० सं० १५९ । ५१. छं० सं० २८४ । ५२. छं० सं० २८४ । ५३. छं० सं० १२७ । ५४. छं० सं० १०३ । ५५. छं०सं० ११० । ५६. छं०सं० ११४ । ५७. छं० सं० ७८ । ५८. छं० सं० ६४ ।

संख्यावाचक विशेषण

पूर्ण संख्यावाचक—'ग्रक', 'यक', 'येक'—'ग्रक' हुकम साहि को कीजिये ।[1]
बार 'यक' हमै मिलेयत ।[2]
समय 'येक' ब्रजराज साज सब सेन सुभर भर ।[3]
'दो'—मुकाम 'दो' मभ्क कीन ।[4]
'तीन'—कोस 'तीन' दल नजब के कहित ककरा नाम ।[5]
'च्यार'—दोय परा दिस 'च्यार' रौ जानै ।[6]
'पंच'—ते तासं पुत्रस 'पंच' ।[7]
'पचीस'—ग्राय भूप दल दीघ सूं, रह घटि कोस 'पचीस' ।[8]
'वतीस'—ग्रठारैसै 'वतीस' साष संवत परवानन ।[9]
'पैंतीस'—ग्रठारैसै 'पैंतीस' मांहि नजव से दायक ।[10]
'छत्रीस'—मंत्री ते हरसाहि दलो 'छत्रीस' तास वर ।[11]
'सैंतीस'—ग्रठारैसै 'सैंतीस' साष संवत् सो ह्वैयत ।[12]
'साठ'—संग सहस 'साठ' दल लीन तूल ।[13]
'ग्रसी'—'ग्रसी' सहस नर बाज सजि ।[14]
'सहस'—सजि 'सहस' बीस नर बाजि जोर ।[15]
'लष'—पारसि सो परवार लार त्रिय 'लष' सेन लिय ।[16]
'पदम'—दस ग्राठ 'पदम' पति सेन लार ।[17]

ग्रादि-ग्रादि..........। इस प्रकार के योग भी ग्राते हैं—

१८='दस'+'ग्राठ'—'दस ग्राठ' पदम पति सेन लार ।[18]

३६='षट'+'तीस'—समे 'षटतीस' तर्णेस प्रमाण ।[19]

सामान्यतः पूर्ण संख्यावाचक विशेषण ग्राधुनिक हिंदी के ग्रनुसार ही मिलते हैं। कहीं-कहीं लिखने में कुछ ग्रंतर है—'च्यारि'[20], 'दोइ'[21], 'सपत'[22] ग्रादि।

---

१. छं० सं० ३२५। २. छं० सं० २७६। ३. छं० सं० ८२। ४. छं० सं० ७०। ५. छं० सं० २८८। ६ छं० सं० ३९६। ७. छं० सं० २९। ८ छं० सं० १३४। ९. छं० सं० २१६। १० छं० सं० २७३। ११. छं० सं० ३५। १२. छं० सं० ४। १३. छं० सं० ३४०। १४. छं० सं० १२३। १५. छं० सं० २८३। १६ छं० सं० ८८। १७. छं० सं० ६। १८ छं० सं० ६। १९. छं० सं० ३१५। २०. छं० सं० ३१४। २१. छं० सं० ४१। २२. छं० सं० ४५९।

कुछ तत्सम शब्दों का प्रयोग भी हुआ है—

'द्वादश'[१], 'पंच'[२], 'षट' ।[३]

इसी प्रकार क्रमवाचक में भी—

'प्रथम'[४], 'त्रतिय'[५], 'पंचम' ।[६]

अपूर्ण संख्यावाचक—

इस प्रकार के संख्यावाचक शब्द अधिक नहीं हैं। एक शब्द 'अरध' आता है, जो 'अरधंगा' शब्द का अंश है—

उर अनंद वीकावत राणी। सपत जनम 'अरधंगा' जाणी ।[७]

'अरध'+'अंगा'

क्रमवाचक—

'प्रथम'—'प्रथम' पुत्र नरसिंह नृप आमैरि वषानिय ।[८]

'परथम'—कर मुकाम 'परथम' दिवस, किये राज दरबार ।[९]

'पहले'—'पहले' पिलै सो पताराव सथै ।[१०]

'प्रथमीस'—'प्रथमीस' जाय कीने मुकाम ।[११]

'पहल'—'पहल' मुकाम किये लछमनगढ़ ।[१२]

'वियौ'—'वियौ' निरवाणस उदैल नाम ।[१३]

'वीयो'—प्रथम षोहरा ठाम 'वीयो' पलवास नाम चर ।[१४]

'विये'—प्रथम नगारे बाज सज, 'विये' सस्त्र कसि सूर ।[१५]

'वियो'—सारीष 'वियो' सरदार चाव ।[१६]

'वीजोस'—'वीजोस' कौन जारैस हाथ ।[१७]

'वीजे'—जाने हम 'वीजे' सो षोलै ।[१८]

'दूजो'—येक न 'दूजो' होयसी, यो माधव सुनी नरेस ।[१९]

'दूजैस'—'दूजैस' षोहरी कहत नाम ।[२०]

'दूजा'—बंधु कहे ते बंधु ही, और न 'दूजा' जानिये ।[२१]

'दूजै'—'दूजै' रामसेवग कहै, मंत्री मोजीराम ।[२२]

---

१. छं० सं० १४। २. छं० सं० २९। ३. छं० सं० ३१५। ४. छं० सं० ६३।
५. छं० सं० २९। ६. छं० सं० ६२। ७. छं० सं० ४५९। ८. छं० सं० २२।
९. छं० सं० ५०। १०. छं० सं० १३०। ११. छं० सं० २८३। १२. छं० सं० २८४।
१३. छं० सं० ३१५। १४. छं०सं० १८०। १५. छं० सं० ६३। १६. छं० सं० १०३।
१७. छं०सं० १९८। १८. छं०सं० ४१३। १९ छं०सं० ४६। २०. छं०सं० ११०।
२१. छं० सं० २२०। २२. छं० सं० १७९।

'दुजै'—'दुजै' संग लै सिवसाहि।[1]

'दुजा'—भूप पूजी भुजा। जानियो नै 'दुजा'।[2]

'दूजेस'—'दूजेस' ईसरीसिंह पाट।[3]

'त्रियो'—वालो 'त्रियो' सुनाम ठाम अमरसर अषिय।[4]

'त्रतीयेस'—'त्रतीयेस' ईसरसिंह। पलवास घर पै धींग।[5]

'तीजैस'—'तीजैस' स्याम के पाट सोथ।[6]

'तीजे'—'तीजे' दल नर नजब के, भनि वांबोली ठांम।[7]

'तीसरै'—वषतेस रावराजा वली तषत 'तीसरै' त्रपत नर।[8]

'तीजै'—'तीजै' ज्याढो प्रछति पेषवाई सव चथै।[9]

'चौथे'—चौथे' सुरीपट स्याम। पेषियै पाडै ठाम।[10]

'चोथो'—सिव 'चोथो' सिवब्रह्म ठाम नीदरगढ दषिय।[11]

'चथै'—तीजै ज्याढो प्रछति पेषवाई सव 'चथै'।[12]

'पंचम'—'पंचम' कहिये पाटपति, पातल कूच बजाय।[13]

'पचमै'—'पचमै' येस काका सु आन।[14]

'पाचमै'—'पाचमै' सोधरस जाए। पाई प्रतछ वषाएि।[15]

'पंचवे'—'पंचवे' राज लिये राज पातिलपति सथै।[16]

समुदायवाचक—

'दुहू'—दल 'दुहू' वोर वजैस सार।[17]

'दुहु'—'दुहु' भुजा बल देषियत, मंत्री बंधु समाज।[18]

'दुहुं'—बिसषेत दल 'दुहुं' ओर जंग।[19]

'दोउ'—पड़े सोस पै सीस दल 'दोउ' जाके।[20]

'दोई'—कंवर नाम मंगलेस इंद्रेस 'दोई'।[21]

'दोइ'—मिले सार दल 'दोइ' अकारे।[22]

'दोय'—दिसि 'दोय' दीठि होती सलाम।[23]

'दोऊ'—जोए घर नर 'दोऊ' होये, घरनायक घर आव।[24]

---

१. छं० सं० २५३। २. छं० सं० ८०। ३ छं० सं० १८१। ४. छं० सं० २२।
५. छं० सं० २१। ६. छं० सं० १८१। ७ छं० सं० ३३२। ८ छं० सं० ४६३।
९. छं०सं० १८०। १०. छं०सं० २६। ११ छं०सं० २२। १२. छं०सं० १८०।
१३. छं०सं० ६२। १४. छं०सं० १८१। १५. छं०सं० २६। १६. छं० सं० १८०।
१७. छं० सं० २४६। १८. छं०सं० २७७। १९ छं० सं० ३४०। २०. छं० सं० ८५।
२१. छं०सं० १३०। २२. छं०सं० ४१। २३. छं०सं० ६४। २४. छं०सं० २१७।

'अहु'—'अहु' दलन दे षवर नजब चढ़िये सकुत चक्कि।[1]

'अहू'—ता सुन 'अहू' सुनत हि आये।[2]

'अहुं'—तजि दिली चलिये 'अहुं', दोल षुस्याल रु नंद।[3]

'चत्र'—'चत्र' ठाम के बंधु कोकि लीनेस तास वर।[4]

'च्यार रौ'—दोय परा दिस 'च्यार रौ' जानें।[5]

'चहुं'—तातकाल सुष सिर तिलक, सुन्यो होत 'चहुं' फेर।[6]

'चहु'—चलि आवत भीर 'चहु' दिस की।[7]

'पंचों'—लरे लोह 'पंचों' कमानों सहथै।[8]

'आठौं'—मैं सिष हौ तुम चरन कों, 'आठौं' जाम अधीन।[9]

'दसौं'—कीनों विहंड सों 'दसौं' सीस।[10]

'दसहौं'—भये तास पजवन सुत, 'दसहौं' दिसि भूपति बलन।[11]

अनिश्चित संख्यावाचक—

'लषन'—यहै पाट रघुनाथ को, पाट 'लषन' दल लार।[12]

'लाषन'—दिली नवाब 'लाषन' लषत, गये मोरण निज ठांम।[13]

'कीतेक'—कीने 'कीतेक' मजिलै मुकाम।[14]

साथ ही 'कितो[15], 'केते'[16], किती'[17], किते'[18], 'किति'।[19]

परिमाणबोधक विशेषण—

'समुच—दीजिये फौज संगै 'समुच'।[20]

'सारी'—धाप गई फौजे धकि 'सारी'।[21]

'समूंच'—कीनों मुकाम फौजै 'समूंच'।[22]

'अति'—'अति' महिमा मनहारस कीनी।[23]

'सब'—वाईस भुजा 'सब' सेन साथ।[24]

'छड़ी'—'छड़ी' सैन लै सहज सुधाये।[25]

---

१. छं०सं० ३०५। २. छं०सं० १७८। ३. छं०सं० ३४६। ४. छं०सं० १८०। ५. छं०सं० ३९६। ६. छं० सं० १४७। ७. छं० सं० २१५। ८. छं० सं० १८७। ९. छं० सं० ४६७। १०. छं०सं० ६। ११. छं०सं० १९। १२. छं० सं० १०२। १३. छं० सं० २९२। १४. छं० सं० १५२। १५. छं० सं० १०२। १६. छं० सं० १०५। १७. छं० सं० १२१। १८. छं० सं० २५६। १९ छं० सं० २७९। २०. छं० सं० १७६। २१. छं० सं० १९१। २२ छं० सं० ३२७। २३ छं० सं० ७६। २४. छं० सं० ६४। २५. छं० सं० ८४।

'घनी—'घनी' वाय वागात तरु ताल जागा ।[1]
'घणे'—अति सुन्दर मंदिर मध्य 'घणे ।[2]
'घण'—हद नोवति नद वजि, गजि डंका त्रमाट 'घण' ।[3]
'वेहद'—भटन लिये 'वेहद' दलन, मोरधर पति की ठाम ।[4]
'भारी'—मास दोय कीनी रण 'भारी' ।[5]
'सारी'—धाप गई धकि फौजै 'सारी' ।[6]
'वहो'—हके नवाब हिंदू धरा लेन काज भर 'वहो' बलन ।[7]
'भारीय'— बंधु भेजिये ता गढ़ 'भारीय' ।[8]
'घने'—'घने बाज गजराज दिय, संगि मीरन सिरपाव ।[9]
'सालिम'—चत्र ठाम के बंधु सब, 'सालिम' उतरे आय ।[10]
'सकला'—थरु थटिये 'सकला' कमठाण ।[11]
'सबै'—रानि 'सबै' उमराव सव, चढि आये करि चाव ।[12]
'सवा'—रावराज के गढ यते सो 'सवा' सिरै राजगढ़ ।[13]

परिमाणबोधक विशेषणों में प्राय: 'सम्पूर्ण' अथवा 'अधिक' के पर्यायवाची हैं। 'सम्पूर्ण' ~ 'समुच', 'सारी', 'समूंच', 'सब', 'सारी', 'सालिम', 'सबै', 'सवा'।
'अधिक' ~ 'अति', 'घनी', 'घणी', 'घणे', 'घण', 'भारी', 'भारीय', 'घने', 'वहो', 'वेहद', 'वहोत'।

कुछ टिप्पणियाँ—

(१) विशेष्य के उपरान्त विशेषण का प्रयोग—

(i) हुकमै [हमारो] यही भांति दीज्यो ।[14]
(ii) सीसोद हाड़ा [सोइ] उमर षीची जोय ।[15]
(iii) नरपत [नरूवारे] ठाठ ।[16]
(iv) फहरै निसान [पचरंग] रंग ।[17]
(v) तिन लिषिये षत [षास] ।[18]
(vi) कहे वचन मंत्री तुम [भोले] ।[19]

१. छं० सं० १४० । २. छं० सं० २१५ । ३. छं० सं० ३५८ । ४. छं० सं० १०८ । ५. छं० सं० १९१ । ६. छं० सं० १९१ । ७. छं० सं० २३५ । ८. छं० सं० २५० । ९. छं० सं० २९७ । १०. छं०सं० ६२ । ११. छं०सं० २७ । १२. छं० सं० १५७ । १३. छं० सं० २१२ । १४. छं० सं० १३८ । १५. छं० सं० १२६ । १६. छं० सं० २७८ । १७. छं० सं० ६४ । १८. छं० सं० ३२५ । १९. छं० सं०

(२) विशेषणों की अनेक रूपता। यह प्रवृत्ति संख्यावाचक विशेषणों में और भी अधिक है—

'एक' ~ 'अक'[१], 'यक'[२], 'येक'[३], 'एक'[४]

/ए/ ~ [अ], [य], [ये], [ए]

'दूसरा' ~ 'वियौ'[५], 'वीयो'[६], 'विये'[७], 'वियो'[८], 'वीजो'[९], 'वीजोस'[१०], 'दूजो'[११], 'दूजैस'[१२], 'दूजा'[१३], 'दूजै'[१४], 'दुजै'[१५], 'दुजा'[१६], 'दुजैस'[१७]

'चार' ~ 'च्यार'[१८], 'च्यारिस'[१९], 'च्यारि'[२०], 'चार'[२१], 'चत्र'[२२]

'घने' ~ 'घरण'[२३], 'घरणे'[२४], 'घरणौं'[२५], 'घने'[२६], 'घन'[२७], 'घरण'[२८]

(३) विशेषणों की डिगरियाँ (अवस्थाएँ) नहीं मिलतीं। केवल एक उदाहरण मिलता है। 'वुधितम'[२९]।

(४) विशेषणों के ओकारान्त रूप मिलते हैं। उदाहरण यथास्थान दिए गए हैं। कहीं-कहीं औकारान्त भी—

'वियौ'[३०]

(५) कुछ विशेषणों के वहुवचन भी हैं—

'सव' ~ 'सवा'[३१]

'लष' ~ 'लषन'[३२], 'लाषन'[३३]

'चोकोर' ~ 'चोकोरन'[३४]

(६) संज्ञा शब्दों का प्रयोग भी विशेषणवत् हुआ है। ये पद कभी दो प्रकार के पदों से बनते हैं, कभी कुछ प्रत्ययों के द्वारा और कभी सम्बन्ध कारक के आधार पर।

---

१. छं० सं० ३२५। २. छं० सं० २७६। ३. छं० सं० १२१। ४. छं० सं० १३१। ५. छं० सं० ३१५। ६. छं० सं० १८०। ७. छं० सं० ६३। ८. छं० सं० १०३। ९ छं० सं० १९८। १०. छं०सं० ४१३। ११. छं०सं० ४६। १२. छं०सं० ११०। १३. छं० सं० २२०। १४. छं० सं० १७९। १५. छं० सं० २५३। १६. छं०सं० ८०। १७. छं० सं० १८१। १८. छं० सं० ३९६। १९. छं० सं० ४३४। २०. छं० सं० ३१४। २१. छं० सं० १८५। २२. छं० सं० २१। २३. छं० सं० ३५८। २४ छं० सं० ३३५। २५. छं० सं० २७। २६. छं० सं० २९७। २७. छं० सं० ३१४। २८. छं० सं० ३५८। २९. छं० सं० २। ३०. छं० सं० ३१५। ३१. छं० सं० २१२। ३२. छं० सं० १०२। ३३. छं० सं० २९२। ३४. छं० सं० १४२।

(७) कहीं-कहीं विशेषरण पदों को संज्ञा के रूप में भी प्रयुक्त किया गया है—

'लघु' 'दीरघ' नही लहे, चले सो कहो निगम गम ।[१]

कर कर 'कायर' रोम सुकंपि ।[२]

कै होत एक 'चौड़े' चपेट ।[३]

(८) राजस्थानी प्रभाव भी लक्षित होता है—

'घरण'[४], [घरणे][५], [घरणैं][६], 'ज्याढो'[७], 'षदारी'[८], 'च्यार रौ'[९], 'धरणी'[१०], 'वियौ'[११], 'बहादर'[१२]—ख०बो० 'घने', '×', 'कंदहारी', 'चारों', 'धनी', 'दूसरा', 'बहादुर' ।

(९) विशेषरण पद संज्ञा पद के लिंग से भी यदाकदा प्रभावित होता है—

'किते' कोट अटके कटक ।[१३] पुल्लिग

'किती' सेन दीठी निकट है ।[१४] स्त्रीलिंग

(१०) 'हजार' के लिए सर्वत्र 'सहस' शब्द का प्रयोग हुआ है । 'असी सहस'[१५], 'चालीस सहस'[१६], 'सहसि साठ'[१७], 'सहस साठ'[१८], 'सहस बीस'[१९] 'सहस' ~ [सहस], [सहसि]

(११) गुजराती सान्निध्य—

'दूजो' ~ 'वियो'[२०], 'वियेे'[२१]

(१२) /स/ का योग—

'दूजे+/स/'[२२], 'त्रतीये+/स/'[२३], 'प्रथमी+/स/'[२४], 'तीजै+/स/'[२५], 'भारी+/स/'[२६]

क्रिया

'प्रताप-रासो' के क्रिया-पद अपनी विशेषताएँ रखते हैं। इनमें से कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

१. प्राचीन, मध्यकालीन और अर्वाचीन भारतीय आर्य भाषाओं के देखने पर पता लगता है कि आधुनिक खड़ी बोली हिन्दी के क्रिया-पद वियोगात्मक हैं—

---

१. छं० सं० ४६६ । २. छं० सं० १३१ । ३. छं० सं० २३९ । ४. छं०सं० ३५८ ।
५. छं० सं० ३३५ । ६ छं० सं० २७ । ७. छं० सं० १८० । ८. छं० सं० १८७ ।
९. छं०सं० ३९६ । १०. छं०सं० ३३ । ११. छं०सं० ३१५ । १२. छं०सं० २०३ ।
१३. छं० सं० ७९ । १४. छं० सं० ३१४ । १५. छं० सं० १२३ । १६. छं० सं०
१७६ । १७. छं० सं० ३४० । १८ छं० सं० ३४० । १९. छं० सं० २८३ ।
२०. छं० सं० ३१५ । २१. छं० सं० ६३ । २२. छं० सं० १८१ । २३. छं० सं०
२९ । २४. छं० सं० २८३ । २५. छं० सं० १८१ । २६. छं० सं० १३८ ।

मूल क्रियाओं के अतिरिक्त सहायक क्रियाएँ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती हैं। 'है', 'था', 'गा' के अनेक रूप प्राप्त होते हैं। यथा—

'है' ↳ [है] ए० व०, [हैं] ब० व०, [हो] म० पु०, [हूँ] उत्तम पुरुष, [हों] स०

'था' ↳ [था] ए० व०, [थे] ब० व०, [थी] स्त्री० लि०, [थीं] स्त्री० ब० व०

'गा' ↳ गा] ए० व०, [गे] ब० व०, [गी] स्त्री० लि०

कहीं-कहीं 'है' तथा 'गा' का योग भी मिलता है।

'होगा/गो'='हो'+'गा'/'हो'+'गो'

'होंगे/गी'='हों'+'गे'/'हों'+'गी'

(कभी-कभी अहिन्दी भाषी 'होंगा' भी बना लेते हैं)

प्रताप-रासो में वियुक्तावस्था अपेक्षाकृत कम है और क्रियाओं के संयुक्त रूप अधिक देखने को मिलते हैं।

२. सर्वनाम, कारक और क्रिया के रूपों से किसी बोली या भाषा-विशेष का निर्णय करने में बहुत सहायता मिलती है। इस पुस्तक में प्रयुक्त क्रिया-रूपों को देखने से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि पुस्तक की भाषा 'ब्रजभाषा' है। ऐसा प्रतीत होता है कि क्रिया-पदों पर राजस्थानी प्रभाव अधिक नहीं पड़ा है। ब्रजभाषा का प्रभाव देखिए—

वर्तमान—'करों'[१], 'लहों'[२], 'सोधो'[३], 'छानो'[४]

भूत—'लीनौं'[५], 'कीनौं'[६], 'हन्यो'[७], 'दीनो'[८]

भविष्य—'पकरैंगो'[९], 'पायगो'[१०], 'जायगो'[११]

राजस्थानी—'होयसी'[१२], 'रहसी'[१३]

खड़ी बोली—'रखै'[१४], 'दीजिये'[१५], 'चढ़ आई'[१६]

३. क्रियाओं की वियुक्तावस्था भविष्य काल के रूपों में अधिक दिखाई देती है—

√'पकड़ना' ↳ भवि० '/पकरै/+/गो/' ↳ 'पकरैंगो'[१७]

√'जाना' ↳ भवि० '/जै/+/हौं/ ↳ 'जैहों'[१८]

---

१. छं० सं० २। २. छं० सं० २। ३. छं० सं० १५। ४. छं० सं० ५२।
५. छं० सं० ३५। ६. छं० सं० ३५। ७. छं० सं० ७। ८. छं० सं० ७८।
९. छं०सं० १५। १०. छं०सं० ११२। ११. छं० सं० ११२। १२. छं०सं० ४६।
१३. छं०सं० ४६१। १४. छं०सं० २६१। १५. छं०सं० १७६। १६. छं०सं० ८४।
१७. छं० सं० १५। १८. छं० सं० ११०।

√'पाना' ∽ भवि० '/पाय/+/गो/' ∽ 'पायगो'[१]

√'जाना' ∽ भवि० '/जाय/+/गो/' ∽ 'जायगो'[२]

राजस्थानी भी—जैसा 'होयसी'[३] < 'होना+/सी/'; 'रहसी'[४] < 'रहना+/सी/' से विदित होता है।

४. कुछ ऐसे क्रिया-पद भी हैं, जो खड़ी बोली में नहीं मिलते, पर जो व्रजभाषी प्रान्त में आज भी पाये जाते हैं। जैसे—

√'बतराना' ∽ 'बतलाना' = 'बातें करना' < संज्ञा+क्रिया

√'बतराना' ∽ भूतकाल—'बतराये'[५]

√'बतलाना' ∽ भूतकाल—'बतलाये'[६]

/र/ और /ल/ का पारस्परिक परिवर्तन व्रजभाषा में एक विशेषता है ही। इसी प्रकार—

'थक√जाना' ∽ 'थाकियो'[७] भूतकाल

'धारण√करना' ∽ 'धारियो'[८] भूतकाल

५. इस पुस्तक में क्रियाओं से व्याकरणात्मक रूपों की अधिकता तो नहीं मिलती, पद्धति भी कुछ सरल मालूम होती है, परन्तु समानार्थी पदों के विविध रूप प्राप्त होते हैं, जिनसे इस बात का पता सहज ही लगता है कि भाषा में रूपों का स्थिरीकरण नहीं हो पाया है। उदाहरण—

खड़ी बोली 'दिया' ब्र० भा० 'दीन'[९], 'दीनो'[१०], 'दिय'[११], 'दीनों'[१२]

" 'किया' " 'कीन'[१३], 'कीनौ'[१४], 'कीनौं'[१५], 'कियो'[१६]

'कीयो'[१७], 'कीनों'[१८], 'किय'[१९]

दूसरा एक कारण छंद-निर्माण की आवश्यकता भी हो सकती है।

६. क्रिया-पदों में लिंग और वचन के अनुसार भेद पाया जाता है।

	एकवचन	बहुवचन
स्त्री०	'चढ़ी'[२०]	'चढ़ीं'[२१]

---

१. छं० सं० ११२। २. छं० सं० ११२। ३. छं० सं० ४६। ४ छं० सं० ४६१। ५. छं० सं० १०७। ६. छं० सं० १७३। ७. छं० सं० १३१। ८. छं० सं० १०५। ९. छं० सं० ३। १०. छं०सं० ७८। ११. छं०सं० २३६। १२. छं० सं० १४९। १३. छं० सं० १६। १४. छं०सं० ४९। १५. छं० सं० ११२। १६. छं० सं० १४१। १७. छं० सं० १८३। १८. छं० सं० ७। १९. छं० सं० १४५। २०. छं०सं० १८७। २१. छं० सं० १८७।

पु० 'चढ़चो'[१] ~ 'चढिया'[२], 'चढ़े'[३] ~ 'चाढ़े'[४], ~ 'चढ़ियेस'[५] ~ 'चढ़िये'[६]

७. खड़ी बोली का आदरसूचक वर्तमान क्रिया-रूप अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है—

'दीजिये'[७]—देश त्याग अब 'दीजिये'।

'कीजिये'[८]—अनमानत जुध 'कीजिये'।

'लीजिये'[९]—जो नरेस सुन 'लीजिये'।

इन रूपों में/ये/का ही प्रयोग हुआ है। आधुनिक खड़ी बोली हिंदी का /ए/तथा/ये/का झगड़ा यहाँ दिखाई नहीं देता।

साथ ही सामान्य रूप भी मिलते हैं—(वर्तमान, मध्यम पुरुष)

'छोड़ो'[१०]—'छोड़ो' सावकरण सजि सोई।

'करो'[११]—'करो' स्याम के काम।

'कहो'[१२]—'कहो' स काज लायकं।

'रहो'[१३]—'रहो' सु जानि के घरा।

८. पूर्वकालिक क्रिया-पदों में राजस्थानी प्रयोग—

'आ'रि' ~ (आधुनिक 'आकर')

'ले'र' ~ (आधुनिक 'लेकर')

'हो'र' ~ (आधुनिक 'होकर')

'आरि'—उबरेस जोय मिलियेस 'आरि'।[१४]

टरिहैस आप जो मिलै 'आरि'।[१५]

'लेर'—उलटिवाट कीनो चलन, लारे मंत्री 'लेर'।[१६]

'होर'—जुटियेस जोध अति क्रोध 'होर'।[१७]

९. क्रिया-पदों के साथ भी/स/का योग। जैसा पहले कहा जा चुका है, पद-पूर्ति या अन्य किन्हीं कारणों से/स/का योग अन्य पदों के साथ भी हुआ है। यहाँ क्रिया-पदों के साथ देखिए—

---

१. छं० सं० १३१। २. छं० सं० १८१। ३ छं० सं० १२६। ४. छं० सं० १२४। ५. छं० सं० १७१। ६ छं० सं० ९८। ७. छं० सं० ४८। ८ छं० सं० १०५। ९. छं० सं० १०५। १० छं० सं० १५। ११. छं० सं० ५२। १२ छं० सं० ७४। १३. छं० सं० ७४। १४ छं० सं० २०८। १५. छं० सं० १७६। १६ छं० सं० २७२। १७ छं० सं० ३७४।

वर्तमान काल—'तकिहै+/स/'[१], 'सरिहै+/स/'[२], 'सुनिहो+/स/'[३]
भूतकाल—'बकसे+/स/'[४], 'थपे+/स/'[५],
'जुडये+/स/'[६], 'पूछी+/स/'[७]
भविष्य काल—'लैहों+/स/'[८], 'करिहौं+/स/'[९],
'लरिहै+/स/'[१०], 'टरिहै+/स/'[११]

क्रिया-पदों के साथ इस योग में कई बातें मिलती हैं—

१—वर्तमानकाल सूचक क्रिया-पदों के साथ/स/का योग कम हुआ है।

२—भूतकाल में ईकारान्त तथा येकारान्त पदों के साथ योग दिखाई देता है।

३—भविष्यकाल में 'है' अथवा 'हौं' में अंत होने वाली क्रियाओं के साथ /स/ का योग मिलता है।

१०. कुछ अनुकरणात्मक और पुनरुक्त धातुएँ भी उपलब्ध होती हैं—

अनुकरणात्मक 'सर सर'[१२], 'मर मर'[१३], 'ढर ढर'[१४],
तथा द्विरुक्त 'धर धर'[१५], 'फर फर'[१६]—आदि

११. स्थानीय क्रिया-पद—

'चिगे'—हटे

'चिगे' रावराजा कटक।[१७]

'फुरमाये'—आधुनिक 'फरमाइए', 'फरमाया'

'फुरमाये' पातिल वचन, सुनौं धीर यक बात।[१८]

'उसरे'—निकले

वत 'उसरे' दल नजब के, यत पातिल दल भीर।[१९]

'बासाये'—बैठाए

'बासाये' साम्ही सुरति, राजकवर की रीति।[२०]

१२. कुछ नव-प्रयोग—

'श्रवण लीन'[२१]—सुना—नृप माधवेस यों 'श्रवण लीन।'

---

१. छं० सं० १२१। २ छं० सं० १२१। ३. छं० सं० १२१। ४. छं० सं० ६। ५. छं० सं० ६। ६. छं० सं० ३५। ७. छं० सं० १०। ८. छं० सं० ११०। ९. छं० सं० १२१। १०. छं० सं० १७६। ११. छं० सं० १७६। १२,१३,१४, १५,१६. छं० सं० १३१। १७. छं० सं० ३६९। १८. छं०सं० ६७। १९. छं०सं० २४७। २० छं० सं० ३९०। २१. छं० सं० १०३।

'कुंच बजाये'[1]—कूँच किया—बहुर भूप दल 'कुंच बजाये'
'कीने चलन'[2]—चले—धर पछिम 'कीने चलन'।
'कोक लीये'[3]—बुलाया—'लीये कोक' नृप आप।
'कहियो सुनाय'[4]—कहा (जोर से)—'कहियो सुनाय' सब सथ सों।
'कीजै चलण समाज'[5]—चलो—धरणि राजगढ़ राव पै,
'कीजै चलण समाज'।
'सरी तुम्हारी रारि'[6]—तुम जीते—'सरी तुम्हारी रारि',
आरि मिलियेस वेग अति।

वर्तमानकाल—

प्रताप-रासो में वर्त्तमान काल के रूपों में पुरुष, वचन और लिंग के अनुसार भेद होता है। तीनों पुरुष उत्तम, मध्यम तथा अन्य; दोनों वचन—एकवचन तथा बहुवचन; दोनों लिंग– स्त्रीलिंग और पुल्लिग देखे जाते हैं। कहीं-कहीं यह अंतर लक्षित नहीं होता, इसका कारण क्रिया-पदों का संयुक्त होना है। वर्तमान काल के क्रिया-पद, प्रायः, संयोगावस्था में मिलते हैं।

√'करना' क्रिया के रूप -

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	'करों'[7], 'करूं'[8], 'करु'[9], 'करौ'[10]	करै[11], 'कीजेस[12], 'कीजिये'[13], कीजै[14] (१२, १३, १४ कर्मवाच्य रूप हैं)
मध्यम पुरुष	'कर'[15], 'कीजो'[16], 'कीज्यो'[17]	'करौ'[18], 'करो'[19], 'करिये'[20], 'कीजिय'[21], 'कीजिये'[22], 'कीजै'[23], 'कीजे'[24], 'कीजत'[25], 'करिय'[26], 'करियेस'[27], 'कीजैस'[28], 'कीजेस'[29]
अन्य पुरुष	'करै'[30], 'करत'[31]	'करै'[32]

१. छं० सं० ३९२। २. छं० सं० ३९८। ३. ३७९। ४. छं० सं० १८५। ५. छं० सं० ३६५। ६. छं० सं० १९३। ७ छं० सं० २। ८. छं० सं० ४। ९. छं० सं० २९९। १०. छं० सं० २१८। ११. छं० सं० ३१२। १२ छं० सं० ३६६। १३. छं० सं० २६३। १४. छं० सं० ३२०। १५. छं० सं० ११३। १६. छं० सं० ९१। १७. छं० सं० ?३८। १८. छं० सं० ११७। १९. छं० सं० ३४०। २०. छं०सं० ३१०। २१. छं० सं० १०५। २२. छं० सं० ३१२। २३. छं० सं० ३४३। २४. छं० सं० ३४४। २५. छं० सं० २९८। २६. छं० सं० ३४३। २७. छं० सं० ४२६। २८. छं० सं० ३८९। २९. छं० सं० ३८९। ३०. छं० सं० ३०३। ३१. छं० सं० ४०४। ३२. छं० सं० २१५।

प्रयोग—

उत्तम १. 'करों'—कर जोर जुगल विनती 'करों', त्यों निवार ग्राज्ञा लहों।[1]

२. 'करूँ'—जुगम जोय वरनन 'करूँ', जो क्रमकुल ठाम है।[2]

३. 'करु'—या दल 'करु' दीवान तुम।[3]

४. 'करौ'—'करौ' स्याम के काम नांय होय भूप व्रजनर।[4]

५. 'करै'—बंधु बोले वरै। कीजिये सो 'करै'।[5]

६. 'कीजेस' 'कीजिये' 'कीजै—'करैं' (हमारे द्वारा किया जाय)—
दीजे विचार 'कीजेस' सोय।[6] जो तुम करो सो 'कीजिये'।[7]
कह्यौ तुम्हारी सोई 'कीजै'।[8]

मध्यम ७. 'कर'—यहाँ नृप दे दोय प्रगना, कै 'कर' जुध कवार।[9]

८. 'कीज्यो' - जिसी ठांम जो राजसी जान 'कीज्यो'।[10]

९. 'करौ'—'करौ' जुध जो राषन जी कों।[11]

१०. 'करो'—जुड़ि 'करो' जाय चौड़ेस जुध।[12]

११. 'करिये'—'करिये' जो जानै षुसी, हसत सत्रु यह सुनत सब।[13]

१२. 'कीजिय'—क्रोध कापै यह 'कीजिय'।[14]

१३. 'कीजिये'—भेज सदासिव भट कूं ग्रनमानत जुध 'कीजिय'।[15]

१४. 'कीजै'—जलद चलन दिली दिस 'कीजै'।[16]

१५. 'कीजे'- पातिल सों 'कीजे' मिलन।[17]

१६. 'कीजत'—लहै नैन मुष बैन बचन सोही तुम 'कीजत'।[18]

१७. 'करिय'—'करिय' कूंच नजब नर ह्यांतै।[19]

१८. 'करीये'—'करीये' सब ग्राप षुसी मरजी।[20]

१९. 'करियेस'—'करियेस' कुंच चलियेस संग।[21]

२०. 'कीजैस'—धारीस ग्राप 'कीजैस' चाव।[22]

२१. 'कीजेस'—'कीजेस' ग्राप ग्रावै सदाय।[23]

यहाँ खड़ी बोली के ग्रनुसार केवल दो रूपों के इतने ग्रधिक रूप हैं।

---

१. छं० सं० २। २. छं० सं० ४। ३. छं० सं० २९९। ४. छं० सं० २१८। ५. छं० सं० ३१२। ६. छं० सं० ३६६। ७ छं० सं० २६३। ८. छं०सं० ३२०। ९. छं०सं० ११३। १०. छं०सं० १३८। ११. छं०सं०११७। १२ छं०सं० ३४०। १३ छं० सं० ३१०। १४. छं० सं० १०५। १५. छं० सं० १०५। १६. छं० सं० ३४३। १७ छं० सं० ३४४। १८. छं० सं० २९८। १९. छं० सं० ३४३। २० छं०सं० ४०४। २१ छं०सं० ४२६। २२. छं०सं० ३८९। २३. छं०सं० ३८९।

'करो' ↷ [करौ], [करो]

'कीजिये' ↷ [करिये], [कोजिय], [कीजिये], [कीजै], [कीजे], [कीजत], [करिय], [करीये]

/स/ युक्त रूप ↷ [करिये+/स/], [कीजै+/स/], [कीजे+/स/]

अन्य—

२२. 'करै'—स्याम नाम के काम पर दंगल दल मंगल 'करै'।[1]

२३. 'करत'—कर जोडि 'करत' यसी अरजी।[2]

२४. 'करै'—यहो ऊगत प्रात कितेक नरै।
सिर नाय सवाय सलाम 'करै'।[3]
घरण पछिम कोट कलोल 'करै'।[4]

वर्तमानकाल सूचक क्रिया-पदों की कुछ विशेषताएँ—

१. आधुनिक खड़ी बोली गद्य के 'हूँ' सहायक क्रिया के समान अंत में सानुनासिकता—

'उं'—'लगुं'[5]

'ऊँ'—'करूं'[6], 'कहूँ'[7]

'ओं'—'लहों'[8], 'करों'[9], 'ल्यों'[10]

'औं'—'हौं'[11], 'कहौं'[12], 'बरनहौं'[13]

२. 'अत' प्रत्यय सहित—

'कहियत'[14]—को पुत्री को तात कौन तेरे पति 'कहियत'।

बतैयत'[15]—बचन बोल मुष जोय होय सो मोहि 'बतैयत'।

'सुलझावत'[16]—लै बंधु आदि आमैरि कौ 'सुलझावत' आमैरपति।

'त्यागत'[17]—नर नर नैक न 'त्यागत' टेक।

'कीजत'[18]—लहै नैन मुष बैन बचन सोही तुम 'कीजत'।

३. 'अंत' प्रत्यांत भी—

'उबरंत'[19]—'उबरंत' जोय दल मिलै आरि।

---

१. छं०सं० २७३। २ छं० सं० ४०४। ३. छं० सं० २१५। ४. छं० सं० २१५। ५. छं० सं० १। ६ छं० सं० ४। ७. छं० सं० १६३। ८. छं० सं० २। ९. छं० सं० २। १०. छं० सं० २। ११ छं० सं० २। १२ छं० सं० २। १३. छं० सं० १६। १४. छं०सं० १०। १५ छं०सं० १०। १६. छं०सं० ३८०। १७. छं० सं० १३१। १८. छं० सं० २९८। १९. छं० सं० ४१४।

'भोगंत'[१] 'भोगंत' माल छत्री मरद।
'माएंत'[२]—'माएंत' छाक छत्रीस जोड़।
'मुरडंत'[३]—'मुरडंत' जो ग लीजे संमारि।

४ 'ओकारान्त' पद—

'कोप्यो'[४]—'कोप्यो' है माधव नृपति, अन जल जहाँ लै जात।
'कहो'[५]—'कहो' कवि ग्रंथ उचारिय।
'रहो'[६]— 'रहो' सु जानि कै धरा।
'करो'[७]—भिन-भिन बरनन 'करो'।
'भेजो'[८]—'भेजो' और सतोल।

इसी प्रकार 'बोधो'[९], 'सोधो'[१०], 'छोड़ो'[११], 'बरनो'[१२], 'वजावो'[१३], 'मिलावो'[१४] आदि।

साथ ही 'औकारान्त' भी—

'जानौ'[१५]—करए षोहरै प्रगट गढ़ दुलैसिंह 'जानौ'।
'सुणौ'[१६] —आप यक 'सुणौ' हमारिय।
''ल्यौ'[१७]—'ल्यौ' पटैल जीवत पकड़।

५. आदरसूचक आज्ञार्थ के खड़ी बोली रूप

'दीजिये'[१८]—देस त्याग अब 'दीजिये', और न कछू विचार।
'लीजिये'[१९] – अरज येक मेरीस यह जो नरेस सुन 'लीजिये'।
'कीजिये'[२०]—भेज सदासिव भट कूं अनमानत जुध 'कीजिये'।

साथ ही अन्य रूप—'लीजै'[२१], 'दीजै'[२२], 'कीजै'[२३]
और 'लीजे'[२४], 'दीजे'[२५], 'कीजे'[२६] भी।

६. 'हो' में अन्त होने वाले पद—

'दै हो'[२७]—सिताबी षवर फौज में जाय 'दैहो'।
'लै हो'[२८]—बली राव परताप है बेग 'लैहो'।

---

१. छं० सं० ४६५। २. छं० सं० ४६५। ३. छं० सं० ४१४। ४. छं०सं० ६७। ५. छं० सं० ४। ६ छं० सं० ७४। ७. छं० सं० ५२। ८. छं०सं० २२१। ९. छं०सं० १५। १०. छं०सं० १५। ११. छं०सं० १५। १२. छं०सं० ४४। १३. छं० सं० २०४। १४. छं० सं० २०४। १५. छं० सं० ५३। १६. छं०सं० ४२८। १७. छं० सं० ४१९। १८. छं० सं० ४८। १९. छं० सं० १०५। २०. छं० सं० १०५। २१ छं० सं० ११२। २२. छं० सं० १४८। २३. छं० सं० ११२। २४. छं०सं० ४६६। २५. छं० सं० १३५। २६. छं० सं० १३७। २७. छं० सं० ८५। २८. छं०सं० ८५।

७. जैसा ऊपर दिखयां गया है, मध्यम पुरुष बहुवचन के रूपों का आधिक्य है ।

८. स्त्रीलिंग के रूप अलग प्राप्त नहीं होते ।

भूतकाल—

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष—	'कीन'[1], 'कियं'[2] 'कीनी'[4]	'कीये'[3]
मध्यम पुरुष—		'कीन'[5], 'कीनौं'[6], 'कीयौ'[7]
अन्य पुरुष—	'कीनों'[8], 'कीन'[9], 'कीनो'[10], 'कीनौं'[11], 'कियो'[12], 'कीनौ'[13], 'किय'[14], 'कीनीय'[15], 'कीनब'[16], 'कियौ'[17], 'कीनिय'[18], 'कीन'[19], 'कीनी'[20], 'कीनोस'[21], 'कीनिय'[22], 'करी'[23], 'करिय'[24], 'कीनीस'[25] ।	'किये'[26], 'कीने'[27], 'कीन'[28], 'कराये'[29], 'कीये'[30], 'किय'[31], 'कियेस'[32], 'कीनै'[33], 'कीन्हे'[34], 'करे'[35]

प्रताप-रासो में प्रयोग—

'कीन'[36]—सूरजमल व्रजराज सौ, जुध येक मैं 'कीन' ।

'किये'[37]—लघुता ते मैं 'किये' बड़ाई ।

'कीये'[38]—काज को 'कीये' याद हम ।

'कीनी'[39]—(मैं) 'कीनी' ते करतार कराई ।

'कीन'[40]—तुम कीन वंघु जो वंघु काम ।

---

१. छं० सं० ८३, ११० । २. छं० सं० ३९६ । ३. छं० सं० ४०० । ४. छं०सं० ४०६ । ५. छं० सं० १६६ । ६. छं० सं० ३५० । ७. छं० सं० ३८० । ८ छं० सं० ६ । ९ छं० सं० १३ । १०. छं० सं० ४७ । ११. छं० सं० ३५ । १२. छं० सं० ४६ । १३. छं० सं० ४९ । १४. छं०सं० ४११ । १५. छं०सं० ४०७ । १६. छं० सं० ३८० । १७. छं० सं० ३३१ । १८. छं० सं० १६९ । १९ छं० सं० २४६ । २०. छं० सं० ८ । २१. छं० सं० ३२७ । २२. छं० सं० १०५ । २३ छं० सं० २६१ । २४ छं० सं० ३७४ । २५. छं० सं० ४१४ । २६. छं० सं० १७ । २७ छं० सं० ४९ । २८ छं०सं० ७० । २९. छं०सं० १२० । ३०. छं०सं० १२७ । ३१. छं० सं० १४५ । ३२. छं०सं० १६२ । ३३. छं०सं० ३३५ । ३४. छं०सं० ३२१ । ३५. छं०सं० ३९४ । ३६. छं०सं० ८३ । ३७. छं०सं० ३९६ । ३८. छं०सं० ४०० । ३९. छं० सं० ४०६ । ४०. छं० सं० १६६ ।

'कीनौं'[1]—क्यों तुम दिली नजत्र तजि दीनौं।
या दिसि आंन काज को 'कीनौं'।

'कीयौ'[2]—धर धणी आप आवन 'कीयौ' अलझ्यौ है अन मौन अति।

'कीनों'[3]—'कीनों' विहंड सों दसौं सीस।

'कीन'[4]—जो विद्या जितनी पढ़ी, वालमीक गुरु 'कीन'।

'कीनो'[5]—'कीनो' करूर माधव नरेस।

'कीनौं'[6]—कूच वर भोरहि 'कीनौं'।

'कियो'[7]—'कियो' क्रोध पातल प्रबल, को नाथावत रतनेस।

'कीनौ'[8]—'कीनौ' तैं परवान कूच की तब ही ठानी।

'किय'[9]—'किय' पातिल सिंधे मिलन।

'कीनीय'[10]—सुणि मंत्री नृप वचन जोड़ि कर अर्ज सु 'कीनीय'।

'कीनव'[11]—भूप आदर अति 'कीनव'।

'कियौ'[12]—चावंड दान 'कियौ' यत आनै।

'कीनिय'[13]—जात राव परताप आप यह अरज सु 'कीनिय'।

'कीन'[14]—चढिय जोर भर जुध 'कीन'।

'कीनी'[15]—राम राज आज्ञा यों 'कीनी'।

'कीनोस'[16]—'कीनोस' मास रुपि राड़ि येक।

'करी'[17]—'करी' मास दोय किला सूं लड़ाई।

'करिय'[18]—रुपि 'करिय' राड़ि जिन मास दोय।

'कीनीस'[19]—'कोनीस' बात सिंधे प्रवाण।

'किये'[20]—'किये' तास बनवास मैं, समै जुध सुत तात।

'कोने'[21]—हनवंत थान गिरवर निकट 'कीन' मुकाम परथम दिवस।

'कीन'[22]—मुकाम दो मझ्झ 'कीन'।

'कराये'[23]—भूपति भर दरबार 'कराये'।

'कीये'[24]—'कीये' डेरा नदो निकट, माधव दल महमंत।

---

१ छं० सं० ३५०। २ छं० सं० ३८०। ३ छं० सं० ६। ४. छं० सं० १३।
५. छं० सं० ४७। ६. छं० सं० ३५। ७ छं० सं० ४६। ८ छं० सं० ४९।
९. छं० सं० ४११। १०. छं०सं० ४०७। ११. छं०सं० ३८०। १२. छं०सं० ३३१।
१३ छं० सं० १६९। १४ छं० सं० २४६। १५ छं०सं० ८। १६ छं०सं० ३२७।
१७. छं० सं० २६१। १८ छं०सं० ३७४। १९. छं० सं० ४१४। २० छं०स० १७।
२१. छं० सं० ४९। २२ छं० सं० ७०। २३ छं०सं० १२०। २४. छं० सं० १२७।

'किय'[1]—सम चौबीसै साल काल माधव महीप 'किय'।

'कियेस'[2]—दगेस पातिलराव पर 'कियेस' दुरजन हाथ।

'कीनै'[3]—वत वांवोली नजब नर, 'कीनै' घणे मुकाम।

'कीन्हे'[4]—'कीन्हे' षुस्याल मंत्री जुवाब।

'करे'[5]—'करे' बार दरवार कोकि मंत्री सु बुलायब।

भूतकाल क्रिया पदों के सम्बन्ध में—

१. अन्य पुरुष में रूप-विविधता—

एकवचन पु० ख० बो० 'किया'।

[कीनों][6], [कीन][7], [कीनो][8], [कीनौं][9], [किय][10], [कियो][11], [कोनौ][12], [कीनोस][13], [कीनब][14], [कीनिय][15], [कीन][16]।

स्त्री० ख० बो० 'की'।

[कीनी][17], [कीनिय][18], [करी][19], [करिय][20], [कीनीस][21]।

बहुवचन ख० बो० 'किये'।

[कीये][22], [किये][23], [कीने][24], [कोन][25], [कीयेस][26], [कीनै][27], [कीन्हे][28], [करे][29] आदि।

(अ) एकवचन पुल्लिंग में ओकारान्त तथा औकारान्त की तथा स्त्रीलिंग में इकारान्त और ईकारान्त की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

(आ) बहुवचन में एकारान्त की प्रवृत्ति है।

(इ) अन्त में /य/ ध्वनि भी, खड़ी बोली के अनुरूप ही, आती है।

२. पुराघटित अतीत भूतकाल में एक प्रयोग और मिलता है, जिसके अन्त में प्रायः /त/ वर्ण आता है—

---

१. छं० सं० १४५। २. छं० सं० १६२। ३ छं० सं० ३३५। ४. छं० सं० ३२१। ५. छं० सं० ३९४। ६. छं० सं० ६। ७. छं० सं० १३। ८. छं० सं० ४७। ९. छं० सं० ३५। १०. छं० सं० ४११। ११. छं० सं० ४६। १२. छं० सं० ४९। १३. छं०सं० ३२७। १४. छं०सं० ३८०। १५. छं०सं० १६९। १६ छं०सं० २४६। १७. छं० सं० ८। १८ छं० सं० १०५। १९. छं०सं० २६१। २०. छं० सं० ३७४। २१. छं० सं० ४१४। २२. छं० सं० १२७। २३. छं०सं० १७। २४. छं०सं० ४९। २५. छं०सं० ७०। २६. छं०सं० १६२। २७. छं० सं० ३३५। २८ छं०सं० ३२१। २९. छं० सं० ३९४।

'तपत'[१], 'पूजत'[२], 'रहत'[३]।

(१) ता बन यक तपसो 'तपत', बालमोक रिष नाम।

(२) 'पूजत' भुज जयसाहि नृप, संगि सबल दल पाए।

(३) सीता 'रहत' सबन संग सोई। उपजे पुत्र जुगल जग जोई॥

३. खड़ी बोली का 'था' सहायक क्रिया के रूप में दिखाई नहीं देता। प्रताप-रासो के भूतकालीन क्रिया-पद कई रूपों में दिखाई देते हैं—

(अ) अकारान्त—'कीन'[४], 'दीन'[५], 'लीन'[६], 'किय'[७], 'होय'[८]।

(आ) ईकारान्त—'लगी'[९], 'बजी'[१०], 'कीनी'[११], 'दीनी'[१२], 'दई'[१३]।

(इ) एकारान्त—'कोके'[१४], 'बतराये'[१५], 'भेजिये'[१६], 'उपजे'[१७]।

(ई) ऐकारान्त—'गिरै'[१८], 'आवियै'[१९], 'कीनै'[२०]।

(उ) ओकारान्त—'कियो'[२१], 'थाकियो'[२२], 'हन्यो'[२३], 'धारियो'[२४]।

(ऊ) ओंकारान्त—'कीनों'[२५]।

(ए) औकारान्त—'कीनौ'[२६], 'कह्यौ'[२७], 'उचारौ'[२८]।

(ऐ) औंकारान्त—'कीनौं'[२९], 'लीनौं'[३०]।

४. एक विचित्र प्रयोग—'व' वर्ण में अन्त।

'वुलाया/वुलाये' ~प्र० 'बुलायव'[३१]।

'आये' ~प्र० 'आयब'[३२]।

'किया/किये' ~प्र० 'कीनब'[३३]।

'ग्रहण किया' ~प्र० 'गहिब'[३४]।

'चले' 'हिले' ~प्र० 'चलिब'[३५], 'हिलव'[३६]।

५. एकारान्त के स्थान में येकारान्त ही मिलते हैं—

'आये'[३७], 'किये'[३८], 'गये'[३९], 'नाये'[४०], 'वुलाये'[४१], 'बतलाये'[४२],

---

१. छं० सं० ९। २. छं० सं० २६। ३. छं० सं० १२। ४. छं० सं० ३।
५. छं० सं० २। ६. छं० सं० ४७। ७. छं० सं० १४५। ८. छं० सं० ४७।
९. छं० सं० ६। १०. छं० सं० ३। ११. छं० सं० ४४। १२. छं० सं० ८।
१३. छं० सं० ११। १४. छं० सं० ३४। १५. छं० सं० १०७। १६. छं० सं० १०६।
१७ छं० सं० ३२। १८. छं० सं० ८५। १९. छं० सं० १८। २०. छं० सं० ३३५।
२१. छं०सं० ३४९। २२ छं० सं० १३१। २३. छं० सं० ५। २४. छं० सं० ११५।
२५. छं०सं० ३२७। २६. छं०सं० ३५०। २७. छं०सं० २१३। २८ छं०सं० ३७१।
२९. छं० सं० ३५०। ३०. छं०सं० ३५। ३१. छं०सं० १४५। ३२. छं०सं० २९८।
३३. छं० सं० ३८०। ३४. छं० सं० ६। ३५. छं० स० ४३२। ३६. छं०सं० ४३२।
३७. छं० सं० ४१। ३८. छं० सं० ११४। ३९. छं० सं० ११। ४०. छं० सं० ८८।
४१. छं० सं० १२०। ४२. छं० सं० १७३।

लिषये'[१], 'पिलिये'[२], 'सजिये'[३], 'हुये'[४], 'लिये'[५], 'जिये'[६], 'धारिये'[७], 'छाये'[८], 'फुरमाये'[९], 'भेजिये'[१०]।

६ /य/ योगान्त जो ब्रजभाषा की विशेषता है—
'डिग्यौ'[११], 'कह्यौ'[१२], 'वढ़्यो'[१३], 'हन्यो'[१४], 'उपज्यो'[१५]।

७. /स/ का योग, जैसा अन्य पदों में भी लक्षित होता है—
'बकसे+/स/'[१६], 'थपे+/स/'[१७], 'पूछो+/स/'[१८], 'सुनिई+/स/'[१९], 'कहिई+/स/'[२०], 'बुझो+/स/'[२१], 'लीनी+/स/'[२२], 'मरये+/स/'[२३], 'लगे+/स/'[२४]।

८. विशेष प्रयोग—
'कीन आन'[२५] ~ 'आये'
'श्रवरण लीन'[२६] ~ 'सुना'
'कीने चलन'[२७] ~ 'चले'
'आवन कियो'[२८] ~ 'आये'

भविष्य —

	एकवचन	वहुवचन
उत्तम	'करिहौंस'[२९], 'करिहौ'[३०], 'कीन'[३१], 'करिहो'[३२]।	'करिहै'[३३], 'करिहैं'[३४]।
मध्यम	—	—
अन्य	'करिहैस'[३५]	—

प्रयोग—

'करिहौंस'[३६]—'करिहौंस' जुध सरिहैंस लौन।
'करिहौ'[३७]—'करिहौ' दिवान याही सु देस।

---

१. छं० सं० ९६। २. छं० सं० १७। ३. छं० सं० ६१। ४. छं० सं० २५। ५. छं० सं० २६। ६. छं० सं० २७। ७. छं०सं० ३५। ८. छं० सं० ४१। ९. छं० सं० ६७। १०. छं० सं० १०६। ११. छं० सं० ४६१। १२. छं०सं० २१३। १३. छं० सं० १९९। १४. छं० सं० ५। १५. छं० सं० ८७। १६. छं० सं० ६। १७. छं० सं० ६। १८ छं० सं० १०। १९. छं० सं० ४७। २०. छं० सं० ४७। २१. छं०सं० १६६। २२. छं० सं० ३५६। २३. छं०सं० ३९४। २४. छं०सं० ३५२। २५. छं०सं० ११०। २६ छं० सं० १०३। २७. छं०सं० ३९८। २८. छं०सं० ३७९। २९. छं०सं० १२१। ३०. छं०सं० ३५२। ३१. छं०सं० २७१। ३२. छं०सं० १२१। ३३. छं०सं० २४३। ३४. छं०सं० ३२७। ३५. छं०सं० २२५। ३६. छं०सं० १२१। ३७. छं०सं० ३५२।

'करिहो'[१]—'करिहो' सु होय जो स्याम काम।

'कीन'[२]—कहि है षुस्याल मैं सोय 'कीन'।

'करिहै'[३]—'करिहै' पर और हरोल तुमै।

'करिहैस'[४]—'करिहैस' काम सरिहैस जोय।

'करिहैं'[५]—लरि याहि तोरि 'करिहैं' च कूच।

भविष्य काल के संबंध में कुछ टिप्पणियाँ—

१. खड़ी बोली [गा] के स्थान में व्रजभाषा के ओकारान्त रूप [गो] के रूप कहीं-कहीं दिखाई देते हैं

'पकरेगो'[६]—सुत तुमरो 'पकरेगो' सोई।

'पायगो'[७]—बीच पाडि व्रजराज कौ, बाजी भिडत न 'पायगो'।

'जायगो'[८]—जोड़त माधव नृपति दल मोल जवाहर 'जायगो'।

खड़ी बोली [गा] ∽ प्रतापरासो [गो]; [गी] और [गे] रूप नहीं मिलते।

२. अधिक रूपों में /ह/ ध्वनि मिलती है—

/ह्/+/ओ/—'जैहो'[९], 'करिहो'[१०], 'लैहो'[११]

/ह्/+/औ/—'देषिहौ'[१२], 'मिलिहौ'[१३], 'लैहौ'[१४]

/ह्/+/औं/—'जैहौं'[१५], 'कहहौं'[१६], 'करिहौं'[१७]

/ह्/+/ऐ/—'पायहै'[१८], 'आयहै'[१९], 'लरिहै'[२०], 'टरिहै'[२१], 'करिहै'[२२], 'रहै'[२३], 'जहै'[२४], 'डारिहै'[२५]।

३. एक अन्य प्रयोग—

'रषै'[२६] ∽ ख० बो० 'रखेगा', 'जहै'[२७] ∽ 'जायेंगे'।

'रहै'[२८] ∽ ख० बो० 'रहेंगे'।

को नृप 'रषै' तापै 'रहै'। नाहि चले दिली दिस 'जहै'।

४. -राजस्थानी—

'रहसी/रि/'[२९]—'रहेगी'।

---

१. छं० सं० १२१। २. छं० सं० २७१। ३. छं० सं० २४२। ४. छं० सं० २२५। ५. छं० सं० ३२७। ६ छं० सं० १५। ७. छं० सं० ११२। ८. छं० सं० ११२। ९. छं०सं० ११०। १०. छं०सं० १२१। ११. छं०सं० ११०। १२. छं०सं० ९२। १३. छं०सं० ६९। १४. छं०सं० २३५। १५. छं०सं० ६८। १६. छं०सं० ६८। १७. छं०सं० १२१। १८. छं०सं० १६९। १९. छं०सं० १६९। २० छं०सं० १७६। २१. छं०सं० १७६। २२. छं०सं० २२५। २३. छं०सं० ७२। २४. छं०सं० ७२। २५. छं० सं० २३५। २६. छं० सं० ७२। २७ छं० सं० ७२। २८. छं० सं० ७२। २९. छं०सं० ४६१।

५. /स/ ध्वन्यांत—

'लैहौं+/स/'[१], 'करिहो+/स/'[२], 'लरिहै+/स/'[३], 'टरिहैं+/स/'[४], 'करिहै+/स/'[५], 'करिहौं+/स/'[६]।

६. /च/ ध्वन्यांत—

लरि याहि तोरि 'करिहैंच' कूँच।[७]

पूर्वकालिक क्रिया के रूप—

१. खड़ी बोली का 'कर' कम मिलता है। राजस्थानी प्रभावित 'कर' को 'रि', 'र' के रूप में यदा कदा देखा जाता है।

'आकर' > 'आरि'—उबरेस जोय मिलियेस 'आरि'[८]।

टरिहैस आप जो मिलै 'आरि'[९]।

'लेकर' > 'लेर' —उलटिवाट कीनो चलन, लारे मंत्री 'लेर'[१०]।

२. पूर्वकालिक क्रिया के अनेक रूप—

(क) 'अकारान्त'—'जान'[११], 'आन'[१२], 'होय'[१३], 'सज'[१४], 'कह'[१५], 'बजाय'[१६], 'आय'[१७]।

(ख) 'आकारान्त'—'आ'[१८]—

दीपदान 'आ' देषियों हम तुम पहुकर मिलन।

(ग) 'इकारान्त'—'मारि'[१९], 'तजि'[२०], 'लषि'[२१], 'करि'[२२], 'सुनि'[२३], 'धारि'[२४], 'चलि'[२५]।

(घ) 'ऐकारान्त'—'दै'[२६], 'लै'[२७]।

३. कहीं-कहीं 'कर' के स्थान में 'कै' मिल जाता है—

'जानिकै'[२८], 'करकै'[२९]।

४. 'कर' का प्रयोग—

'कर सर' ～ 'कर सर' उनधारो किलो, माधव नृपत सुनाम।[३०]

---

१. छं० सं० ११०। २. छं० सं० १२१। ३. छं० सं० १७६। ४ छं० सं० १७६। ५ छं० सं० २२५। ६. छं० सं० १२१। ७. छं० सं० ३२७। ८ छं० सं० २०८। ९. छं० सं० १७६। १० छं० सं० २७२। ११. छं० सं० १०। १२ छं० सं० १०। १३. छं० सं० ४९। १४ छं० सं० ५२। १५. छं० सं० १४१। १६. छं० सं० ७०। १७. छं० स० ७०। १८ छं० सं० ९१। १९ छं सं० ४:९। २० ८ छं० सं०। २१. छं० सं० १०। २२ छं० सं० ८२। २३. छं० सं० १४८। २४. छं० सं० १४८। २५. छं० सं० ११२। २६. छं सं० १२०। २७. छं०सं० २५३। २८. छं०सं० ७८। २९. छं० सं० १०३। ३०. छं० सं० ३९।

'कर कर' ∽ 'कर कर' मुकाम पहोचे स ठाम ।[1]

'कर' ∽ 'कर' मुकाम परथम दिवस, किये राज दरबार ।[2]

'कर' पयाण परभात नृपति माधव पै जैहौं ।[3]

५. खड़ी बोली हिंदी गद्य में अभी तक 'कर', 'करके', 'φ'[†] प्रयोग चालू हैं—

'बुलाकर' ∽ √+ कर

'बुला करके' ∽ √+ करके

'बुला' ∽ √+ φ

यही प्रवृत्ति प्रतापरासो में भी देखी जाती है, यद्यपि 'कर' का प्रयोग कम ही हुआ है—

ख० बो० 'कर' ∽ [कर], [कै], [करकै], [φ]

'कर सर'[४] ∽ √+कर

'जानि कै'[५] ∽ √+कै

'करकै टेक'[६] ∽ √+करकै

'जान'[७] ∽ √+ φ

प्रेरणार्थक क्रिया—

'कराये'— दल अलवर दिसि कुच 'कराये'[८]

भारी भर दरबार 'कराये'[९]

भूपति भर दरबार 'कराये'[१०]

वत जोंहार दरबार 'कराये'[११]

'कराई'—कीनी ते करतार 'कराई'[१२]

कुछ विशेष प्रयोग—

१. 'के लिये' —

'करन'[१३] >'करने के लिए'—

'करन' स्याम के काम गांव डहरा सुठाव तजि ।

'व्याहन'[१४] > व्याहने के लिए'—

'व्याहन' वीकानेर घर, आमावति के राज ।

---

१. छं० सं० २२५। २. छं० सं० ५०। ३. छं० सं० ६८। ४. छं० सं० ३९।
५. छं० सं० ७८। ६. छं० सं० १०३। ७. छं० सं० १०। ८. छं० सं० ३३१।
९. छं० सं० २३७। १०. छं०सं० १२०। ११. छं०सं० ११७। १२. छं०सं० ४०६।
१३. छं० सं० ९९। १४. छं० सं० १५०।

---

† शून्य ।

'षंडन'[1] > 'षंड करने के लिए'—करण स्याम के काम, सीस सत्रुन के 'षंडन'।

'लरन'[2] > 'लड़ने के लिए'—उनयारै गढ़ 'लरन' कूंच वर भोरहि कीनौं।

√—ा = 'के लिए'; म० पु० आज्ञार्थ + /न/ = 'के लिए'।

२. 'ही' युक्त—

'सुनत'[3] > 'सुनते ही'—'सुनत' वचन रिष सीत के संग लै गये तास।

'बंचत'[4] > 'बांचते ही'—षत 'बंचत' व्रजराज के, व्रजराज जौंहार।

'जोड़त'[5] > 'जोड़ते ही'—'जोड़त' माधव नृपति दल मोल जवाहर जायगो।

√—ना + /त/ = √ + ही।

ए० व० म० पु० आज्ञार्थ + /त/ = √ + ही।

३. संज्ञावत्—

'रहन'[6]—'रहन' राव परताप को, सु रहै राज व्रजराज जित।

'विछरन'[7]—नृप 'विछरन' 'अरदल रहन होय धरा सो बात।

'आवन'[8]—घर धणी आप 'आवन' कियौ अलझ्यौ है अनमौन अति।

'मिलन'[9]—विजराज' 'मिलन' पहोकर सनान।

'आन'[10]—जो कोन 'आन' मै यही काज।

'जान'[11]—सेन राषि जोहार संगि कियो देस दिसि 'जान'।

४. खड़ी बोली के 'वाला' प्रत्ययांत सदृश—

'पायक'[12] > 'पानेवाला'—आपक तुम्हरे तात सदा 'पायक' वा घर के।

'भाज्या'[13] > 'भागनेवाला'—'भाज्या' ऊपर जाय जो, छत्री धरम न होय।

'करनहारो'[14] > 'करनेवाला'—कही कौन है सो यसी 'करनहारो'।

'कीनहार'[15] > 'करनेवाला'—करी 'कीनहार' सिरै दोस मोही।

'कहनहार'[16] > 'कहनेवाला'—'कहनहार' पुजै कहनि।

---

१. छं० सं० ३३। २. छं० सं० ३५। ३. छं० सं० ११। ४. छं० सं० ६२। ५. छं० सं० ११२। ६ छं० सं० ७८। ७ छं० सं० ४०। ८. छं० सं० ३८०। ९. छं०सं० ११०। १०. छं०सं० ११०। ११. छं० सं० ११६। १२. छं०सं० १?२। १३. छं०सं० १३६। १४. छं०सं० १६३। १५. छं०सं० १६३। १६. छं०सं० २४१।

५. संयुक्त क्रिया-पद—

'गए'> √करना + √जाना> 'कियो जान'—

किये देस दिसि जान ।[१]

'चले'> √करना + √चलना> 'कीने चलन'—

धर पच्छिम 'कीने चलन' ।[२]

'कोके'> √कोकना + √लेना> 'कोक लीये'—

'लीये कोक' नृप आप ।[३]

'आया'> √करना + √आना> 'कीन आन'—

'कीन आन' मै यही काज ।[४]

क्रियापदों की विविध रूपता के कुछ उदाहरण—

√आना

'आन'[५], 'आन'[६] (आकर), 'आई'[७], 'आवियै'[८], 'आवत'[९], 'आय'[१०], 'आत'[११], 'आ'[१२], 'आव'[१३], 'आवते'[१४], 'आयो'[१५], 'आनि'[१६], 'आये'[१७], 'आय है'[१८], 'आरि'[१९], 'आंनि'[२०], 'आब'[२१], 'आवै'[२२], 'आवन'[२३], 'आइय'[२४], 'आरिंग'[२५] आदि ।

√करना

'कीनों'[२६], 'कीनौं'[२७], 'कीजिये'[२८], 'करै'[२९], 'कीनिय'[३०], 'करौ'[३१], 'करिहौं'[३२], 'कीयो'[३३], 'करो'[३४], 'कीजै'[३५], 'कीन'[३६], 'कीनो'[३७], 'करन'[३८], 'किय'[३९], 'कर'[४०], 'कीने'[४१], 'किये'[४२], 'कीनी'[४३], 'कीजत'[४४], 'करु'[४५], 'करिये'[४६], 'करनी'[४७], 'कीन्हे'[४८], 'करि'[४९], 'कराये'[५०], 'कीनो'[५१],

---

१. छं०सं० ११६ । २. छं०सं० ३९८ । ३. छं०सं० ३७९ । ४. छं० सं० ११० ।
५. छं० सं० १२९ । ६. छं० सं० ११० । ७. छं० सं० ८४ । ८. छं० सं० १८ ।
९. छं०सं० २७ । १०. छं० सं० १०३ । ११. छं० सं० ६६ । १२ छं० सं० ९१ ।
१३. छं०सं० ९६ । १४. छं०सं० ९७ । १५. छं०सं० १०३ । १६. छं०स० ११४ ।
१७. छं०स० १५४ । १८. छं०सं० १६९ । १९. छं सं० १७६ । २० छं०सं० १८४ ।
२१. छं०सं० २१८ । २२. छं०सं० २६१ । २३. छं०सं० २९३ । २४. छं०सं० १९३ ।
२५ छं० सं० १०३ । २६. छं० सं० ६ । २७. छं० सं० ३५ । २८. छं० सं० ६८ ।
२९. छं० सं० ८३ । ३०. छं० सं० १०५ । ३१. छं०सं० ११७ । ३२. छं०सं० १२१ ।
३३. छं०सं० १५६ । ३४. छं०सं० १६३ । ३५ छं०सं० १७४ । ३६. छं०सं० २७१ ।
३७. छं०सं० २७२ । ३८ छं०सं० २७६ । ३९. छं०सं० २७६ । ४०. छं०सं० २७७ ।
४१ छं०सं० २८३ । ४२ छं०सं० २८४ । ४३. छं०सं० ३८९ । ४४. छं०सं० २९८ ।
४५. छं०सं० २९७ । ४६. छं०सं० ३१० । ४७. छं०सं० ३१० । ४८. छं०सं० ३२१ ।
४९. छं०सं० ३१२ । ५०. छं०सं० ३२३ । ५१. छं०सं० ३४४ ।

'कीनै'[१], 'करिय'[२], 'कीजे'[३], 'करी'[४]; 'करियेस'[५], 'कीनीस'[६], 'कीनौ'[७], 'कियेस'[८], 'करौं'[९], 'करत'[१०], 'करिहैस'[११], 'कीनिय'[१२], 'करिहौ'[१३], 'करान'[१४], 'करिकरि'[१५], 'कीजैसि'[१६], 'कीजेस'[१७], 'कीये'[१८] आदि आदि।

√होना

'होय'[१९], 'होत'[२०], 'हौ'[२१], 'हुई'[२२], 'होती'[२३], 'होयसी'[२४], 'होयस'[२५], 'होई'[२६], 'हुयो'[२७], 'हुये'[२८], 'भई'[२९], 'होये'[३०], 'भये'[३१], 'है'[३२], 'हैं'[३३], 'हौं'[३४], 'ह्वैयत'[३५], 'हो'[३६], 'हुय'[३७], 'होंनी'[३८], 'ही'[३९], 'ह्वै है'[४०], 'ह्वै'[४१], 'होर'[४२], 'होत'[४३], 'हुइ'[४४], 'हों'[४५] आदि।

एक रूप 'होय' के विभिन्न अर्थ—

पू० 'होकर'—निपुरण 'होय' गुरण गरण जिते जथा जोग परवीन।[४६]

व० 'हो'—वचन बोल मुख जोय 'होय' सो हमैं बतैयत।[४७]

सा० व० 'होती है'—हरे नजब दल हो घटे 'होय' चाहि अन चाहि।[४८]

भू० 'हुआ'—अैसेस 'होय' रघुनाथ पाट।[४९]

व० 'हो सकता है'—कलियारण वंस सों यह न 'होय'।[५०]

भू० 'था'—उदैकरन नृप 'होय' तास तन हम तुम भाइय।[५१]

व० आ० 'हो'—'होय' मोहि यक हुकम देष हों जाय व्रजधर।[५२]

आ० 'हो जाओ' - बंधू 'होय' स लार।[५३] (होय+/स/)

भवि० 'होगा'—एक न दूजो 'होय' सी, यों माधव सुनी नरेस।[५४]

क्रिया पदों की विविध रूपता अधिक मात्रा में पाई जाती है।

---

१. छं० सं० ३३५। २. छं० सं० ३४३। ३. छं० सं० ३४४। ४. छं० सं० ३८२।
५. छं० सं० ४२६। ६. छं० सं० ४२६। ७. छं० सं० ४३२। ८. छं० सं० ४५४।
९. छं० सं० २१८। १०. छं०सं० ४०४। ११. छं० सं० ४१४। १२ छं०सं० ४ ९।
१३. छं० सं० ३१२। १४. छं०सं० ३५६। १५ छं० सं० ३७४। १६. छं०सं० ३८९।
१७ छं०सं० ३८९। १८. छं०सं० ४००। १९. छं०सं० २१८। २० छं०सं० ४२७।
२१. छं०सं० ४६७। २२. छं० सं० १५९। २३. छं० सं० ६४। २४ छं० सं० ४६।
२५. छं० सं० ५०। २६ छं० सं० ८। २७. छं० सं० २३। २८ छं० स० २५।
२९. छं० सं० १८७। ३०. छं०सं० १३०। ३१. छं० सं० २०। ३२. छं० सं० ६७।
३३. छं० सं० ७१। ३४. छं० सं० २। ३५. छं० स० ४। ३६. छं० सं० ७७।
३७. छं० सं० ८८। ३८ छं० सं० १२१। ३९ छं०सं० १५९। ४० छं०सं० १६३।
४१ छं०स० २३१। ४२. छं०सं० ३७४। ४३. छं०सं० ४६५। ४४ छं०सं० १९४।
४५ छं० सं० २। ४६ छं० स० ६। ४७. छं० सं० १०। ४८. छं० स० ३४२।
४९. छं० सं० ६। ५०. छं० स० ४७। ५१. छं० स० १९३। ५२ छं० सं० २१८।
५३. छं०सं० ५०। ५४ छं० सं० ४६।

अव्यय

अव्यय पदों को, प्रायः, कई समुदायों में विभक्त किया जाता है। यथा—

१. क्रिया विशेषण,

२. सम्बन्धवाचक,

३. समुच्चयबोधक तथा

४. विस्मयादिबोधक।

प्रतापरासो में कई प्रकार के अव्यय पद हैं, जिनमें प्रमुख ये हैं—

१. व्रजभाषा के—'बहुरचौं'[1], 'जबई'[2], 'नांय'[3], 'ह्यां'[4]।

२. राजस्थानी के—'यत'[5], 'वत'[6], 'लार'[7], 'वति'[8]।

३. खड़ी बोली के—'जब'[9], 'कब'[10], 'न'[11], 'जितनो'[12]।

४. विदेशी—'दर'[13], 'सालिम'[14]।

किन्तु नं० २ और ४ से सम्बन्धित पदों की संख्या कम है। अधिक संख्या व्रजभाषा में प्रयुक्त अव्यय पदों की है।

प्रायः कहा जाता हैं कि अव्यय का रूप परिवर्तित नहीं होता, उस पर लिंग, वचन, क्रिया, कारक आदि का प्रभाव नहीं पड़ता, परन्तु बोलने और लिखने के प्रकार हो सकते हैं। जैसे नीचे लिखे उदाहरणों में—

ख० बो० 'वहाँ' ~ [वत][15] [वति][16] [वतै][17]]उत][18] [उतै][19] [वहां][20]।

ख० बो० 'यहाँ' ~ [यत][21] [इति][22] [यतै][23] [इत][24] [इतै][25] [ह्यां][26] [यहा][27]।

ख० बो० 'नहीं' ~ [नै][28] [न][29] [नांय][30] [नही][31] [नाहिं][32]

ख० बो० 'और' ~ [अरु][33] [अर][34] [रु][35] [और][36]।

---

१. छं० सं० ११०। २. छं० सं० २२७। ३. छं० सं० ३९६। ४. छं० सं० ३४३।
५. छं० सं० ४१। ६. छं० सं० ४१। ७. छं० सं० ८२। ८. छं० सं० २३०।
९. छं० सं० ४५४। १०. छं० सं० २९८। ११. छं० सं० ८१। १२. छं० सं० १३।
१३. छं० सं० ३९९। १४. छं० सं० ६२। १५ छं० सं० ३६। १६. छं० सं० २३०।
१७ छं० सं० २६१। १८ छं०सं० ३०५। १९. छं०सं० ३१५। २० छं० सं० ८५।
२१. छं० सं० ३६। २२ छं० सं० २८९। २३. छं० सं० २६१। २४. छं० सं० ४१।
२५. छं०सं० ८५। २६ छं० मं० ३४३। २७. छं०सं० १६९। २८. छं०सं० ८०।
२९. छं० सं० ८१। ३०. छं० सं० ३९८। ३१. छं० सं० १६३। ३२. छं० सं० ८५।
३३ छं० सं० १६। ३४ छं० सं० २२३। ३५. छं० सं० ४५७। ३६. छं० सं० ८१।

ख० बो० 'सामने' ⌒ [साम्है][1] [साम्हो][2] [समाही][3] [साम्हीस][4]

क्रिया-विशेषण अव्यय—

पदों को नीचे लिखे प्रकारों के अंतर्गत प्रस्तुत किया जा रहा है—(केवल कुछ ही पद दिए जा रहे हैं)

१. कालवाचक—

'वेग'—बली राव प्रताप है 'वेग' लै हो ।[5]

'जवई'—सूरजमल सुत बोले 'जवंई'।[6]

'जवै'—वर भूप कियो दरबार 'जवै' ।[7]

'जब'—पहौंचस आनि अलवर किले त्रिकालद्र जाणीस 'जब' ।[8]

'बहोरचों'—जो कीन दीघ 'बहोरचों' स आन ।[9]

'ततकाल'—तज थान चले 'ततकाल' ही, स्याम धरम को होय बस ।[10]

'छिनक'—लंकापति रावण हन्यो, लई न 'छिनक' अवार ।[11]

'सदा'—सीस सहायक है 'सदा', लिये रषि रघुनाथ ।[12]

'कव'—मो बलकी यह वात प पातल जीवत देत 'कब' ।[13]

'वहुरौ'—षत मंत्री लिषी भूप कों 'वहुरौ' दिये पठाय ।[14]

२. स्थानवाचक—

'पछैस'—'पछैस' राज रणवास लीन ।[15]

'आगे'—'आगे' जलेब कुंतल स कीन ।[16]

'अगैस'—पचरंग रंग 'अगैस' पास ।[17]

'लार'—लिये 'लार' दल सवल वार सूजा सत्तापति ।[18]

'लारै'—भुज बंधु 'लारै' भवानी उमंगै ।[19]

'साम्है'—उमराव लीन 'साम्है' पठाय ।[20]

'साम्ही'—बासाये 'साम्ही' सुरति, राजकवर की रीति ।[21]

'समाही'—यते हुल हाथी 'समाही' धकाये ।[22]

---

१. छं० सं० ३८९ । २. छं० सं० ३९० । ३. छं० सं० ४०८ । ४. छं० सं० ४३२ ।
५. छं० सं० ८५ । ६. छं० सं० २२७ । ७. छं० सं० ४०४ । ८ छं० सं० ४५४ ।
९. छं० सं० ११० । १०. छं० सं० ४९ । ११. छं० सं० ५ । १२. छं० सं० १६२ ।
१३. छं० सं० २९८ । १४. छं०सं० ३५१ । १५. छं० सं० ६४ । १६. छं० सं० ६४ ।
१७. छं० सं० ३८९ । १८. छं० सं० ८२ । १९. छं० सं० ५५ । २०. छं० सं० ३८९ ।
२१. छं० सं० ३९० । २२. छं० सं० ४०८ ।

'ह्यां'—करिय कुंच नजब नर 'ह्यां' ते ।[१]

'यत'—परे षेत 'यत' वत घन भारे ।[२]

'यतै'—'यतै' सूर साथै सिरै हाथ वाहै ।[३]

'इत'—'इत' सुनतैस भूपदल छाये ।[४]

'इतै'—'इतै' राज व्रजराज नजीम छुटे ।[५]

'तित'—तुम सामिल हम होय चलै जित 'तित' यक डोरीय ।[६]

'वति—'वति' चढ़ आये नजब दल, यत चढ़िये व्रजराज ।[७]

'वतैं'—'वतै' मारि लौ मारिल्यौ वीर बोलै ।[८]

'उतै'—यतै दल येक 'उतै' दल तीन ।[९]

'उत'—यत यक भनि 'उत' तीन गिनि मन फंदन दल जोइये ।[१०]

'जित'—तुम सामिल हम होय चलै 'जित' तित यक डोरिय ।[११]

'जहां'—कोप्यो है माधव नृपति अनजल 'जहां' ले जाय ।[१२]

'वहा'—सुनै कौन की को 'वहा' जान हारो ।[१३]

'यहा'—कहै नृपति वर वैन कहत तुम सो 'यहा' को है ।[१४]

'कहां'—देस पति तजि देस कौ सजी सेन 'कहां' जात ।[१५]

'इति'—'इति' अधिपति अमावतिवारो ।[१६]

३. प्रकारवाचक—

'इसो'—'इसो' जाणी व्रजराजई, मुरधर हुंडै मोड़ ।[१७]

'यसो'—अमर नाव कीयो 'यसो' करै होड़ को और ।[१८]

'यसो'—'यसी' जान कै राव परताप बोले ।[१९]

'असी'—धन मिलि धरती बूझत 'असी' ।[२०]

'असेस'—'असेस' होय रघुनाथ पाट ।[२१]

'कैसी'—दुरि दिषण अब कीजै 'कैसी' ।[२२]

'कैसे'--अब देषे 'कैसे' बने तुरक तकत यह देस ।[२३]

'किसी'—'किसी' होय सीता हित सोधो ।[२४]

---

१. छं० सं० ४१ । २ छं० सं० ४१ । ३. छं० सं० २६१ । ४. छं० सं० ४१ ।
५. छं० सं० ८५ । ६. छं० सं० ९१ । ७ छं० सं० २३० । ८. छं० स० २६१ ।
९. छं०स० ३१५ । १०. छं० सं० ३०५ । ११. छं० सं० ९१ । १२. छं० सं० ६७ ।
१३. छं० सं० ८५ । १४. छं० स० १६९ । १५. छं० सं० ६६ । १६. छं० सं० २८९ ।
१७ छं० सं० ९० । १८. छं०सं० १५६ । १९. छं०सं० १६३ । २० छं०सं० १३३ ।
२१. छं०सं० ६ । २२. छं०सं० ४४१ । २३. छं० सं० २२८ । २४ छं० सं० १५ ।

'यों'—परतापराव 'यों' अरज कीन ।[१]

'यौं'—पातलराव वचन 'यौं' बोले ।[२]

'यसी'—अलिगवर से साहि ताहि तिन 'यसी' सुनाई ।[३]

'इम'—काम कल्याण कोपे 'इम' राज ।[४]

'जिसी'—करिहैस देषि जो 'जिसी' होय ।[५]

'वरवर'—'वरवर' ढोरत सीस ।[६]

'भिनभिन'—'भिनभिन' बरनन करो, ठाम नाम गुन गाय ।[७]

'सजोर'— रहत नेम नरपत नगर राजा राव 'सजोर' ।[८]

४. परिमाणवाचक—

'तमाम'—किलके नकीब कीनी 'तमाम' ।[९]

'अति'—नगर सु डहरा नांम ठांम कहियत 'अति' भारिय ।[१०]
बंचत क्रोध कियो 'अति' भारी ।[११]

'घोर'—डंका त्रमाट गहरंत 'घोर' ।[१२]

'जितनी'—जो विद्या 'जितनी' पढ़ी, बालमीक गुरु कीन ।[१३]

'वड'—वदि मोला वानत्त कछी-कछी 'वड' भारिय ।[१४]

'नैक'—नर नर 'नैक' न त्यागत टेक ।[१५]

५. स्वीकार तथा निषेधवाचक—

'नैं'—हम बलकी अब बात 'नैं' ।[१६]

'नै'—भूप पूजी भुजा । जानियो 'नै' दुजा ।[१७]

'न'—जान 'न' दूजो और कोऊ, पातिल सो रण सथ ।[१८]

'नांय'—मेरे मेरे 'नांय' विकांने ।[१९]

'नहीं'—'नहीं' राज आमेरि समरथ भूपं ।[२०]

'नाहिं'—'नाहिं' चले दिली दिस जहै ।[२१]

'नाहिन'—सिर पै 'नाहिन' स्याम है, यातै या घर आय ।[२२]

'नहि'—छितो छिलोहडि ठाम, नाम मोहन 'नहि' छानो ।[२३]

---

१. छं० सं० १०३ । २. छं० सं० ३६० । ३. छं० सं० २१८ । ४. छं० सं० २७ ।
५. छं० सं० २३६ । ६. छं० सं० १३४ । ७. छं० सं० ५२ । ८. छं० सं० ३४ ।
९. छं० सं० ६४ । १० छं० सं० ७७ । ११ छं० सं० ६५ । १२. छं० सं० २८३ ।
१३. छं० सं० १३ । १४. छं० सं० १५५ । १५. छं० सं० १३१ । १६ छं०सं० ३६१ ।
१७. छं० सं० ८० । १८. छं० सं० ८१ । १९. छं० सं० ३९६ । २०. छं०सं० १६३ ।
२१. छं० सं० ७२ । २२ छं० सं० ३५१ । २३. छं० सं० ५३ ।

'नाहीं'—'नाहीं' करू देस ह्माई दिषायो ।[1]

सम्बन्धवाचक अव्यय—

'लग'[2]—लरे मास चौबीस 'लग' लियो जोति गढ़ नजम नर ।

'दर'[3]—कहर कुंच 'दर' कुंच कर, कियो निकट घर आंन ।

'प्रति'[4]—पातिल पाटल सिंध 'प्रति' कहीये करो हम काज ।

'ता'[5]—'ता' पीछे अब वरन हौं, कूरमकुल के ठाम ।

'संग'[6]—दई राषि रिषनीन 'संग' वन घन ग्रहै निवास ।

'सहित'[7]—सुषधाम ठाम विलसे सबै, राज लोक सेना 'सहित' ।

'सारिय'[8]—गढ वावन घर षात जात येकै दिन 'सारिय' ।

'साथ'[9]—तीजै चढ़िये 'साथ' सब, मगि पातिल पति नूर ।

'समेत'[10]—सवै राम संगी भये, ते परवार 'समेत' ।

'तै'[11]—करिय कुंच नजब नर ह्यां 'तै' ।

समुच्चयबोधक अव्यय—

१. संयोजक—

'अरु'[12]—मिलि सेना सो नजब दल, 'अरु' तोवै घन पठ ।

'अर'[13]—पुरुषसिंह संतोष से, 'अर' संग काका मान ।

'रु'[14]—कहां कैरु जरजोध कहां पांडौ 'रु' पंचधर ।

२. विभाजक—

'कै'[15]—'कै' अलवर मो ले रहे 'कै' अलवर मैं लेहु ।

३. विरोधसूचन—

'न........न'[16]—जीते 'न' कोय 'न' कोय हार।

४. परिणामसूचक—

'ताते'[17]—'ताते' सल्हा एक यह कीजे । चलन ठांम राजगढ़ कीजे ।।

'याते'[18]—सिर पर नाहिन स्यांम है 'यातै' या घर आय ।

५. संकेतसूचक—

'ज्यो'[19]—भाज्या ऊपर जाय 'ज्यो', छत्री धरम न होय ।

---

१. छं० सं० ९७ । २ छं० सं० २३३ । ३. छं० सं० ३९९ । ४. छं० सं० ४१२ ।
५. छं० सं० १८ । ६. छं० सं० ११ । ७. छं० सं० ७८ । ८. छं० सं० ३१० ।
९. छं० सं० ६३ । १०. छं० सं० ५६ । ११. छं० सं० ३४३ । १२. छं० सं० ३०७ ।
१३. छं०सं० २२३ । १४ छं०सं० ४५७ । १५. छं०सं० ३३९ । १६. छं०सं० २४६ ।
१७. छं० सं० ३७१ । १८. छं० सं० ३५१ । १९. छं० सं० १३६ ।

६. प्रतिरूपसूचक—

'मनु'[1]—'मनु' इन्द्र गजै अवजैस भुमै।

'मनों'[2]—'मनों' वासरा की भई रैन कारो।

'मनौं'[3]—पछें कटक चढ़े 'मनौं' इन्द्र घटै।

'मनो'[4]—षदारी षरंते 'मनो' वाज वाजी।

'मनु'[5]—'मनु' धर ऊपर दावस दीन।

'मनू'[6]—'मनू' वासरंग की भई रैन कारी।

'मानों' ~ [मनु] [मनों] [मनौं] [मनो] [मनु] [मनू]।

विस्मयादिबोधक अव्यय—

इस प्रकार के अव्यय पद पुस्तक में कम ही मिलते हैं—

'रे'[7]—है 'रे'! कोऊ या वार यौ वैन बोले।

'मर मर'[8]—'मर मर'! माचि रही दल दोय।

'रर रर'[9]—'रर रर'! रण दलो पड़ि अवाज।

'धिक'[10]—'धिक' तुमको कहियत।

'जय जय'[11]—'जय जय' गणपति देव, देव सेवत सुभकारिय।

अव्यय-पदों की कुछ विशेष बातें—

१. अव्यय-पदों के रूप स्थिर नहीं हैं; खड़ी बोली में जो पद आजकल एक रूप में ही लिखे जाते हैं, प्रतापरासो में उसके अनेक रूप मिलते हैं। उदाहरण अन्यत्र दिए गए हैं।

२. अव्यय-पदों में व्रजभाषा के रूपों का आधिक्य है, स्थान-स्थान पर राजस्थानी, विदेशी पद भी मिलते हैं। आधुनिक खड़ी बोली के अव्यय-पद भी काफी हैं।

३. अव्यय-पदों के आधार पर भाषा के सम्बन्ध में कोई विशेष निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते।

४. इस स्थान पर सभी अव्यय-पदों को देना कोई विशेष अर्थ नहीं रखता था, अतः नमूने के तौर पर कुछ ही पद दिए गए हैं। चेष्टा इस बात

---

१. छं० सं० ३७। २. छं० सं० १८७। ३. छं० सं० १८७। ४. छं० सं० १८७।
५. छं० सं० २०३। ६. छं० सं० २३१। ७. छं० सं० ८५। ८. छं० सं० १३१।
९. छं० सं० १३१। १०. छं० सं० ७८। ११. छं० सं० २।

की अवश्य की गई है कि आकृति की दृष्टि से पदों का रूप स्पष्ट हो जाय।

५. प्रतापरासो के क्रियाविशेषण अव्यय अनेक श्रेणियों में रखे जा सकते हैं। यहाँ केवल प्रचलित प्रकार ही दिए गए हैं और उदाहरण देने में भी संयम से काम लिया गया है।

उपसर्ग

‘प्र’ { [प्र] [पर]

[प्र]—‘प्रबल’[1] ‘प्रवाण’[2] ‘प्रमाण’[3] ‘प्रताप’[4] ‘प्रछालिय’

[पर]—‘परनाम’[5] ‘परवेस’[6] ‘परताप’[7] ‘परवीन’[8] ‘परभाव’[9]

‘अप’—‘अपमता’[10] ‘अपभाय’[11] ‘अपदल’[12]

‘सम्’—‘संतोष’[13] ‘संजोग’

‘अनु’ { [अनु] [अन] [उन]

[अनु]—‘अनुसार’[14]

[अन]—‘अनसार’[15]

[उन]—‘उनमान’[16]

‘अव’ { [अव] [औ]

[अव]—[अवदाय][17]

[औ]—‘औगुण’[18]

‘निर्’ { [निर्] [निर]

[निर]—‘निरभै’[19]

‘नि’ — ‘निगम’[20] ‘निवास’[21]

‘दुर्’ — [दुर्] [दुर]

[दुर्]—‘दुर्जन’[22]

[दुर]—‘दुरजन’[23]

‘वि’ — ‘विमल’[24], ‘वियोग’[25], ‘विजोग’[26], ‘विरूप’[27]

---

१. छं० सं० ९९। २. छं० सं० १२९। ३. छं० सं० २०३। ४. छं० सं० ३३। ५. छं० सं० ४६७। ६. छं० सं० ५७। ७. छं० सं० ४७। ८. छं० सं० ४६६। ९. छं० सं० २१६। १०. छं०सं० ९६। ११. छं० सं० २२४। १२. छं० सं० २९०। १३. छं० सं० २२३। १४. छं ०सं० ४६६। १५ छं० सं० २। १६. छं० सं० ५३। १७ छं० सं० २५१। १८. छं० सं० ३८५। १९. छं० सं० ९३। २०. छं० सं० २। २१. छं० सं० ११। २२. छं० सं० ६१। २३. छं० सं० १६६। २४. छं० सं० २। २५. छं० सं० ४४। २६. छं० सं० ३२२। २७. छं० सं० १६३।

'अधि' ∽ [अधि] [अध]

[अधि]

[अध]—'अधराज'[1], 'अधपति'[2]

'सु'—'सुठाम'[3], 'सुमर'[4], 'सुनाम'[5], 'सुनीत'[6], 'सुगम'[7]

'भ'—'भभीछन'[8], 'उप'—'उपजे'[9]

'अति'—'अतिमति'[10], 'अतिव्याकुल'[11]

'अ'—'अगम'[12], 'अलेख'[13], 'अमानी'[14], 'अगज'[15], 'अक्षर'[16]

'स'—'सकाज'[17], 'सलौन'[18], 'सजोग'[19], 'सतोलि'[20], 'साकुल'[21], 'सजोर'[22]

'अन'—'अनमानत'[23], 'अनमिल'[24]

अन्य—

'वे'—'वेहद'[25]—विदेशी

'धा'—'धाभाई'[26]—राजस्थान—अलवर, जयपुर—में प्रचलित शब्द (धातृ+बन्धु)

ये उपसर्ग कई प्रकार का कार्य करते प्रतीत होते हैं—

१. विलोम अर्थवाची—

'औ'—'औ'+'गुण'> 'औगुण'[27]

'अन'—'अन'+'मानत'> 'अनमानत'[28]

'अ'—'अ'+'सेष'> 'असेष'[29]

'वि'—'वि'+'जोग'> 'विजोग'[30]

२. उत्कर्षसूचक—

'सु'—'सु'+'नाम'> सुनाम'[31]

'अति'—'अति+'मति'> 'अतिमति'[32]

'अधि' ∽ [अध] ∽ [अध]+'राज > 'अधराज'[33]

---

१. छं० सं० २८६। २ छं० सं० २८९। ३. छं० सं० ११०। ४. छं० सं० १२७। ५. छं० सं० १००। ६. छं० सं० १२१। ७. छं० सं० २। ८. छं० सं० ६। ९. छं०सं० ३२। १०. छं०सं० २। ११. छं०सं० ९। १२. छं०सं० २। १३. छं० सं० २। १४. छं०सं० ५१। १५. छं०सं० ८८। १६. छं०सं० १। १७ छं०सं० १०। १८. छं० सं० १२१। १९. छं०सं० ४४। २०. छं०सं० २२१। २१. छं०सं० १०। २२. छं०सं० ३४। २३. छं०सं० १०५। २४. छं०सं० २०४। २५. छं०सं० १०८। २६. छं०सं० ४३७। २७ छं०सं० ३८५। २८. छं०सं० १०५। २९. छं०सं० २४२। ३०. छं० सं० ३२२। ३१. छं० सं० १००। ३२. छं० सं० २। ३३. छं० सं० २८६।

३. आत्पवाचक—

'अप' 'अप'+'भाय' > 'अपभाय'[1]

४. विशेषताद्योतक—

'प्र' 'प्र'+'ताप' > 'प्रताप'[2]

'वे' 'वे'+'हद' > 'वेहद'[3]

५. स्थापनाबोधक—

'स' 'स'+'गाजि' > 'सगाजि'[4]

६. अपकर्षसूचक—

'दुर्' 'दुर्'+'जन' > 'दुर्जन'[5]

'दुर' 'दुर'+'जन' > 'दुरजन'[6]

प्रतापरासो में प्रयुक्त कुछ प्रत्यय

रूप-तत्त्व में प्रत्ययों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके द्वारा शब्दों का रूप निर्माण होता है और किसी भाषा-विशेष का निश्चय करने में महत्त्वपूर्ण सहायता मिलती है। प्रतापरासो में अनेक प्रत्यय प्रयुक्त हुए हैं, उनमें से कुछ प्रमुख प्रत्ययों की सोदाहरण सूची नीचे दी जा रही है—

'अत'—'कहियत'[7], तैयत'[8], 'मिलेयत'[9], 'चहियत'[10], 'सुनैयत'[11]

'अन'—'चलन'[12], 'भिरतन'[13], 'लरन'[14], राषन'[15]

'अनि'—'दुलहनि'[16]

'आई'—'लराई'[17], 'पाई'[18]

'आत'—'बागात'[19], 'महलाति'[20] 'आत' ∽ [आत], [आति]

'आन'—'हीदवान'[21], 'तुरकान'[22]

'आंन'—'मुगलांन'[23]

'आनी'—'हिंदवानी'[24], 'तुरकानी'[25]

'आनी ∽ [आनी], [आणी]

'आणी'—हिंदवाणी'[26]

१. छं० सं० २२४। २. छं० सं० ४७। ३. छं० सं० १०८। ४. छं० सं० १०३। ५. छं० सं० ६१। ६. छं० सं० १६६। ७. छं० सं० २१०। ८. छं० सं० १०। ९. छं० सं० २१६। १०. छं०सं० २१६। ११. छं०सं० ३१०। १२. छं० सं० ९१। १३. छं०सं० ३३८। १४. छं० सं० ३५। १५. छं० सं० १८३। १६. छं०सं० १५३। १७. छं०सं० १८९। १८. छं०सं० ३३८। १९. छं०सं० १४०। २०. छं० सं० १४०। २१. छं० सं० २१५। २२. छं०सं० २१५। २३. छं० सं० ३४०। २४. छं०सं० १४४। २५. छं०सं० १४४। २६. छं० सं० १४४।

'आरि'—'मझारि'[१], 'मझार'[२] 'आरि' ∽ [आरि], [आर]

'आंण' ∽ [आंण], [आंणा]

'कमठांणा'[३], 'कमठांण'

'इय'— 'हमारिय'[४], 'तुम्हारिय'[५], 'उचारिय'[६], 'धारिय'[७]

सर्व० + 'इय'; √ + 'इय'

'इया'—'लालिया'[८], 'चीनिया'[९]

'ई'— 'दिषणी'[१०], 'धनो'[११] ~ 'धणी', 'फिरई'[१२], 'अरबी'[१३], तुरकी[१४], 'षदारो'[१५]

'एस'—'पदमेस'[१६], 'वषतेस'[१७], 'इंद्रेस'[१८], 'मंगलेस'[१९]

'ऐ'—'ठामै'[२०], 'मुकामै'[२१], 'निकासै'[२२]

'ओत'—'बलवधोत'[२३], 'मानसिंहोत'[२४], 'सूरसिंहोत'[२५], 'षगारोत'[२६], 'चत्रभुजोत'[२७]

'अंत'—'कोकंत'[२८], 'धरंत'[२९], 'गहरंत'[३०], 'टरंत'[३१], 'पणबंत'[३२], 'उबरंत'[३३], 'महुमंत'[३४], 'उरडंत'[३५]

'क'—'पूजक'[३६], 'धायक'[३७], 'पायक'[३८], 'दायक'[३९]

'का'—'राजधरका'[४०]

'की'—'बलकी'[४१]

'ग' ~ [ग], [इग]

'जाचग'[४२], 'जाचिग'[४३]

'च'—'करिहैच'[४४]

'जादा'—[जादा][४५], [जाद][४६]

'जुलषानजादा'[४७], 'षानजाद'[४८]

---

१. छं० सं० २१३। २. छं० सं० २५६। ३. छं० सं० १४४। ४. छं० सं० ६८।
५. छं० सं० ६८। ६. छं० सं० ९३। ७. छं० सं० ४। ८. छं०सं० १८७।
९. छं०सं० १८७। १०. छं०सं० ४०। ११. छं०सं० १२४। १२. छं०सं० २०८।
१३. छं०सं० ३८२। १४. छं०सं० ३८२। १५ छं०सं० ३८२। १६. छं०सं० १८१।
१७. छं०सं० ४६३। १८. छं०सं० १३०। १९ छं०सं० १३०। २०. छं०सं० ३७।
२१. छं०सं० ३६७। २२. छं०सं० १९। २३. छं०सं० ३६२। २४. छं०सं० १०३।
२५. छं०सं० १०३। २६. छं०सं० ३६२। २७. छं०सं० १०३। २८. छं०सं० २२५।
२९. छं०सं० १३१। ३०. छं०सं० २८३। ३१. छं०सं० १३१। ३२. छं०सं० २५२।
३३. छं०सं० ४१४। ३४. छं०सं० २५२। ३५. छं०सं० ४१४। ३६. छं०सं० २५२।
३७. छं०सं० ४१४। ३८. छं०सं० ११८। ३९. छं०सं० २५१। ४०. छं०सं० ११२।
४१. छं०सं० २७३। ४२. छं०सं० १८१। ४३. छं०सं० २९८। ४४. छं०सं० ३२७।
४५. छं०सं० १५५। ४६. छं०सं० ४२०। ४७. छं०सं० ११८। ४८. छं०सं० ४२०।

'त'—'अनमानत'[१], 'जोत'[२], 'आवत'[३], 'ढोरत'[४]

'देका'—हमीरदेका'[५]

'धर'—'मरुधर'[६] ~ [मुरधर][७], [मोरधर][८]

'धारी'—'धरमधारी'[९]

'न'—व्याइन'[१०], 'परचन'[११], 'मिरचन'[१२]—क्रिया + /न/

'दलन'[१३], 'देलन'[१४], 'कानन'[१५], 'परवानन'[१६]—संज्ञा + /न/

(एक वचन संज्ञा + न = बहुवचन संज्ञा)

'नु'—'मुगलानु'[१७]

'ब'—'आयब'[१८], 'बुलायब'[१९], 'ध्यायब'[२०], 'गहिब'[२१], 'कीनब'[२२]

'यत'—'विछायत'[२३]

'ये'—'बतराये'[२४], 'बतलाये'[२५]

'यो'—'चढ्यो'[२६], 'बहुरचो'[२७], 'बढ़्यो'[२८], 'कह्यो'[२९]

'रो'—'अघारी'[३०]

'रु'—राजरु'[३१]

'वत'—'वांकावत'[३२], 'बीकावत'[३३], 'कीतावत'[३४], 'नाथावत'[३५],

'कुंभावत'[३६], 'धीरावत'[३७], 'राजावत'[३८]

'वाई'—'पेषवाई'[३९]

'वाज'—'समरवाज'[४०]

'वाट'—'उलटिवाट'[४१], 'रजवाट'[४२]

'वार'—'रषवार'[४३]

'वारो'—'अंमावतिवारो'[४४]

---

१. छं०सं० १०५ । २. छं० सं० ११२ । ३. छं०सं० १२१ । ४. छं०सं० १३४ ।
५. छं० सं० १२१ । ६ छं० सं० ९० । ७. छं० सं० १०७ । ८. छं० सं० १०८ ।
९. छं० सं० १६३ । १०. छं०सं० १५० । ११. छं०सं० ७७ । १२. छं०सं० ३२५ ।
१३. छं०सं० ३४३ । १४. छं०सं० १०३ । १५. छं०सं० १३५ । १६. छं०सं० १९६ ।
१७. छं०सं० १९६ । १८. छं०सं० २६१ । १९. छं०सं० २९८ । २०. छं०सं० १४५ ।
२१. छं०सं० ३२५ । २२. छं०सं० ६ । २३. छं०सं० ३८० । २४. छं०सं० २१५ ।
२५. छं०सं० १०७ । २६. छं०सं० १७३ । २७. छं०सं० १३१ । २८. छं०सं० ११० ।
२९. छं०सं० १९९ । ३०. छं०सं० ११९ । ३१. छं०सं० ३८२ । ३२. छं०सं० ११४ ।
३३. छं०सं० ३६२ । ३४. छं०सं० ४५९ । ३५ छं०सं० २८१ । ३६. छं०सं० १२६ ।
३७. छं०सं० १०३ । ३८. छं०सं० १०३ । ३९. छं०सं० १०३ । ४०. छं०सं० १८० ।
४१. छं०सं० ८१ । ४२. छं०सं० २७२ । ४३. छं०सं० १७६ । ४४. छं०सं० २८९ ।

'वारे'—'आमेरवारे'[१]

'वोत'—'पचियाणवोत'[२], 'कलियानवोत'[३], 'सुरतानवोत'[४]

'वंति'—'गर्भवंति'[५]

'स'—अनेक उदाहरण (पद-पूर्ति प्रत्यय कहा जा सकता है)

संज्ञा+/स/ 'गोलास'[६], 'मंत्रीस'[७], 'नामस'[८]

सर्वनाम+/स/ 'मेरीस'[९]

विशेषण+/स/ 'त्रतीयेस'[१०], 'भारीस'[११]

क्रिया+/स/ 'पूछीस'[१२], 'थपेस'[१३], 'भनियेस'[१४]

अव्यय+/स/ 'पाछैस'[१५], 'अगैस'[१६], 'अैसेस'[१७]

'हार'—'कीनहार'[१८]

'हारो'—'करनहारो'[१९]

विदेशी—

१. 'आत'—बहुवचन द्योतक 'वाग़ात'[२०], 'महलात् (ति)'[२१]

२. 'बाज़'—रुचि लेने वाला 'समरबाज़'[२२]

३. 'आंन'—बहुवचन द्योतक 'मुगलांन'[२३]

४. 'जादा'—अपत्यवाचक 'जुलषानजादा'[२४]

संबंधित के अर्थ में—

१. 'आन'~'वान' 'हींदवान'[२५] 'तुरकान'[२६]—(पुल्लिंग)

२. 'आनी' 'हिंदवानी'[२७], 'तुरकानी'[२८]—(स्त्रीलिंग)

३. 'ई' 'दिषणी'[२९], अरबी'[३०], 'पंदारी'[३१]

४. 'ओत' अपत्यवाचक 'षगारोत'[३२], 'वलबधोत'[३३], 'चत्रभुजोत'[३४]

५. 'वत' ,, 'बांकावत'[३५], 'कोतावत'[३६], 'नाथावत'[३७]

---

१. छं० सं० ९७। २. छं० सं० १८१। ३ छं० सं० १०३। ४. छं० सं० १५२। ५. छं० सं० ८। ६. छं० सं० २३३। ७. छं० सं० ४७। ८. छं०सं० ४१६। ९. छं०सं० १०५। १०. छं०सं० २९। ११. छं०सं० १३८। १२. छं०सं० १०। १३. छं०सं० ७। १४. छं०सं० २१५। १५. छं०सं० २४६। १६ छं०सं० ३५५। १७. छं०सं० ५६। १८. छं०सं० १६३। १९. छं०सं० १६३। २०. छं०सं० १४०। २१. छं०सं० १४०। २२. छं०सं० ८१। २३. छं०सं० ३४०। २४. छं०सं० ११८। २५. छं०सं० २१५। २६. छं०सं० २१५। २७. छं०सं० १४४। २८. छं०सं० १४४। २९. छं०सं० ४०। ३०. छं०सं० ३८२। ३१. छं०सं० ३८२। ३२. छं०सं० ३६२। ३३. छं०सं० ३६२। ३४. छं०सं० १०३। ३५. छं०सं० ३६२। ३६. छं०सं० २८१। ३७. छं०सं० १२६।

'त'—'अनमानत'[१], 'जोत'[२], 'आवत'[३], 'ढोरत'[४]

'देका'—हमीरदेका'[५]

'धर'—'मरुधर'[६] ~ [मुरधर][७], [मोरधर][८]

'धारी'—'धरमधारी'[९]

'न'—व्याइन'[१०], 'परचन'[११], 'मिरचन'[१२]—क्रिया + /न/
'दलन'[१३], 'देलन'[१४], 'कानन'[१५], 'परवानन'[१६]—संज्ञा + /न/
(एक वचन संज्ञा + न = बहुवचन संज्ञा)

'नु'—'मुगलानु'[१७]

'ब'—'आयब'[१८], 'बुलायब'[१९], 'ध्यायब'[२०], 'गहिब'[२१], 'कीनब'[२२]

'यत'—'विछायत'[२३]

'ये'—'बतराये'[२४], 'बतलाये'[२५]

'यो'—'चढ्यो'[२६], 'बहुरचो'[२७], 'बढ़चो'[२८], 'कह्यो'[२९]

'रो'—'अघारी'[३०]

'रु'—राजरु'[३१]

'वत'—'वांकावत'[३२], 'बीकावत'[३३], 'कीतावत'[३४], 'नाथावत'[३५], 'कुंभावत'[३६], 'धीरावत'[३७], 'राजावत'[३८]

'वाई'—'पेषवाई'[३९]

'वाज'—'समरवाज'[४०]

'वाट'—'उलटिवाट'[४१], 'रजवाट'[४२]

'वार'—'रषवार'[४३]

'वारो'—'अंमावतिवारो'[४४]

---

१. छं०सं० १०५। २. छं० सं० ११२। ३. छं०सं० १२१। ४. छं०सं० १३४।
५. छं० सं० १२१। ६ छं० सं० ९०। ७. छं० सं० १०७। ८. छं० सं० १०८।
९. छं० सं० १६३। १०. छं०सं० १५०। ११. छं०सं० ७७। १२. छं०सं० ३२५।
१३. छं०सं० ३४३। १४. छं०सं० १०३। १५. छं०सं० १३५। १६. छं०सं० १९६।
१७. छं०सं० १९६। १८. छं०सं० २६१। १९. छं०सं० २९८। २०. छं०सं० १४५।
२१. छं०सं० ३२५। २२. छं०सं० ६। २३. छं०सं० ३८०। २४. छं०सं० २१५।
२५. छं०सं० १०७। २६. छं०सं० १७३। २७. छं०सं० १३१। २८. छं०सं० ११०।
२९. छं०सं० १९९। ३०. छं०सं० ११९। ३१. छं०सं० ३८२। ३२. छं०सं० ११४।
३३. छं०सं० ३६२। ३४. छं०सं० ४५९। ३५ छं०सं० २८१। ३६. छं०सं० १२६।
३७. छं०सं० १०३। ३८. छं०सं० १०३। ३९. छं०सं० १०३। ४०. छं०सं० १८०।
४१. छं०सं० ८१। ४२. छं०सं० २७२। ४३. छं०सं० १७६। ४४. छं०सं० २८९।

'वारे'— 'आमेरवारे'[१]

'वोत'—'पचियाणवोत'[२], 'कलियानवोत'[३], 'सुरतानवोत'[४]

'वंति'—'गर्भवंति'[५]

'स'— अनेक उदाहरण (पद-पूर्ति प्रत्यय कहा जा सकता है)

संज्ञा+/स/ 'गोलास'[६], 'मंत्रीस'[७], 'नामस'[८]

सर्वनाम+/स/ 'मेरीस'[९]

विशेषण+/स/ 'त्रतीयेस'[१०], 'भारीस'[११]

क्रिया+/स/ 'पूछीस'[१२], 'थपेस'[१३], 'भनियेस'[१४]

अव्यय+/स/ 'पाछैस'[१५], 'अगैस'[१६], 'अैसेस'[१७]

'हार'—'कीनहार'[१८]

'हारो'—'करनहारो'[१९]

विदेशी—

१. 'आत'—बहुवचन द्योतक 'बाग़ात'[२०], 'महलात् (ति)'[२१]

२. 'बाज़'—रुचि लेने वाला 'समरबाज़'[२२]

३. 'आंन'—बहुवचन द्योतक 'मुगलांन'[२३]

४. 'जादा'—अपत्यवाचक 'जुलषानजादा'[२४]

संबंधित के अर्थ में—

१. 'आन'~'वान' 'हींदवान'[२५] 'तुरकान'[२६]—(पुल्लिंग)

२. 'आनी' 'हिंदवानी'[२७], 'तुरकानी'[२८]—(स्त्रीलिंग)

३. 'ई' 'दिषणी'[२९], अरबी'[३०], 'षंदारी'[३१]

४. 'ओत' अपत्यवाचक 'षगारोत'[३२], 'बलबधोत'[३३], 'चत्रभुजोत'[३४]

५. 'वत' ,, 'बांकावत'[३५], 'कीतावत'[३६], 'नाथावत'[३७]

---

१. छं० सं० ९७। २. छं० सं० १८१। ३ छं० सं० १०३। ४. छं० सं० १५२। ५. छं० सं० ८। ६. छं० सं० २३३। ७. छं० सं० ४७। ८. छं०सं० ४१९। ९. छं०सं० १०५। १०. छं०सं० २९। ११. छं०सं० १३८। १२. छं०सं० १०। १३. छं०सं० ७। १४. छं०सं० २१५। १५. छं०सं० २४६। १६ छं०सं० ३५५। १७. छं०सं० ५६। १८. छं०सं० १६३। १९. छं०सं० १६३। २०. छं०सं० १४०। २१. छं०सं० १४०। २२. छं०सं० ८१। २३. छं०सं० ३४०। २४. छं०सं० ११८। २५. छं०सं० २१५। २६. छं०सं० २१५। २७. छं०सं० १४४। २८. छं०सं० १४४। २९. छं०सं० ४०। ३०. छं०सं० ३८२। ३१. छं०सं० ३८२। ३२. छं०सं० ३६२। ३३. छं०सं० ३६२। ३४. छं०सं० १०३। ३५. छं०सं० ३६२। ३६. छं०सं० २८१। ३७. छं०सं० १२६।

६. 'वोत' अपत्यवाचक 'कलियाणवोत'[१], 'पचियाणवोत'[२], 'सुरताणवोत'[३]

७. 'वारे' „ 'आमेरवारे'[४]—बहुवचन

८. 'वारो' „ 'अंमावतिवारो'[५]—एक वचन

९. 'का' „ 'राजधरका'[६], 'हमीरदेका'[७]

आधुनिक 'सिंह' के स्थान में—

१. 'एस'—'पदमेस'[८], 'वषतेस'[९], 'इंद्रेस'[१०], 'मंगलेस'[११]

कर्ता—

१. 'क'—'पूजक'[१२], 'धायक'[१३], 'पायक'[१४], 'दायक'[१५]

२. 'वार'—'रषवार'[१६]

३. 'हार'—'कीनहार'[१७]

४. 'हारो'—करनहारो'[१८]

---

१. छंoसंo १०३। २. छंo संo १८१। ३. छंo संo १५२। ४. छंo संo ९७। ५. छंo संo २८९। ६. छंo संo १८१। ७. छंo संo १२१। ८. छंo संo १८१। ९. छंoसंo ४६३। १०. छंoसंo १३०। ११. छंoसंo १३०। १२. छंoसंo १२८। १३. छंo संo २५१। १४. छंo संo ११२। १५. छंo संo २७३। १६. छंo संo १७६। १७. छंoसंo १६३। १८. छंoसंo १६३।

॥ श्री ॥

जाचीक जीवरण कृत

प्रताप-रासो

॥ श्री गणेशाय नमः ॥ अथ प्रताप रासो[1] लिष्यते[2] ॥

दोहा : गवरि[3]पुत्र गणराज कै, प्रथमहि लगुं पाय।
देबी दीनदयाल गुरु, सुभ अक्षर समझाय ॥[१]

छप्प† : जय जय गणपतिदेव देव सेवत सुभकारिय।
नमो शकति नारायण परम गुरु-चरण प्रछालिय ॥
अगम अलेख अपार कौण पावंत पार नर।
अति मति मो अनसार वुधितम करण विमल वर ॥
कर जोर जुगल विनती करों[4]‡ त्यों निवार आग्या लहों।
निगम सुगम हों[5] नृपति के कथि प्रतापरासो[6] कहों ॥[२]

दोहा[7] : ज[8] दिन न्याय नोवति बजी, उभजे पातिलराव*।
कौन मित्र सुषकंद है, दीन सत्रु सिर दाव ॥[३]

छप्प : तास तात के वंधु कवर मंगल व्रत धारिय।
जिन दीनो बल हुकम कहो कवि ग्रंथ उचारिय[9] ॥

---

१ (ख) राशो। १ (ख) लीखते। ३ (क) गौरि। ४ (क) करौं। ५ (ख) हो। ६ (ख) रासौ। ७ (ख) दोहो—कहीं 'दोहा', कहीं 'दोहो' दोनों रूप इस प्रति में मिलते हैं। ८ (ख) जा। ९ (ख) उचारिये।

---

†'छप्पय' के लिए 'छप्प', 'छप' आदि रूप ही दोनों प्रतियों में मिलते हैं।

‡राजस्थान में 'ओकारान्त' और 'औकारान्त' दोनों रूप मिलते हैं। यथा कौन, कोन, और, ओर – इनका यह रूप मौखिक मात्र है, लिखित में आजकल एक ही रूप चलता है। जिस समय यह प्रति लिखी गई, उस समय संभवतः इनमें भेद नहीं किया जाता था।

*प्रतापसिंह – इस रासो के नायक। इनके संबंध में विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें।

अठारैसै सैंतीस साष[†] संवत सो ह्वै यत।
पोष मास वदि तीज वार विसदत गुरु कहियत॥
चौपई[१] छंद दोहा छपै कथि जाचिग जीवन नाम है।
जुगम जोय वरनन करूं[२] जो कूरमकुल[‡] ठाम[*] है॥[४]

दोहा : आदि अजुध्या धाम[३] है, रामचंद्र अवतार।
लंकापति रावरण हन्यो[४], लई न छिनक अवार[५††]॥[५]

छंद पधरि : लगी न छिनक येको अवार।
दस आठ पदम पतिसेन लार[‡‡]॥
उमराव चरण अंगद धीर।
सुग्रीव जाम हरणवंत वीर॥
कीनों[६] विहंड सों दसौं सीस।
लीने उपारि सो भुजा बीस॥
कर जोर भभीछन[**] गहिव वोट।
बकसेस लंक सो वनी कोट॥
अैसेस होय रघुनाथ पाट।
थपेस लंक बहुरचौं स ठाठ॥
राकसां[+] देव वरने विरुध।
जीतये[७] राम[८] रघुवंस युध॥[६]

---

१ (ख) चौपैई। २ (ख) करु। ३ (क) (ख) घाम—लिपिकार की असावधानी।
४ (ख) हत्यो। ५ (क) (ख) अवतार। ६ (क) कीन्हौं। ७ (ख) जीतयें।
८ (क)(ख) रांम।

---

†रियासतों में रियासती संवत् की तिथियां अलग हुआ करती थीं। उदाहरणार्थ, जयपुर में भादवा सुदी २ से संवत् शुरु होता था।

‡कछवाहे राजपूत।

*स्थान, आदिस्थान।

††'अवार' पाठ (मेरे द्वारा)—जिसकी पुष्टि अगली पंक्ति द्वारा होती है।

‡‡'पदम अठारह यूथप बंदर'—तुलसी : रामचरितमानस। लार—पीछे (राजस्थान में अति प्रचलित)।

**विभीषण।

+राजस्थानी प्रयोग। पुस्तक की भाषा प्रमुख रूप से ब्रज प्रभावित है। परम्परा कुछ ऐसी थी कि काव्य के क्षेत्र में ब्रजभाषा और राजस्थानी को ही लिया जाता था, किन्तु क्षेत्र विशेष के प्रभाव से बचना कवि के लिए संभव नहीं होता। भाषा के इसी रूप को कुछ लोग 'पिंगल' कहना पसंद करते हैं।

दोहा : जीते राजा राम रण, आये नगर निवास।
ता पीछे[1] दसरथ-सुत, दिये सीत बनवास[2] ॥[७]

चौपाई[3] : राम राज आग्या यौं कीनी। ता पहुचावन[4] लछमन दीनी ॥
गर्भवंति सीता संग होई। ता तजि बंधि गए वन जोई ॥[८]

दोहा : अति व्याकुल सीता सती, परी महा बन ठाम।
ता बन यक तपसी तपत, बालमीक रिष नाम ॥[९]

छप्प : साकुल हिरनन[5] सैल कीन रिष बालमीक वनि।
लषि कमला द्रग जान आन पूछीस वात[6] जनि ॥
को पुत्री को तात कौंन तेरे पति कहियत।
वचन बोल मुष जोय होय सो मोहि वतैयत[7] ॥
बोलीस सीत सुनि हो पिता, जनक तात पहचानिये।
सुत चार राज दसरथ के, तिन दीरघ† पति जानिये ॥[१०]

दोहा : सुनत वचन रिष सीत के, संग लै गये तास।
दई राषि रिषनीन‡ संग, वन घन ग्रहै निवास ॥[११]

चौपाई : सीता रहत सवन संग सोई। उपजे पुत्र जुगल जग जोई ॥
लव कुस[8] नाम रहै वन भ्राता। बालमीक गुरु विद्यादाता ॥[१२]

दोहा : जो विद्या[9] जितनी[10] पढ़ी, बालमीक गुरु कीन।
निपुन होय गुण गण जिते, जथा जोग परवीन ॥[१३]

दोहा : वीते वन द्वादश वरष, सीता रहत सुठाम।
आई फुरमाई* अवध्रि, जब रिष बूझे राम ॥[१४]

---

१ (ख) पीछै। २ (क) (ख) 'वनवास'। ३ (क) (ख) चौपई। ४ (ख) पहचावन। ५ (ख) साकूलं हिरन मै। ६ (ख) वीन। ७ (ख) वतयत। ८ (क) कुश। ९ (ख) विद्या। १० (ख) जीतनी।

---

†उनमें बड़े—राम। जाचीक जीवण ने भी भारतीय नारी से पति का नामोच्चारण नहीं कराया है।
‡ऋषिपत्नियों के अर्थ में प्रयुक्त। रिषि पु०, रिषनी स्त्री०, रिषनीन स्त्री०, बहुवचन।
*फुरमाई—अलवर में अब तक इसी रूप में प्रयुक्त—फुरमाओ, फुरमाइए आदि रूप चलते हैं—फरमाओ, फरमाइए आदि कम सुने जाते हैं। फुरमाई का एक अर्थ राजस्थान में 'विधि आदेश' भी होता है। यहाँ 'फुरमाई' का यह अर्थ उपयुक्त है—जब 'विधि-निर्दिष्ट' समय आया।

चौपाई : किसी होय सीता हित सोधो। रिषि[†] बोले[१] विधि या विधि बोधो॥
छोड़ो सावकरण[‡] सजि सोई। सुत तुमरो पकरैगो सोई ॥[१५]

दोहा : सुनत राम रिष के[२] वचन, सावकरण सज कीन।
गयो बाज वनवास मैं, ते लव कर गह कीन ॥[१६]

दोहा : पीछैं पिलिये रामदल, अरु संग लछमण[३] भ्रात।
किये तास वनवास मैं, समैं जुध सुत तात ॥[१७]

दोहा : सुत सीता लै आवियै, राज अजोध्या[४] राम।
ता पीछे[५] अब वरन हौं, कूरम कुल के ठांम ॥[१८]

छप्य : कुस बसाय कसमीर राज रोतस रोतासै[*]।
सिवर त्रप ग्वालेर नल-स नरवल निकासै॥
द्यौसा ईसैसिंघ राज काकिल आंबावति[६††]।
हणू तास वति होय[७] जाणि जनरस हणवत[८‡‡]॥
भये तास[९] पजवन सुत दसहौं दिसि भूपति बलन।
धरा ढुंढाहड़[⁺] तास के भये मलैसी अरि-दलन ॥[१९]

दोहा : राज मलेसी सुत भये, बीजलराव बषान[१०]।
राजदेव तिनके भये, सुत कील्हनदे जान[११] ॥[२०]

दोहा : राजअंस[१२] कूतिल भये, सुत जोनसी नरेस।
उदैकरण तिनके भये, पुत्र चत्र[⁺⁺] परवेस ॥[२१]

१(ख वोले। २ (क) ×। ३ (क) लछिम। ४ (क) अयोध्या। ५ (ख) पीछै। ६ (ख) अंवाबति। ७ (ख) होय्। ८ (ख) हणवंत्त। ९ (ख) तेस। १० (ख, वषांन। ११ (ख) जांन। १२ (ख) राजाअंस।

---

†यह 'रिषि' वसिष्ठ आदि हो सकते हैं।

‡श्यामकर्ण घोड़ा।

*रोहतासगढ़ से अभिप्राय हो सकता है। 'राज रोतस' का अर्थ 'राजा रोहिताश्व' से लगाया जा सकता है।

††कहा जाता है—आमेर की स्थापना संवत् १०३७ में हुई और अम्बिकेश्वर महादेव के कारण आंबावति—आमेर आदि नाम पड़ा।

‡‡काकिल का पुत्र हणू हुआ, और हणू का पुत्र 'जनरस' (जान्हड़) को जानना चाहिए।

⁺जयपुर प्रान्त – यहीं की भाषा ढूंढाड़ी कही जाती है।

⁺⁺उदयकरणजी के चारों ही पुत्र प्रसिद्ध हुए और इसीलिए इन चारों के नाम यहाँ दिए गए हैं।

छप्प : प्रथम पुत्र नरसिंह नृप[1] आमैरि वषानिय।
वीयो[†] पुत्र वरसिंह थान मोजाद सु जानिय॥
वालो त्रियो सुनाम ठाम अमरसर अषिय।
सिव चोथो सिवब्रह्म ठाम नीदरगढ़ दषिय॥
सुत चतर भये नृपराज के, ठाम नाम गुन वरनिये।
पति आमैरि नरसिंह नृप, मोजादि[‡] राव वरसिंह किय॥[२२]

दोहा : सुतस राव वरसिंह के, हुयो[2] राव महराज।
नर नषत्र तिनके भये, कुल को करन समाज॥[२३]

दोहा : नरु राव सुत राव भये, ठाम जाज (जास) पर लाल।
उदोराव(लुहारै)सुत लाडषां, भाक भनत फतमाल[*]॥[२४]

दोहा : रिधूराव रावा-तिलक, तरण तेज परवाण।
हुये[3] राव फतमाल[††] सुत, कुल-मंडण कलियाण॥[२५]
पूजत भुज जयसाहि नृप, संगि सबल दल पाण।
मारि लिये मावास में, कामां राव कल्याण॥[२६]

छंद त्रोटक : काम कल्याण[4] कोपे इम राज।
लिये दल बादल संग समाज॥
किये फिरि रासत[5] को पैमाल।
जिये मिलियेस गये विचि काल॥
फबै गज बाज किलै गढ़ कोट।
घणैं उवरंतस आवत वोट॥
थरु थटिये सकला कमठाण।
नरु जस जुग प्रवाण वषाण[6]॥[२७]

---

१ (ख) न्रप। २ (ख) हुवो। ३ (ख) हुवे। ४ (क) कलियाण। ५ (ख) एसत।
६ (ख) वषांन।

[†]दूसरा।
[‡]इतिहास से प्रमाणित होता है कि वरसिंह को मोजमाबाद आदि ८४ गाँव प्रदान किए गए। यह स्थान फागी के पास है।
[*]'लुहारै' शब्द छन्द में नहीं लगता। 'लाडषां' मुगलों का दिया हुआ नाम था, वैसे इनका नाम लाड़सिंह था। चौथे चरण का अर्थ स्पष्ट नहीं है।
[††]फतमाल का अभिप्राय 'फतहसिंह' से है। 'मल' 'माल' का प्रयोग 'सिंह' के स्थान पर काफी मिलता है—'सूरजसिंह', 'सूरजमल', 'अषैसिंह', 'अषमाल' आदि।

दोहा : वषाण राव कलियाण के, स्याम धरम-सुध भाव।
ले कामा दे नृपति कौं, राज राजगढ़ राव[1] ॥[२८]

छंद हनूफाल : राजै राजगढ पति राव। गज बाजि चवरा[2] चाव[2] ॥
लड़ी लंगस फोजा पाण। जगबंध को कलियाण ॥
ते तास पुत्रस पंच। वोर अरावो पर अंच[†] ॥
अणदेस भुज अमरेस। षत्री षोहरै परवेस ॥
त्रतीयेस ईसरसिंह। पलवास धर पै धींग ॥
चौथे सुरीपट स्याम। पेषिये पाडै ठाम ॥
पाचमै सोधरस जाण। पाई प्रतछ वषाणि ॥
जिन दाडिये धर देस। तिन पाट पण अणदेस ॥
सुत हुये तेजल-राव। दनि षाग दाषणि दाव ॥[२६]

दोहा : तेजल के तिहु सुत भये, राजकरण रिष सीव।
राव स जोरावर भये, बंधू जालिम भींव[3] ॥[३०]

दोहा : जालम भीव सुजुग हुये[4], नरू ज मोटे‡ नाव।
जोधामालिस जगत मैं, वीजवाडि गढ ठाम ॥[३१]

दोहा : धजवंधी ध्रम धारिये, जोरावर जग जाय।
उपजे मोबतसिंह सुत, तप-पूरण परताप ॥[३२]

छप्य : तप-पूरण परताप भोमवर रच्यो विसंभर।
अरनि कंस रविवंस पाटपति नरू नृपति नर ॥
वलनि भीम वलवान कहर किरवान स डंडन।
करण स्याम[5]* के कांम सीस सत्रुन के षंडन ॥

---

१ 'राज गढ़पति राव'। २ चवृरा चावृ। ३ (क) भीम। ४ (क) हुग्र।
५ (ख) स्यांम।

---

†अर्थ स्पष्ट नहीं है।

‡'मोटे' का अर्थ राजस्थानी में बड़ा अथवा महत्त्वपूर्ण होता है। इस पुस्तक में कुछ शब्द तथा ध्वनियां राजस्थानी हैं; अलवर की प्रचलित बोलचाल की भाषा में भी यही बात देखी जाती है।

*'स्याम' शब्द स्वामी का द्योतक है। यहाँ 'स्याम' का अभिप्राय आमेर-नरेश से है।

प्रतापराव रावा-तिलक, जानि नृपति[1] चाहत चित।
आमेर-धणी रघुवंस-पति, पूजत भुज माधव[†] नृपत ॥[३३]

दोहा : रहत नेम नरपत नगर, राजा राव सजोर।
समैयसी चाढ़े[2] नृपति, गढ उनियारै ठोर ॥[३४]

छप्य : दलवल सबल समाज भूप भारै सगि लीनौं।
उनियारै गढ लरन कूंच[3] वर भोरहि कीनौं ॥
माधव नृपति नरेश पेसि परताप राव नर।
मंत्री ते हरसाहि दलो छत्रीस तास वर ॥
कुल कछवाहो तै सवै तारो और ठारस संगी।
किये कूंच दर कूंच दल उनियारै जुडयेस जगी ॥[३५]

दोहा : यत[‡] दल माधव नृपति के, करत जुध कर चाव।
नरू नाव सिरदार वत, गढपति गाढै राव ॥[३६]

छंद भुजंगी : दुहू वोर वोडै अरावेस घूमै।
मनु इंद्र गजै अवजैस[4] भुमै[*] ॥
कटै सूर सथै वहै हथ वीरं।
लगी वान वंदूक तेगस तीरं ॥
रची चौर यतै वतै राड भारी।
पनै राव परताप को आप धारी ॥
वतै[5] देषियो तो किलो वंध ठामै।
इतै चाहिये सो कियो स्याम कामै ॥
दिये[6] मोरछा जोड़ जो आप आगै।
लिये सथ संगे सोई अभंगै ॥
किये जुध जो पै किलै मास दोई।
मिले भूप सौ राव सिरदार सोई ॥[३७]

---

१ (ख) नृप। २ (ख) चाढ़ै। ३ (ख) कुच। ४ (क) आवंजस। ५ (ख) वनै। ६ (ख) दये।

[†]आमेर-नरेश माधोसिंहजी प्रथम—राज्यकाल सं० १८०७-१८२४।
[‡]यत—इधर; वत—उधर। इन्हीं से वतै, यतै (इतै); वती, यती।
[*]भुमै-भुम्मै, अवजै-अवज्जै।

दोहा : मिले राव सरदार नृप, ग्रमावति नरनाथ।
कहैं वचन यौं स्याम सों, दीने ग्राडे हाथ ॥[३८]

दोहा : कर सर उनयारो किलो, माधव नृपत सुनाम[1]।
ग्राये ग्रपदल राषि कै, रणतभवर[2]† गढ ठाम ॥[३९]

दोहा : नृप विछुरन ग्ररदल रहन, होय धरा सो वात।
मिलि हाडा दिषणी सुदल, धरी भूप दल घात ॥[४०]

चौपाई : वत हाड़ा दिषणी चल ग्राये। इत सुनतैं-स भूपदल छाये[3] ॥
मिले सार दल दोइ ग्रकारे। परे षेत यत वत घन भारे ॥[४१]

दोहा : लरे राव परताप रन, देषत सब दल साथ[4]।
षड़ी षेत किरमाल कर, तव[5] चोसर[6] हद हाथ[7] ॥[४२]

दोहा : स्याम[8] लाज के काम सौं, किये राव परताप।
हद भटवारै हथ भये, जोसु[9] सुनी नृप ग्राप ॥[४३]

दोहा : वडो[10] भूप माधव नृपति, राजा राव‡ संजोग।
कीनी ते करतार रचि, वरनो वहोरि वियोग* ॥[४४]

दोहा : भुजा दाहिनो भूप की, वैसत पातिलराव।
ता पर नाथावत रतन, धरेस दूजे दाव ॥[४५]

दोहा : कियो क्रोध पातल प्रबल, को नाथावत रतनेस††।
येक न दूजो होयसी, यो माधव सुनी नरेस ॥[४६]

छंद पधरि : सुनिई-स बात माधव सुजान।
कहिई-स वचन वरि या सुजान ॥

---

१ (क) (ख) नृपसुनाव। २ रणतभँवर। ३ (क) घ्याये (धाये पाठ ठीक रहता)। ४ (क) सथ। ५ (क) तद। ६ (क) वोसर। ७ (क) हृथ। ८ (क) श्याम। ९ (क) जो। १० (ख) वडे।

---

†रणतभंवर, रणस्तंभवर, रणथंभोर ग्रादि नामों से विदित।

‡राजा—माधवनृपति; राव—परताप राव।

*दोनों का ग्रलग होना।

††नाथावत रत्नसिहजी—उदयकरणजी की पाँचवीं पीढ़ी में पृथ्वीराज हुए, जिनके १९ पुत्रों में से १२ के वंश चले—जो 'बारह कोठड़ियों' के नाम से प्रसिद्ध हुए। नाथावत इन्हीं में से थे। रत्नसिहजी राणी तँवरजी के पुत्र थे, जो ग्रपने ग्रन्य तीन भाइयों—पूर्णमल, भीमसिंह ग्रोर ग्रासकरण सहित ग्रलग-ग्रलग स्थानों के राजा बने। सामोद, चौमूं, ग्रलीराजपुरा ग्रादि इनके ठिकाने थे।

सुनिईस राव चरचा सुनाम।
बोलिये आप यह ठाम काम॥
कीनो करूर[†] माधव नरेस।
तजि दीन ठाम पातल प्रवेस॥
डेरास राजगढ़[1] ठाम दीन।
मंत्रीस बंधु सब बोलि लीन॥
बोले सु राव सब सुनत साथ[2]।
रिसये सु राव आमैरिनाथ॥
बोले सु बंधु मंत्री उचार।
परताप राव यह सला धारि॥
लरिया सुनृपति सो कथै लोग।
टरया सु स्यांम सौं यहै जोग॥
स्याम-द्रोह आगै न कोई।
कलियाण वंस सौं यह न होय॥[४७]

इति परताप-रासो जाचिग जीवण कृत वंस-वर्णन तथा नृप-विजोग नाम प्रथमो प्रभाव ॥१॥

द्वितीय प्रभाव

दोहा : मिलि मंत्री बंधू[3] सवै, कीनो वचन उचार।
देस त्याग अब दीजिये, और न कछू[4] विचार॥[४८]

छप्प : सुनी राव परताप आप तेही मनमानी।
कीनौ तै परवान कूच की तब ही ठानी॥
बजे नाद त्रमाट ठाठ रजपूत बाज सज।
रथ डोला रणवास लिये तब[5] सवै संग सज॥
तज थान चले ततकाल ही, स्याम धरम को होय बस।
हनवंत[‡] थान गिरवर[6] निकट कीने मुकाम परथम[7] दिवस॥[४९]

दोहा : कर मुकाम परथम दिवस, किये राज दरबार।
बोले पातल पाट पत, बंधू होयस लार॥[५०]

---

१ (ख) राजगड़। २ (ख) सथ। ३ (क) बंधु। ४ (क) कछु। ५ (क) सब। ६ (क) गिर। ७ (क) प्रथम।

---

†क्रूर।
‡संभवतः यह स्थान आधुनिक खेड़े के हनुमानजी के पास रहा हो।

छंद भुजंगी : सुनी ठाठ अमरेस कै पाट[1] पत्ति[2]†।
नरु नाव विसनेस है वड रती॥
सुनै ईस[3] रावत चैनम प्रवेसं‡।
सुनी सुत्त वेसो अषा* ईंद्ररेसं॥
सुनि सामतन ते तो रुद्र प्रवानी।
कहूं भाव बुधिस्यंह अरजै[4] अमानी॥
सुनै लार दरबार तन जोधवारे।
कहू नाव दुर्जन[5] स भारथ भारे॥
सुनै सुत्त जालिम के जुग जोई।
वैरीसाल मानं विजैगढ़ सोई॥
सुनै बात हमीर[6] तेहि सिधारै।
काका कहिये राव परताप वारे॥
सुनै[7] सूर सावंत महमत्त भारे।
सुनै गोड राठोड[8] रजवंस सारे॥
करै जुवाव बंधू यसोराव अंगी।
कला वंस सोई सवै आप संगी॥[५१]

दोहा : सज यतनी संगी भये, सकल वंस चित चाय।
भिंन भिंन वरनन करो, ठाम नाम गुन गाय॥[५२]

छप्प : ठाम षोहरा नाम, ठाठ अमरेस पाट भनि।
भये तास सुत तीन, करण, दुल्है, मोहन गिनि॥
करण षौहरै प्रगट, गढ दुलैसिंह जानौ।
छतो[9] छिलोहडि ठाम, नाम मोहन नहि छानो॥
करणा सुत जसवत भये, बंधू जालिम[10] जानिये।
जुगम जोय वरनन करूं, मत उनमान वषांनिये॥[५३]

---

१ (ख) पाठ। २ (क) पति। ३ (ख) इस। ४ (ख) अरजन अमानी।
५ (क) दुरजन। ६ (क) समीर। ७ (ख) सूनै। ८ (ख) राठोरी ठोड़।
९ (ख) छत्तो। १० (क) जामिल।

---

†'त्तु', 'त्त' पाठ अधिक उपयुक्त है।
‡ईकारान्त पाठ अधिक उपयुक्त है।
*आषा, अषा दोनों प्रचलित हैं, जिसका अर्थ अक्षय या पूर्ण है।

दोहा : दूजै दुलैसिंह सुत, छाजूसिंह सुभाल।
मोहन सुत संतोष वड, सालिम बंधु पुसाल[1] ॥[५४]

छंद भुजंगी : सजे ठाठ अमरेस के पाटपत्ती।
जसावंत जानौ विसन वडरत्ती॥
भुज बंधु[2] लारै भवानो उमंगै।
चढै वाघ भगवंत सिवदानस्यंघै॥
सजे साथ संतोष वातै प्रवानी।
सजे संग छाजू[†] सहाथै अमानी॥
चले जानि कै वास के लोग कंपे।
तिनै राषनै हेत जालिम थपे॥[५५]

दोहा : जालिम थपे षोहरै, ठाम राखने हेत।
सवै राव संगी भये, ते परवार समेत॥[५६]
पलवा ईसरसिंह वत, चैनसिंह परवेस।
सुत जुग ले संगी भये, अवैसिंह इदरेस॥[५७]
जुग जालिम के[3] राजई, वैरीसाल समान[4]।
वर विजोग संगी भये, तज्यो वीजगढ थान॥[५८]
कहियत[5] पाडै ठाव पर, राजै सुरियद स्याम।
नाथूसिंह तिनके भये; बंधव माधव नाम॥[५९]
सजसु[6] नाथूसिंह तव, भावसिंह संग जानि।
माधव सुत[7] बुधसिंह भणि, अरजन बंधु वषाणि॥[६०]
पाई ठाव सु जोध भणि, ता सुत सुषधर धीग।
ता सुत वंधव सजिये, दुर्जन भारथसिंह॥[६१]
चत्र ठाम[8] के बंधु सब, सालिम उतरे आय।
पंचम कहिये पाटपति, पातल कूच बजाय॥[६२]
प्रथम नगारै बाज सज, विये सस्त्र कसि सूर।
तीजै चढ़िये साथ सब, मझि पातिलपति नूर॥[६३]

---

१ (क) षसाल। २ (ख) बंध। ३ (क) कै। ४ (ख) सुमान। ५ (ख) कहित। ६ (ख) दो सजसु (दो-दोहा)। ७ (ख) सु। ८ (क) ठांव।

---

†छाजूराम हल्दिया का संकेत है।

छंद पधरि : किलके नकीब[†] कीनी तमाम।
दिसि दोय[१] दीठि होती सलाम॥
भुज दाहिनीस बंधू वषानि।
बाईस भुजा सब सेनि साथ॥
पछैस राज रणवास लीन।
आगे जलेब[‡] कुतिल स कीन॥
गहरै त्रमाट तासन अनंग।
फहरै निसान पचरंग रंग॥
सजै सुरंग सब सथ* हद*।
रुद हय[२] षुरासु निलगी गरद॥
पहौंचे सु जाय जावली ठाम।
डेरा[३] सु ढाल कीने मुकाम॥[६४]

दोहा : ढलि डेरा गढ़ जावली, पातिल उतरे जाय।
तहां राजत गजसिंह बत, मिले धीर बंधु धाय॥[६५]
मिलि धीरज बुझे बचन, पातिल सौ यक आत।
देसपति तजि देस कौ, सजी सेन कहां जात[††]॥[६६]
फुरमाये पातिल वचन, सुनौं धीर यक बात।
कोप्यो है माधव नृपति, अनजल जहां ले जात॥[६७]

छप्प : सुनिये राव प्रताप आप यक[४] अरज हमारिय।
रहिय दोय निसि च्यारि गांव यह ठांव[५] तुम्हारिय॥
कर पयाण परभात नृपति माधव पै जैहौं[६]।
जोरि जुगल कर जोइ होय सो भूपहि कहहौं[६]॥

---

१ (ख) दौय। २ (क) यह। ३ (क) डिरा। ४ (क) इक। ५ (ख) गांम।
६ (ख) हौ।

[†]प्रत्येक राज में 'नकीब' होते थे, जो राजा के आगमन आदि को घोषित करते थे।
[‡]जलेब का अर्थ घेरे से होता है। घेरा बना लिया जाता था। भवनों से घिरा होने कारण ही जयपुर में 'जलेब चौक' आज भी इसी नाम से प्रसिद्ध है।
*सथ्थ, हद्द—उच्चारण करने से उचित पाठ; इसी प्रकार सज्जै आदि।
[††]टॉड का कथन है कि प्रतापसिंह के चले जाने पर उसके स्थान पर खुशहाली राम (षुशाली हल्दिया) नामक एक व्यक्ति को माचेरी का सामन्त बनाया और नन्दराम को जयपुर दरबार में इनके स्थान पर नियुक्त किया। खुशहालीराम आगरे का प्रधानमंत्री भी रहा। प्रतापसिंह (जयपुर) की अनेक प्रकार की सहायता करने पर इन्हें 'राजा' की उपाधि प्राप्त हुई।

जो नृप रषै सब रहै नहिं संगि सब ली लीजिये।
धीर वचन यम उचरि जो कछु चितै सो कीजिये ॥[६८]

दोहा : फुरमाये[1] पातिल बचन, धीर रहों यह ठाम।
काम परै आमैरियै, मिलि हौ पातिल नाम ॥[६९]

छंद धीरज सीष सु ठांम। दीनी सु पातिल नाव॥
हनूफाल : ततकाल[2] कूच बजाय। चलिये सु सेन सुभाय॥
मुकाम दो मझ[3] कीन। ब्रज निकट डेरा दीन॥
घर षवर पहौंची जाय। को भूप उतरे आय॥
तहां इंद्रपुर सो ठांम। तन नगर[4] दीघ सुनाम॥
ब्रजराज सूजा[†] राज। सब सेन सुभट[5] समाज ॥[७०]

दोहा : मंत्री बुलाय महाराज कै, यौ पूछी ब्रजराज।
उमराव राव आमैरि कै, भेजे है किह काज ॥[७१]

चौपाई : बोले मंत्री वचन सुनाये। कर वियोग भूपति सूं[6] आये।
को नृप रषै तापै रहै। नाहि चले दिली दिस जहै ॥[७२]

दोहा : मंत्री छाजूराम सो, बूझत बोले बैन।
सुनि अवाज ब्रजराज[7] ही, आये पातिल लैन ॥[७३]

छंद नाराच[8]: अवाज ब्रजराज ही। सुनंत ले समाज ही॥
चढ़े सु पातिल दिसी। मिले सु आन हो सुषी॥
बचन बोलि वायकं। कहो सकाज लायकं॥
रहो सु जानि[9] के धरा। यहां वहां न अंतरा ॥[७४]

दोहा : रषि पातिल ब्रजराज ही, सूजा गये सु ठांम।
ता पीछे पातिल मिले, नगर दीघ निज नाम ॥[७५]

---

१ (ख) फुरमाय। २ (क) तन। ३ (ख) दोयम। ४ (ख) तनग। ५ (क) सुमर। ६ (ख) सूं। ७ (ख) वृजराज। ८ (क) (ख) नाराज (घोषत्व के अनुसार च-ज में और क-ग में बदलने की प्रवृत्ति देखी गई है। यथा : जाचिग—(जाचीक)। ९ (ख) सजान—उस अवस्था में पद पाठ इस प्रकार हो सकता है—'रहोस जान'।

[†]सूरजमल—भरतपुर नरेश। सूजा, सुजानसिंह, सूरजमल आदि नामों से विख्यात थे। शासन-काल संवत् १८१३ १८२० वि०।

चौपाई : अति महिमा मनहारस† कीनी। आदर सौं उठ आयस दीनी॥
निजर वाजि ब्रजराज कराये। बंधु-बंधु सिरपाव सजाये॥[७६]

दोहा : भांति-भांति ब्रजराज ही, साधे सब बिधि कांम।
षरचन को धन दरब दिये, राज लोग यक ठांम॥[७७]

छप्प : नगर सु डहरा‡ नांम, ठांम कहियत अति भारिय।
महल बाग बाजार[1], ताल तर सुगढ सुढारिय॥
वरण[2] च्यारि मभार, वैश्य छत्री ब्रह्म सूद्र।
ते दीनो ब्रजराज, जानि कै नरू नृपति नर॥
सुषधाम ठाम विलसे सबै, राज लोक सेना सहित।
रहन राव परताप की, सु रहै राज ब्रजराज जित॥[७८]

दोहा : किते कोट अटके कटक, किते किये रण जंग।
सूरजमल ब्रजराज के[3], जित-जित पातिल संग॥[७९]

छंद वेषरी : जुध कीने किते। मारि दीने फते॥
राव पातिल नरू। जानियो जो सरू॥
राज सूजै कही। आप हथै सही॥
कान कहु है नही। तेग दीनी दई॥
भूप पूजी भुजा। जानियो नै दुजा॥[८०]

दोहा : जान न दूजो[4] और कोऊ, पातिल सो रण सथ।
समरवाज* सूजै कही, देषे हलवर; हथ॥[८१]

छप्प : समै येक ब्रजराज साजि सब सेन सुभर भर।
कर पयान परभात कूच वजे†† दिली†† पर॥

---

१ से २ तक का पाठ (क) प्रति में नहीं मिलता—प्रतिलिपि करने में छूट गया होगा। ३ (क) ते। ४ (क) दूजी।

---

†राजस्थान में 'मनुहार' करने का रिवाज आज भी है।

‡भरतपुर जिले में डहरा नाम से अब तो एक छोटा-सा गांव मात्र है—किसी समय यह स्थान सैनिक महत्त्व रखता था।

*समर अर्थात् युद्ध में बाज के समान।

††वज्जे, दिल्ली पाठ करना उपयुक्त होगा।

लिये लार दल सबल वार सूजा सत्तापति।
गगन सूर छति छये दिसौहै वासर कीरत॥
मजलहि मजलहि मुकाम करि डेरा सु दीन जमुना सु तट।
रुहला नजीम दिली समझि पहोंची अवाज ते ता निकट[1] ॥[८२]

दोहा : कही नजीम सुत ही षवर, जो कछु करै सु दीन।
सूरजमल व्रजराज सौ, जुध येक मैं[2] कीन ॥[८३]

चौपाई : वार येक व्रजराज सुभाये। छड़ी सेन† लै सहज सुधाये॥
सुनि नजीम[3] फौजै चढ़ आई। कुरुछेतर मधि राड[4] मचाई‡ ॥[८४]

छंद भुजंगी : रची राड कुरुषेत्र दल दोय जुटे*।
इतैं राज व्रजराज नजीम छुटे॥
बहै गोल गोला तुपकै सु अछी।
बहै तीर तलवार बानै वरछी॥
कटै सूर सावंत महमंत भारी।
धरी नाहि पछै टरै नाहि टारी[5] ॥
यसी जानि कै आप सूजा स बोले।
है रे कोऊ†† या वार यौ बैन बोले॥
सितावी षवर फौज मै जाय दै हो।
बली राव परताप है बेग लै हो॥
सुनै कौन की को वहा जान हारो।
यतैं व्रजराजन कीनो हकारो॥
पडै सीस पै सीस दल दोउ जाके।
गिरै षेत सूजा गये सुरग लोके ॥[८५]

---

१ (ख) निकर। २ (ख) येकम। ३ (ख) तजी। ४ (ख राव। ५ ख) टारे।

---

†थोड़ीसी सेना।

‡सम्वत् १८२० में सूर्यमल ने दिल्ली पर चढ़ाई की। जिस समय वे थोड़े से लोगों के साथ शिकार खेल रहे थे, इन पर आक्रमण किया गया—बहादुरी तो बहुत दिखाई, किन्तु संख्या में कम होने के कारण वीरगति को प्राप्त हुए।

*अनेक शब्दों को द्विवर्ण के रूप में पढ़ना होगा—जुट्टे, नज्जीम, छुट्टे, तुपक्कै, अच्छी आदि। युद्ध-वर्णन में यह आवृत्ति बहुतायत से होती है।

††आधुनिक प्रयोग—अरे कोई है ?

दोहा : सुजा गये सुरलोक मझि, चढे सार रणधार।
बैठे ते ब्रजराज के, तिलक तेज जौंहार[†] ॥[८६]
तुरका लीधी तिमरलग, अब हिंदवाणी वार।
ब्रज देसा मैं उपज्यो, जगमग जोति जौंहार ॥[८७]

छप्प : अगत जोत जोहार वार अर पार अमल किय।
पारसि सो परवार लार[1] त्रिय लषि सेन लिय ॥
कूटि भदावर[2] देस लूट लीनी सब लछ्छण।
गजि अगज गढपती हांक सु किते सत्रु हनि ॥
तात वयर ततकालहि नाये तिही नजीम नर।
जग उद्योत जोंहार हुय सूरजमल सुत ब्रजधर ॥[८८]

दोहा : सूजा सूत जौहार जग, गाढै जोर गरूर।
दीघ ठाम निज ब्रजधर, सेन सुभर भरपूर ॥[८९]

इसो जाणी ब्रजराजई, मुरधर[3]‡ हंडै मोड।
विजैसिंह षत[4] भेजिये, जोहार जोग राठोड़ ॥[९०]

छप्प : षत भेजे राठोड़ मोड मुरधर सजोग लिखि।
दिसा तीन बस कीन धरा आमैरि चत्र दषि ॥
आ नसंक तजि संक है सुनि लीने मोरिय।
तुम सामिल हम होय चलै जित तित यक डोरीय ॥
बिजराज* लिषी ब्रजराज कौं षत बंचत कीजो चलन।
दीपदान आ देषियों हम तुम पहुकर[††] मिलन ॥[९१]

दोहा : षत वचत ब्रजराज के, ब्रजराज जौंहार।
धर आमैर मै देषिहौ, कहे बचन इक बार ॥[९२]

---

१ (ख) × । २ (क) भधावर। ३ (क) सुरधर। ४ (क) (ख) दोनों प्रतियों में 'ष' मात्र है। समाधान अगली पंक्ति से हो जाता है।

---

†जवारसिंह—जो सूरजमल के पश्चात् भरतपुर के राजा हुए। इनका शासनकाल सं० १८२० से १८२५ है।

‡मरुधर—मारवाड़ का संकेत। भरतपुर और मारवाड़ में सम्बन्ध अच्छे थे।

*विजैसिंह (विजयसिंह) जोधपुर नरेश। राज्यकाल सं० १८०९ से १८४४ वि०।

††पुष्कर।

छप्प : कर जोंहार दरबार बोलि यो बचन उचारिय।
कर पयान परभात धरा पछिम ससि धारिय॥
साजि सूर गज वाजि सबल[1] दल सेनि सुभर भर।
चढ़े दाय रण चाय सार समय निरभै नर॥
अरावै अवाज लै इंद्र गज प्रथम नगर मुकाम किय।
प्रताप जोगि जौंहार लषि हलकारा हथ षत दिये॥[९३]

दोहा : कोके पातिल राव पै, षत जौहार संजोग।
धर आमैरि मै देषि हौं, आगै हरवल होय॥[९४]

चौपाई : जोग जवाहर षत लिषि दीनी। ते पातिल कर कागद[2] लीनी॥
बंचत क्रोध कियो अति भारी। लियो लोन ता ऊपर डारी॥[९५]

दोहा : पता छता मनि अपमता, अमावति भुज आव।
वल बंधू ता नृपति के, लिषये आप जुवाव॥[९६]

छंद भुजंगी : लिषे[3] जोग जोहार कौं ज्वाब दीनी।
चले देस तापै भली बात कीनी॥
दिना[4] च्यार या व्रज को लौंन[5] खायो[6]।
नाहीं करू देस ह्याई[7] दिषायो॥
तजो धार[†] सोही तजोगे न जोई।
हमै देस आमैरि की सीष होई॥
हमै जानियो बंधु आमैरि वारे।
तमै[‡] देखनों ठाम सोही विचारे॥
कहीजो[‡] अगै आह मारैस सथै।
वहां आवते देषि हरवल हथै॥[९७]

---

१ (क) सब। २ (क) कागल। ३ (क) लिषि। ४ (क) ×। ५ (ख) लौने। ६ (ख) पायो। ७ (क) खाई।

[†]मत्स्य देश में 'धार' का अर्थ सशस्त्र शत्रु-पंक्ति भी होता है। सन् १९४७ की मेवात वाली 'धार' को बहुत-से लोग अब तक न भूले होंगे।
[‡]तमै, कहीजो आदि राजस्थानी प्रयोग।

दोहा : हरवल मो हथ देषियो, देषत दिस आमैरि।
पातल लिष जुवाव षत, चढिये तव तिह वेर ॥[९८]

छप्प : चढ़े राव परताप आप सव सेनि सुभर सजि।
करन स्याम के काम गाव डहरा[1] सुठाव तजि॥
बजि त्रमाट वीराट[2] ठाठ गजराज वाजि हद।
चले धाय रणचाय आप[3] आमैर वैर[4] वदि॥
इत चलिये पातिल प्रवल जव चलिये जोंहार वति।
पहोकर जोंहार वीजराज[†] मिलि मिलि पातलि आमैरपति ॥[९९]

इति परताप-रासो जाचिग जीवण कृत द्वितीयो प्रभाव ॥२॥

तृतीय प्रभाव

दोहा : मिलि पातलि आमैरपति, माधव नृपति सुनाम।
बंधु जानि आसन दिये, लिये दाहिनी ठांम ॥[१००]

चौपाई : नरेस पेसिले यों फुरमाये। बंधु बेर तुम बंधु जनाये॥
भ्रात जवाहर सुध वा घर की। लायक पता लाज वा घर की ॥[१०१]

दोहा : पातल कही नृपराज सों, कितो जट जोंहार।
यहै[5] पाट रघुनाथ को, पाट लषन दल लार ॥[१०२]

छंद पघरि[6]: परताप राव यों अरज कीन।
नृप माधवेस यों श्रवण लीन॥
नृप आप राज मंत्री बुलाय।
हरसाहि पेस गुरुसाहि आय॥
राजरु हमीरदे का स सोय।
दला सुभूप मोसलि होय॥
दरबार पूजि सदासिव भट।
जोड़ीस आणि रघुवंस थट॥

१ (क) (ख) वडहरा। २ (क) विराट। ३ (ख) ×। ४ (ख) वेर।
५ (क) यह। ६ (ख) छप्परी।

†विजैसिंह, व्रजराज, विजराज, वीजराज—राठोड़-नरेश का नाम कई प्रकार से लिखा गया है।

मरदान मार्नासिंह[1] होत ठाम।
कीरतसिंह[2] विक्रम सु नाम॥
नर नरू पाटपति पताराव।
सारीष वियो सरदार चाव॥
सेषा समंथ नवलेस वीर।
स्योब्रह्महरा[3] सिरदार धीर॥
षगारोत करणेस न्याय।
नर नाथवंत[4] रतनेस आय॥
पंचान ठाम कहिये षुस्याल।
कुमाण[5] चांदसी सत्रुसाल॥
रजधार राज[6]वत है दलेल।
कालियानवोत अरि दलन पेल॥
सुरतान चत्रभुजोत चाय।
वर वलवधोत[7] जोरिय सु आय॥
कीतावत कहिये सु ठाम[8]।
कुंभावत सूरसिंहोत नाम॥
रजधार राजधरका स जोय।
धर धीरावत कहिये[9] सु सोय॥
जोगी कछवाहा भामवोत।
कहिये हमीरदेका स जोत॥
नृप माधवेस दरबार दीन।
जोड़ेस जंग यतने[10] समीन॥
रघुवंस राजई जिते ठाठ।
नित तिलक भूप माधव स पाट॥
जिन हुकम येक दीनो सगाजि।
मंत्री सुवंधु सब सुनि समाज॥
आयो जवाहर करकै टेक।
बोलिये जुध कीजिये सु येक॥[१०३]

१-२ (ख) 'होत ठाम। कीरतसिंह'—इतना पाठ नहीं है। ३ (क) व्रह्महरा। ४ (ख) वत। ५ (ख) कुमाहरण। ६ (क) सज। ७ (क) धोत। ८-९ (ख) प्रति में 'सु ठाम। कुंभावत सूरसिंहोत नाम॥ रजधार राजधरका स जोय। धर धीरावत कहिये'—पाठ नहीं है। १० (क) पतने।

दोहा : सुनै राव उमराव सब, मंत्री सुनै सु ग्रैन।
हुकम कियो माधव नृपति, मंत्री[1] ग्ररज सु दैन ॥[१०४]

छप्प : यों मंत्री हरसाय ग्राप यक ग्ररज सु कीनिय।
धीरज के नृप जुध ग्रादि ग्रासा लग लीनिय ॥
वह नोकर तुम नृपति[2] क्रोध कापै यह कीजिय।
केते[3] सेनपति संगि हुकम काहू यक दीजिय[4] ॥
ग्ररज येक मेरीस यह जो नरेस सुनि लीजिये।
भेजि सदासिव भट कूं ग्रनमानत जुध कीजिये ॥[१०५]

दोहा : नृपति वचन हरसाय[5] के, किये पेस परवान।
भट सदासिव भेजिये, जो जोहार पै जान ॥[१०६]

चौपाई : नृपति हुकम डेरा भट बाहर। सो ग्रवाज सुनि श्रवण जवाहर ॥
मिलि मुरधरपति भटसों बतराये। सामहि समरथ लैंन पठाये ॥[१०७]

दोहा : भटन लिये वेहद दलन, मोरधर[†] पति की ठाम।
जहां ग्रानि जवाहर मिले, किये पूजन परनाम ॥[१०८]
यत जोंहार विराज वत, दल दरबार सु ठट।
मिल माझी पूछे वचन, बीच सदासिव भट ॥[१०९]

छन्द पधरि : कहिये जोहार किम किये ग्रांन।
विजराज मिलन पहोकर सनान[‡] ॥
उचारे बैन जौंहार जोय।
तुम जानि जान ग्रजान होय ॥
सजि राजसिंह कीय गंग-न्हान।
जो कीन दीघ वहोरचों स ग्रान ॥

---

१ (ख) इस प्रति में 'मंत्री' से लेकर 'नृपति' तक पाठ नहीं है। इस प्रकार की ग्रसावधानियाँ (ख) प्रति में ग्रनेक हैं। ३-४ (ख) प्रति में यह पूरी पंक्ति नहीं है। ५ (ख) हरसाहि।

[†] मरुधर।
[‡] (१) विजयराज मिलन, (२) पुष्कर-स्नान।

जिन हुकम नृप के कहे अन।
प्रवान परगना दोय दैन॥
प्रगना येक कामां† सुठाम।
दूजैस षोहरी† कहत नाम॥
जो कौन आन मै यही कजि।
लैहोस सोय जैहो न भजि॥[११०]

दोहा : तेज बचन जौंहार के, कहे वचन भट धीर।
मिलिये[1] माधव नृपति सौं[2], सदा तुम्हारो[3] सीर॥[१११]

छप्प : आपक तुम्हरे तात सदा पायक‡ वा घर के।
सूरजमल वदनेस* भूप कीनौं पति घर के॥
जोई होय जौंहार लैन सोही चलि लीजै।
कहो आप समझाय स्याम सौं[4] द्रोह न कीजै॥
बीचि पाडि ब्रजराज कौ, वाजी भिडत न पायगो।
जोडत माधव नृपति दल मोल जवाहर जायगो॥[११२]

---

१ (क) मेलये। २ (क) सु। ३ (क) तुहारौ। ४ (क) सु।

---

†कामा और खोहरी दोनों भरतपुर जिले में हैं।

‡सूरजमल और जयपुर-नरेश के संबंध बहुत अच्छे रहे थे। सर्वदा ही सूरजमल जयपुराधीश का सम्मान करते रहते थे और बदले में उन्हें भी स्नेह प्राप्त होता था। कहा जाता है, जब सवाई जयसिंह ने एक वृहद् यज्ञ किया, तो पुत्र के स्थान पर सूरजमलजी का ही अभिषेक कराया था। जवाहरसिंहजी से इतना न हो सका। इसका कारण, कहा जाता है, उनके भाई नाहरसिंह की स्त्री थी, जिसे जवाहरसिंह प्राप्त करना चाहते थे और जो माधोसिंहजी की शरण में चली गई थी। सूरजमल के लिए किसी ने प्लेटो और किसी ते यूलिसीज की उपाधियाँ दी हैं और इनके राज्य का विस्तार आगरा, धौलपुर, मैनपुरी, हाथरस, अलीगढ़, इटावा, मेरठ, रोहतक, फर्रुखनगर, मेवात, रिवाड़ी, गुड़गांव और मथुरा तक बताया गया है। इन्हें अपने समय का सर्वोत्कृष्ट योद्धा और योग्यतम शासक कहा गया है। दिल्ली को फतह करने के अवसर पर जब थोड़ी-सी सेना लेकर ये शिकार करने गए हुए थे, तब बलोचों ने धोखे से इन्हें मार दिया। इनका उठाया गया कार्य इनके पुत्र जवाहरसिंह द्वारा पूरा किया गया।

*भरतपुर के महाराज बदनसिंह, राज्यकाल सं० १७२२—१७५६ ई०। वैसे तो इनके २६ पुत्र थे, किन्तु इनमें चार प्रमुख थे—१. सूरजमल २. शोभाराम ३. प्रतापसिंह (वैर वाले जो बहुत ही साहित्य-मर्मज्ञ थे तथा जिनके दरबार में सोमनाथ, कलानिधि आदि प्रसिद्ध कवि रहते थे) ४. वीर नारायण। इनके १६ पुत्रों की संतानें चलीं, जिनकी १६ कोठरियाँ स्थापित हुईं—ये कोठरीबंद ठाकुर कहलाते हैं।

दोहा : यों सुनतैं भट के· वचन, बोले जो जोंहार।
यहां नृप दे दोय प्रगना, कै कर जुध क वार ॥[११३]

छंद सो सुनत वचन सुभट। जोरे जवाहर जट ॥
हनूफाल। तब नृपति पै षत दीन। ते बंच भूपति लीन ॥
उमराव मंत्री बोलि। उचार श्रीमुष षोलि ॥
कहिये सलह सु होय। मंगै प्रगन जट दोय ॥
राजरु अरज दिनि आनि। द्यो महाराज नौकर जानि ॥
नृप[1] कहे बचन सुभाय। देश्र न देंइ जो हरसाय[†] ॥
मंत्री सुनत बोले जोज। . ये लाइ मन द्यौ यक षोज ॥
उपजी लिषत षत उर हूक। षत्री षत किये दो टूक ॥[११४]

दोहा : षत्री मंत्री नृपति के, हरदरषन[2] हरसाहि।
जुध करन उर धारियो, भट षत बोलि पठाय ॥[११५]
जो अवाज विजराज[‡] सुनि, भट वहोरन परवान।
सेन राषि जोंहार संगि, कियो देस दिसि जान ॥[११६]

चौपाई : इत नृप नगर सुभट जु आये। वत जोंहार दरबार कराये ॥
बोल सुनासो यों सबही कों। करौ जुध जो राषन जी कों ॥[११७]

छप्प : करन जुध जोंहार वार सल. ि लि कीनिय।
पेस चत्र चोहान देस समरु[*] सग लीनिय ॥

---

१ (ख) प। २ (ख) हदरषन, (क) हैदरषन।

[†]मंत्री हरसाहि की ओर संकेत है।
[‡]विजैसिह।
[*]भरतपुर का प्रसिद्ध तोपची समरू और बेगम समरू इतिहास-प्रसिद्ध हैं। समरू का मूल नाम वाल्टर रैनहार्ड था।· इसका जन्म सं० १७७७ तथा मृत्यु सं० १८३५ बताये जाते हैं। यह फ्रांस के एक जहाज में खलासी होकर आया था। पांडीचेरी में जहाज को छोड़कर सौमर्स नाम से वह सेना में भरती हुआ। कुछ लोग उसे सोम्ब्रे भी कहते थे। इसने कई स्थानों पर काम किया—जैसे पांडीचेरी, ईस्ट इंडिया कम्पनी, अवध, बंगाल आदि। यह भरतपुर तथा जयपुर राज्यों की सेवा में भी रहा और उसके बाद शाह आलम के वजीर नजफखां की सेवा में चला गया। वहां से उसे सरधना का इलाका जागीर में मिला। यहां इसका, महल-जैसा, निवास-स्थान था, जिसमें अब स्कूल लगता है। इसने काश्मीर में रहने वाली जेबुन्निसा से विवाह किया, जो बेगम समरू के नाम से प्रसिद्ध हुई। वह भी एक लड़ाका स्त्री थी तथा सैन्य-संचालन में दक्ष थी। (डा० मथुरालाल शर्मा द्वारा दिए गए एक व्याख्यान के आधार पर)।

पूजक किरपाराम ठांम बैठे थिर प्रोहित।
चत्रसाल संग भाल हाल गुरु रामकिसन जित॥
पठाए सेष सैयद[1] मुगल जुलाषानजादा सजब।
जुद्ध वचन जौहार के कहै सुने दरबार सब॥[११८]

दोहा : जब जुहार कर सब सों, ...[2] सला लीन।
जुरनि जंघ आमैरी दिसि, बहुरि कूच तैं कीन॥[११९]

चौपाई : धके धके जोंहार जुध प्रवानै। जो नृप षवर सुनी दै कानै।
भूपति भर दरबार कराये। मंत्री सब उमराव बुलाये॥[१२०]

छन्द पधरि : वर कीन भूप दरबार दीप।
उमराव[3] जोय मंत्री समीप॥
कर क्रोध बोलि माधव नरेस।
जति किती जट तकिहै स देस॥
षत्रीस बोलि हरसाहि नाम।
करि होसु होय जो स्याम काम॥
कर जोर अरज गुरुसाहि कीन।
हरसाय[4] पेस गुरुसाहि[5] लीन॥
बोले सुराव परताप चाय।
जुरुहों स रारि[6] न्यारो सु जाय॥
बोले दलेल करि काम नेक[7]।
महाराज निमष की वेर येक॥
नर नाथावत रतनेस बोलि।
जिन करन जुध को वचन षोलि॥
राजरु हमीरदेका स जोय।
बोले सु बात होंनी सु होय॥
नृप बधु मानवत जो सुनीत।
कीरतसिंह विक्रमादीत॥

---

१ (ख) सैइद। २ (क) (ख) दोनों प्रतियों में ये शब्द नहीं हैं। ३ (ख) उमरा।
४ (ख) हरसय। ५ (क) गुरुसहि। ६ (ख) रारी। ७ (क) नेम।

करनेस बोलिये षगारोत।
सुनिहो स आप नृप जुध होत॥
बोले सु चाय चौहान रान।
अजमेरसिंह कहिये समान॥
जो आवत देस जौंहार कौन।
करिहौं स जुध सरिहै सलौन[1]॥[१२१]

दोहा : मिलि मंत्री उमराव सब, समर सला सब कीन।†
दे बीड़ा माधव नृपति, जुध हुकम जब[2] दीन॥[१२२]

छप्पय : षोलि भार भंडार दारू गोली गलान बटि।
झिलभ बगतर टोप वोप सामंत सूर जटि॥
चिलते पाषरि तुवक वान कमान वरछिय।
तीर तरगस वाज करन किरमालस अछिय॥
संग दिये अरावा इंद्र गज असी सहस नर वाज सजि।
करन[3] जुध जोंहार सौं नृपति[4] दलन वर बंब बजि॥[१२३]

दोहा : चाढे[5] दल जंपुर धनी, चढि पछिम दिसि धाय।
दलनायक षत्री किये, मंत्री ते हरसाहि[6]॥[१२४]
नरू नक्षत्र कुल पाटपति, श्याम सुधरम सुभाव।
भारे रघु भुज दाहिनी, कीनी पातल राव॥[१२५]

छन्द वाई वीर[7] बंधु ओर। सो कछावह कुल को ठोर॥
हनूफाल : चत्र भुजोत सेषसींह। षाग षागारोत अवीह॥
सुरतानवत सुर इंद्र। पचाणवोत समंद॥
वलभद्रवोत सो बलवंत। नाथावत मन महमंत॥
कलियाणवोत स धीर। का वाकावत वीर सधीर॥
राजावत सो रण रूप। कहिय मानवत वंधू भूप[8]॥
सब चढ़े सेन समाज। चौहान जादम राज॥

१ (क) ललौंन। २ (ख) ×। ३ (ख) करन कर। ४ (क) नृप। ५ (क) वाटे। ६ (क) (ख) रहसाहि। ७ (ख) ओर। ८ (ख) वंध।

†यह पूरी पंक्ति (ख) प्रति में नहीं है।

सीसोद हाडा सोइ। उभट [सुभट] षीची जोय ॥
दलवल सबल संग लीन। नदी† निकट डेरा दीन ॥[१२६]

दोहा : असी सहस नर वाजि सगि, सेना सुभर अनंत।
कीये डेरा नदी निकट, माधव दल महमंत ॥[१२७]

छप्प : जोय बात जोंहार आत ततकाल सुनी तव।
जोडि जूथ दरबार सथ सावंत सूर सव ॥
अनि बोलि मुष बैन आप समीर सु नायक।
कर नर टक नृप कटक धाय सूघे धकि आयव ॥
सुनि उमराव जोंहार के जुध सलह सब दीन गजि।
चढ़ि पैदल सामीस धकि वर वीरट त्रमाट बजि ॥[१२८]

दोहा : चढ़े जोर जोंहार धरि, कियो दलन दिस आन।
सो दल माधव नृपति के, पहोची षबर प्रवान ॥[१२९]

छंद भुजंगी : बजे फेर[1] नृप के दल में नगारे।
चढ़े सूर सावंत महमंत भारे ॥
पहले पिलै सो पताराव सथै[2]।
बहे जाय जोई हरवल सथै ॥
जानै जवाहर जो है नरूको।
अरावै हुकमै दिये आगि ठूको ॥
लगै संग की सेन गोला गरकै।
नरूराव[3] के पचरंगै फरकै ॥
होये धाय पांय सिरदार दोई।
कवर नाम मगलेस इंद्रेस दोई ॥
पीछे जुरे जाय सेना समाजै।
समै नाव उमराव हरसाहि राजै ॥
रच्यो मावडे‡ खेत दल दो विरुधं।
वतै जट जोंहार दल भूप जुधं ॥[१३०]

---

१ (ख) वेर। २ (ख) थै। ३ (ख) परूसव।

---

†संभवतः बाण गंगा।
‡जयपुर के ३० निर्णायक युद्धों में से यह भी एक है। इस प्रसंग में Thirty decisive Battles of Jaipur by Shri Narendra Singh of Jobner पठनीय है।

छंद मोतीदाम[†] :

उर उर सों नर[1] सोहै उछाह।
नर नर नेम लियो षग वाह॥
मर मर माचि रही दल दोय[2]।
सर सर सेल पडै झड होय॥
कर कर कायर रोम[3] सुकंपि।
षर षर मोर लई सिर चंपि॥
गर गर बजी अरव[4] विरट।
घर घर घोरत तास त्रमट॥
नर नर नैक न त्यागत टेक।
चर चर चंपत एक कूं एक[5]॥
छर छर होय छड़ा लस पार।
जर जर जोय बहै षग धार॥
झर झर श्रोन बहैत सुरंग।
नर नर रूप चढ्यो नर अंग॥
टर टर येक न येक टरंत।
ठर ठर ठीक सु पाव धरंत॥
डर डर त्यागि दियो दल दोय।
ढर ढर जो गज चामर होय॥
रण रण रचि रहो रण जंग।
तर तर तेग बहत अभंग॥
थक थक थाकियो रवि रथ।
दर दर टूट सूर सु मथ॥
धर धर तोवन के धम चक।
नर नर बाजि गजस गरक॥

---

१ (क) नरे। २ (क) दोई। ३ (क) सेम। ४ (क) गरव। ५ (क) येक।

---

†यहाँ कवि ने 'ॐ नमः सिद्धम्' के 'उ' 'न' 'म' 'स' से छंद पक्तियाँ आरंभ करते हुए सम्पूर्ण व्यंजनों से प्रारंभ कर पंक्तियाँ लिखी हैं। ङ, ञ, के लिए 'न' वर्ण का ही प्रयोग किया है, 'ण' को शब्द के अंत में लिया है। तालव्य 'श' के स्थान पर 'स' है और 'ह्' को छोड़ दिया है; 'ह' से आरंभ होने वाली पंक्ति का दूसरा चरण नहीं मिलता, क्योंकि वर्णमाला 'ह्' पर ही समाप्त हो जाती है।

पर पर पेलिये दल वहक[1]।
फर फर ते पचरंग फरक॥
बर बर षेत पड़े हरसाहि।
भर भर भट जोंहार भजाय॥
मर मर मांन पड़े चहुवान।
यर यर अजमेरी[2] सुराण॥
रर रर रण दलो पड़ि अवाज[3]।
लर लर लछमण कवार॥
वर वर लागि पड़े गुरुसाहि।
सर सर सूर किलकित धाय॥
षर षर षेत षीस्यो जोंहार।
सर सर नोवत नृपति दुवार॥[१३१]

दोहा : बाजी नौवत नृपति दल, षिस्यो षेत जोंहार।
आगे सेना सज कटक[4], गये भूप दल लार॥[१३२]

चौपाई : गये जवाहर[5] नगर निवासैं। म्हैलां[6] दीरघ भरत उसासैं॥
धन मिलि धरती बूझत असी। कहिये कंथ ढुंढाहर कैसी[†]॥[१३३]

दोहा : जो जोंहार पछितात अति, वर वर ढोरत सीस।
आय भूपदल दीघ सूं, रह (दस) घटि कोस पचीस[‡]॥[१३४]

छप्प : लीलई गाव सुठाम तहां छति छये नृपति दल।
जुध जीति वह भीति थाट वीराट फौज बल॥

---

१ (क) हक, (ख) वहफ। २ (क) जमेरी। ३ (क) वाड। ४ (क) सजटक।
५ (ख) जवार। ६ (क) महैलां।

[†]रानियों द्वारा राजा पर तीखा व्यंग है। आज का जयपुर प्रान्त पहले ढूंढाड़ नाम से प्रसिद्ध था। इसी से राजस्थानी की यहाँ बोली जाने वाली बोली का नाम 'ढूंढाड़ी' है। ढूंढाड़ यहां के एक प्राचीन स्थान का नाम था। बनेर नामक स्थान के पास ढूंढ नाम का एक प्रसिद्ध शिखर था, उसी से ढूंढाड़ नाम की उत्पत्ति हुई। इसी शिखर पर अजमेर-नरेश बीसलदेव ने तपस्या की थी। यह तपस्या उसने अपने अत्याचारों के प्रायश्चित स्वरूप की थी।

[‡]जवाहरसिंह का डीग से पच्चीस कोस इधर तक पीछा किया।

तहां राव उमराव संगि सला मिलि कीजिय।
माधवेस नृप पेसि देसन षत दीजिय॥
जाय जोंहावर घर धस्यों कहये सो अब करन हम।
राजाधिराज आमैरपति दल नायक दीजे हुकम॥[१३५]

दोहा : षत बंचे माधव नृपति, लषिये दल सुधि जोय[1]।
भाज्या ऊपर जाय ज्यो, छत्री धरम न होय॥[१३६]

दोहा : राजरु मोसल[†] राज के, दिये हुकम नृप जोय।
वहोरि कूच कीजे[2] पछिम, ठाम राजगढ़ होय॥[१३७]

छंद भुजंगी : इसों राजसी कों हुकम भूप होई।
वरै राव प्रताप सो राज[3] होई॥[‡]
जिनै व्रत घतै सु व्रजि देस त्यागे।
जुड़े जुध जौंहार सौं जाय आगे॥
धरै सीस सोही सरू स्याम लजै।
परै काम आमैरी को कीन कजै॥
जिसी ठांम जो राजसी जान कीज्यो।
हुकमै हमारो यही भांति दीज्यो॥
अमावती[4] राजगढ़ ठाम जोई।
तापै किला येक भारीस होई॥
इसो राजसी कूं हुकम भूप दीनो[5]।
लष ते षते वार दल कूंच कीनो॥
उठै भूमि की रैंग़ि फौजै अधेरा।
दिये राजगढ़ षेत जो जाय डेरा॥[१३८]

इति प्रताप-रासो जाचीक जीवण कृत मावडा जुध वर्णन त्रतिय प्रभाव॥३॥

---

१ (क) (ख) जाय। २ (क) कीयो। ३ (क) राव। ४ (क) अमरावती।
५ (क) (ख) दीनू।

[†]मोसल—एक प्रकार का निरीक्षक। यह पद रियासतों में अन्त तक चलता रहा।
[‡]राव प्रताप को युद्ध-सेवा और स्वामिभक्ति हेतु राजगढ़ प्रदान किया गया।

चतुर्थ प्रभाव

दोहा : थान जोड थिरथान है, राजा पातिल राव।
राजरु षेतन राजगढ़, गये चित करि चाव ॥[१३६]

छंद भुजंगी : गये राजसी दीठि दषी दरगा।
घनी वाय वागात तरु ताल जगा॥
बनी मंदिरं गोष महलाति सोई।
वैस उजलं वंस वाजार सोई॥
लषै राजसी जो जते काम कामं।
कहो नाहि कीला† वडी ठाम ठामं॥
दयो पातलंराव सौं वैन नीको।
बनै वौ तुमै है हुकम भूप ही को॥[१४०]

दोहा : यसो[1] वचन कह राजसी, कियो कटक मै जांन।
नृपति हुकम पातिल लिये, किये पेसि[2] परवान॥[१४१]

चौपाई : पातिल राव यसी उर धारी। किला वनावन की यक भारी॥
दीठि वोर चोकोरन दीनी। गिरनी‡ येक सुघर मन कीनी॥[१४२]

दोहा : बाघराज की डूगरी, लषी सुघाट सुधार।
निकट नगर ता सिषर गढ़, थपे पातल थार॥[१४३]

दोहा : पातिल कमठाणां किये, राज राजगढ़[3] भाल।
हिंदवानी हद रषना*, तुरकानी सिर साल॥[१४४]

छप्प : सम चौबीसै साल†† काल माधव महीप किय।
भैचक‡‡ सो परि भोमि जोमि नर जिते सोच जिय॥

---

१ (क) इसो। २ (ख) पिसि। ३ (ख) राजगढराज।

---

†'यहाँ किला नहीं है'—इसी हेतु प्रतापसिंहजी ने यहाँ किला बनवाया, जो आज तक देखा जा सकता है। व.ग, बगीचा, महल आदि अब भी विद्यमान हैं।

‡गिरि का स्त्रीलिंग गिरनी—पहाड़ी।

*भूषण की सी राष्ट्रीय भावना।

††माधवसिंहजी का स्वर्गवास संवत् १८२४ में हुआ और उनके उपरान्त पृथ्वीसिंह राजा हुए।

‡‡'भंचक्का' (विक्षिप्त) प्रयोग व्रजदेश में आजकल भी प्रचलित है।

तिही वार दल लार कोकि महाराव बुलायव।
सबै ठाम उमराव ध्याय आमावति आयव॥
नरपति निवास जुरिये[1] जुगल रघुवंसी अरै षलक।
माधव महीप महाराज सुत पीथलि[†] सिर दिनो तिलक॥[१४५]

दोहा : पीथल[2] सिर दीनों तिलक, करि रघुकुल के साज।
समरथ पातिल जानि कै, दई राज की लाज[‡]॥[१४६]

दोहा : तातकाल सुष सिर[3] तिलक, सुन्यो होत चहुँ फेर[4]।
दिली दषिण जोधपुर, बूँदी बीकानेरि॥[१४७]

दोहा : यों सुनि बीकानेर नृप, गजै[*] आप उर धारि।
पीथल है आमेर पति, दीजै ताहि कवारि॥[१४८]

चौपाई : कनक काम[5] गज बाज सजाये। नेगी दे नालेर पठाये॥
प्रोहित चालि पयानो कीनों। नृप पीथल सिर टीको दीनो॥[१४९]

दोहा : ले टीको पीथल नृपति, कीनो चलन समाज।
ब्याहन बीकानेर घर, आमावति के राज॥[१५०]

छप्पय : साजि बाजि गजराज सबल दल संगि भीर भर।
ब्याहन बीकानेर वेरि चढिये नरेस नर॥
हदि नोवति नदि वजी गजि डंका अमाट घन।
रचे सुरंग सब संग राग छतीस गाय गन॥
हसतीस बैठि दिस सह[6] लिये कनक मोज कीनी सुकर।
मुकतान मोर सिर चवर ढुरि सनू[7] ईंद्र उमग्यो सभर॥[१५१]

छंद पद्धरी : चलियेस राज पीथल नरेस।
नर नरू राव परताप पेस[8]॥

---

१ (ख) जुरव। २ (क) पीपल। ३ (ख) सेर। ४ (ख) फर। ५ (ख) कम। ६ (ख) दीस। ७ (क) मंन। ८ (ख) येस।

[†]पृथ्वीसिह— शासनकाल सं० १८२४ से सं० १८३४।

[‡]महाराज पृथ्वीसिंह (जिनकी अवस्था केवल ५ वर्ष की थी) आमेर के अधिपति हुए और राज्य की देखभाल और संचालन का कार्य राव प्रतापसिंहजी को दिया गया।

[*]महाराज गजसिंह (सं०१८०२ १८४४वि०)।

भुज दाहिनीस सजै सजोग ।
भुज[1] बाम ठोर उमराव और[2] ॥
चत्रभुजोत सेषा सु संग ।
कहिये षगारोत सो उमंग[3] ॥
नर नाथावत कलियाणवोत ।
पीचाण स्योब्रह्मपोत ॥
कुंभाहण सूरसिंहोत सोइ ।
सुरताणवोत वलभदित जोय[†] ॥
संग जिते जोय रघूनाथ ठाठ ।
तिन तिलक भूप पीथल सु पाट ॥
कीने कीतेक मजिलै मुकाम ।
पहोचे सुजाय[4] वा नृपति ठाम ॥[१५२]

दोहा : पहोचे पीथल ता नगर, वीकावत नृप जोर ।
वधि[‡] तोरन[5] चौरी चढ़े, कर कंचन की मोर ॥[१५३]

चौपाई : प्रात होत पीथल दल आये । वरि दुलहनि भये रैस बधाये[*] ॥
जाचिग[††] दसौं देस के आई[6] । आये जुड जाचन कू जोई ॥[१५४]

छप्पय : जाचिग आये जानि राव परताप आप नर ।
स्याम लाज कै काज बाज धन दिये वंटि वर ॥
ताजो वाजी वरत[7] तेज तुरकी ज षदारिय ।
वदि मोला वानत्त कछी कछी वड भारिय ॥

---

१ (क) भुम । २ (क) ओर । ३ (ख) स अमंग । ४ (ख) सुचाय । ५ (क) तारन । ६ (क) आये । ७ (क) करत ।

[†]चत्रभुजोत, षगारोत, नाथावत, कल्याणोत, पीच्याणोत, स्योब्रह्मपोत, कुंभारण, सूरसिंहोत, सुरताणवोत, वलभद्रोत आदि अनेक कछवाहीखांपें ।
[‡]तोरण मारना—विवाह की सुविदित प्रारंभिक क्रिया ।
[*]रैसवधाये—राजघरानों की सुपरिचित प्रथा ।
[††]याचक—मांगने वाले ।

जिन जोरा[1] वागो[2] वने सुलतान सजिस जीय।
अस[†] अंके जस तीन सै धनी राजगढ़ राव दीय ॥[१५५]

दोहा : अमर नाव कीयो यसो, करै होड़ को और।
दल लाड़ा दोई दये, राजा राव सजोग ॥[१५६]

दोहा : दूलह[3] वर पीथल नृपति, संग कीरत वर राव।
रानि सबै उमराव सब, चढि आये कर चाव ॥[१५७]

चौपाई : ब्याह भूप दिसि देस सिधाये। पीथल राव जयनगर आये ॥
पातिल राव संग व्रत धारी। दीन षग(नेम) नृपति भुजभारी ॥[१५८]

छप्पय : यसो राव परताप आप मति महाभीम बल।
स्याम धरम सुध भाव वदि वदित भूप दल ॥
ही दल ता गजराज बाज रजपूत सेन भर।
चढ़े चवर वध चाय[4] दाय अप[5] नरू नृपति नर ॥
देषत और दीसै न को पता राव सम पटतरै।
दल. आमैरा देस परि उमराव वंधु कित्ते धरै ॥[१५६]

दोहा : अमावती सम राजगढ़, नृप सो पातिल राव।
जवर[6] जानि राजरु दिये, हत नद गा के दाव[‡] ॥[१६०]

चौपाई : सहल करन कू राव सिधाये। बहरचौ दिसि डेरन कू आये ॥
मधि सत्रुन मिलि असी तोली। कियो कूर तकि दीनी गोली ॥[१६१]

दोहा : दगेस पातिल राव पर[7], कियेस दुरजन हाथ।
सीस सहायक है सदा, लिये रषि रघुनाथ[*] ॥[१६२]

छंद भुजंगी : लिये रषि रघुनाथ वर लोह लगे।
सुनी सथ सबै सु सोही उमंगे ॥

---

१ (क) जोटा। २ (क) वामो। ३ (ख) ×। ४ (ख) चाप दाप। ५ (क) आप। ६ (ख) जवरा। ७ (ख) प।

---

† 'अश्व' के अर्थ में।

‡ अर्थ स्पष्ट नहीं है। हतनदगांव केदाव से दो गांवों का अर्थ निकल सकता है। किन्तु इन गांवों का पता नहीं लगता।

* यह इतिहास-सम्मत तथ्य है।

कही कौन है सो यसी करन हारो[1]।
चलो चालि लैहो जहां जग्य भारो॥
यसी जान कै राव परताप बोले।
कहो आप सथ स यों बैन बोले॥
हम सुराज आमैरि के धरमधारी।
इसी नग्र नाही न चैही हमारी॥
करो जो यसी तो कहै स्याम द्रोही।
करी कीनहार सिरै दोस मोही॥
नहीं राज आमैरि समरथ भूपं।
वालै छतै बात ह्वै है विरूपं॥
ताते कहूं मै सुनो साथ सारो।
उरै दिसि चालनों जों हम[2] धारो॥[१६३]

दोहा : यते वचन सब सथ सों, पातिल कहे प्रवान।
रह न ठाम ही नग्र मझि[3], उतरे तहां स आंन॥[१६४]

दोहा : यती बात सुनि घात[4] की, आत रष[5] तिह वार।
उनियारे के राजई, नरू नाम सिरदार॥[१६५]

छंद पद्धरी : बूझीस बंधु[6] सिरदार सब।
कीनी किय आप यैस दव[7]॥
जो होय मोही दुरजन बताव।
मैं करूं जुध वन सों[1] स जाय॥
बोले सु राव पातल सु नाम।
तुम कीन बंधु जो बंधु काम॥
यह[8] ठाम राज रघुकुल कि जानि।
तोरी न जाय है नृपति कांनि॥

---

१ (ख) हारा। २ (क) ह। ३ (ख) मैझि। ४ (ख) घान। ५ (क) आतष।
६ (क) रंघु। ७ (ख) दाव। ८ (ख) षह।

---

[1]उनसों। 'इ' 'अ' 'उ' तीनों के स्थान पर यत्र-तत्र 'व' का प्रयोग मिलता है—विस, वोर, वन आदि।

बोलें सु राव सिरदार नाम।
नृप रीस रषि है[1] यही ठाम[2] ॥
जिन अरज सूप सो दई जाय।
दियेस सत्रु हमरो कढाय[3] ॥
देषिये दोय चौगान हाथ।
जो जीति हार आमेंरिनाथ ॥[१६६]

दोहा : अरज[4] राज पीथल निकट, दई राव सिरदार।
अरि नृप दीये निकारि कै, किये कूच तिह बार ॥[१६७]

दोहा : उनियारे गढ राज ही, गये राव सिरदार।
ता पीछे पातल मिले, लषि वियोग की बार ॥[१६८]

छप्प : जात राव परताप आप यह अरज सु कीनिय।
होय देस दिसि सीष श्रवरण भूपति सुनि लीनिय ॥
कहै नृपति वर वैन कहत तुम सो यहा को है।
बूझै ताहि सचाहि वात सला सम जो है ॥
बोले सुराव नृपराज सों करत याद फिर आय है।
येक बिर देसन दिसा हुकम जानि कै पाय है ॥[१६९]

दोहा : दे बीरा देसन दिसी, दई सीष नृपराज।
आवत पातिल ठाम पर, साजे सेन समाज ॥[१७०]

छंद हनूफाल : साजेस तेज तुरंग। रजपूत सथ सुरंग ॥
पचरंग फरक फरद। गज ढले होदा हद ॥
कसि बाज घोर त्रमाट। सुष पाल रथ सु ठाठ ॥
चढियेस पातल राव। चढि चवर चावै चाव ॥
मुकाम मझि बजाय। थिर थांन उतरे आय ॥[१७१]

दोहा : थान गजसों[†] राजई, पातिल उतरे आय।
श्रवरण सुनी राजरु षवरि, राव पहोचे आय ॥[१७२]

---

१ (ख) रपि है। २ (ख) नाम। ३ (क) कटाय। ४ (ख) अर्जं।

[†] थाना गाजी — अलवर-जयपुर सड़क पर।

दोहा : राजसिंह पेरोजषां, मिलि बतलाये सोय।
जवर राव[1] कु जाय है, रहै भंग कछु होय ॥[१७३]

चौपाई : तातैं सलाहै[2] यक कीजै। हुकम नृपति कौ या विधि लीजै ॥
राव सुथान राजगढ जोई। ता पर हमैं मुहीमस होई ॥[१७४]

दोहा : राजसिंह पेरोजषां[3], मिलिये मतो सुधाय।
दई अरज कर जोर जुग, यों भूपति[4] दरबार ॥[१७५]

छंद पधरि : महाराज राजै नृपति नरेस।
दीजियेक हुकम प्रवेस ॥
हैं धणी राजगढ पता राव।
तापै सजाय देहै स दाव ॥
लरिहै स राव जो करै रार।
टरिहै स आप जो मिलै आरि ॥
दीजिये फोज संगै समुच।
दल हुकम होत वजै सकूच ॥
बोलिये बैन पीथल सगाजि।
संग दये फौज सेना समाज ॥
नृप हुकम होत वजेस घोर।
सजीस फोज जो जवर जोर ॥
चालीस सहस नर बाज[5] चंग।
घन सूर वीर सावंत संग ॥
अगै अराव तोवै सुठाठ।
पछै सु फौज बंकी[6] विराट ॥
मध्यम सेन दल दो अमांन।
भनि राजसिंह पेरोजषान ॥
रजपूत सबै रजवाट संगि।
लोहै स जोह करनै सु संग ॥

---

१ (क) राज। २ (ख) सलाह। ३ (क) षा। ४ (ख) भूति। ५ (क) (ख) बा। ६ (ख) बांकी।

करि करि सकूच कीने मुकाम।
पहुँचे सु आन बसवै† सु ठाम ॥[१७६]

दोहा : सुनि अवाज दल आनि की, धनी राजगढ़ आप।
मंत्री बंधु बोले सगी, लिये राव परताप ॥[१७७]

चौपाई : मंत्री छाजूराम बुलाये। ता सुन त्रहू‡ सुनत हि आये ॥
षुस्यालचंद दोलो नंदराम। जो तो करन स्याम के काम ॥[१७८]

दोहा : दूजै रामसेवग कहै, मंत्री मोजीराम।
जीवणषां होसदारषां¹, सेष मुसाहिब ठाम ॥[१७९]

छप्पय : चत्र ठाम के बंधु कोकि लीने स तास वर।
प्रथम षोहरा ठाम बीयो पलवास नामचर ॥
तीजै ज्याढो प्रछति पेषवाई सव चथै।
पंचवे राज लिये राज पातिल पति सथै ॥
यती ठाव कलियाण तण ने वुल वरीया वरु।
जुड़े आन दरबार जुग जते नाम बरनन करूं ॥[१८०]

छंद पद्धरी : प्रथम नाम अमरेस पाट।
विसनेस कहिये विराट ॥
बंधू भवान संग वाघधींग² ।
भगवंत भनों सिवदान संगि ॥
बंधू भुझार वर तास संगि।
लेंहो सजोह करनीस जंग ॥
काका सतोष समरथ सिंह।
भुजै षुस्याल सालिम अवीह ॥
कहियै संतोषसुत तिहै वार।
मगलेस नाम³ कूरम कवार ॥

१ (क) होसरदारषां। २ (ख) सोंग। ३ (ख) ना।

†बांदीकुई-अलवर रेलवे लाइन पर पहला स्टेशन। इससे कुछ ही मीलों पर राजगढ़ है।
‡छाजूराम के तीन पुत्रों ने इस पुस्तक में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान पाया है—इनके नाम हैं—१ खुशालीराम (कुशालीराम), २ दौलतराम, ३ नंदराम।

दूजैस संग काका प्रवान।
रण छाजुसिंह कहिये अमान॥
सुत कवर नाम जगतेस सोय[१]।
अमरावति जोरी जुगल जोय॥
दूजेस ईसरीसिंह[२] पाट।
है वनैंसिंह वत जुग विराट॥
कहिये सु नाम तिनके वषांनि।
अषमाल† बंधु अमरेस जानि॥
सुत कवर नाम सवै अवीह।
पदमेस नाम है सेरसींह॥
तीजैस स्याम के पाट सोय।
भनि भाव बंधु अरजन सजोय॥
तिनकेस सुत कहिये सवीर।
मेदसीह दुरजन सधीर॥
चौथे सु जोध कँ पाट जान।
भारथसिंह दुरजन समान॥
जुडिये सवार दरबार दीप।
परताप राव कुलपति समीप॥
पचमै येस काका सु आन।
हमीरस्यंह दुजै समान॥
षट वैससीनि रजवंस गोत।
कलियाणवोत पचियाणवोत[३]॥
वड गूजर वाकावत समोड।
चौहाण चाप‡ राठोड़ जोड़॥
धीरा हमीरदेका स सोय।
जोगी कछवाहा झाम[४] जोय॥

---

१ (ख) "सुत कवर नाम जगतेसरीसिंह कहिये अमान"। २ (क) सिंघ। ३ (ख) पचियणवोतत। ४ (ख) झाम झाम।

---

†अषैसिंह।
‡चाँपावत।

चंदेल राजधरका[†] स चाय।
निरवाण जादमो जोय आय ॥
दरबार राव[1] पातिल विराजि।
दीनो सुनाय यक हुकम गाजि ॥
आये सु भूपदल करन जंग।
चढ़िया सु राजगढ़ किला रंग ॥[१८१]

दोहा : यम पातिल दीनों हुकम, किये कूच तिहि वार।
मंत्री बंधू सेन रषि, बीजी[‡] ठांम विचारि ॥[१८२]

चौपाई : नाम कांकवारी गढ़ थानो। ता दिस पातिल कियो पयानो ॥
चढ़िये सेन छरी ले साजे। राषन रछिक ठाम विराजे ॥[१८३]

दोहा : पातिल पहुँचे जाय गढ़, षबर हुई दल आंनि।
राजसिंह पेरोजषां, सुनिये बात निधांन ॥[१८४]

छप्प : आत षबर यम बात संग सो ही बतराये।
राजसिंग पेरोज अंग अंगे सरसाये ॥
लिये बोलि उमराव चार सावंत सूर वर।
जुरे जूथ दरबार आदि दल जेते मनक वर[2] ॥
कहियो सुनाय सब सथ सो राजसिंह बोले वचन।
प्रात राजगढ़ राडि को जोगि जाग को है[3] रचन ॥[१८५]

दोहा : राजसिंह बोले वचन, सुनि सथ सो बात।
बीती निसा नकीब फिरि, रहो पहर को प्रात ॥[१८६]

छंद भुजंगी : बहै प्रात वजे दलौं सै नगारे।
अवाजै सुनत वाजि पलान धारे ॥
दूजै नगारै सजे सूर सथै।
लरे लोह पंचों कमानों सहथै ॥

१ (ख) व। २ (ख) नेम नम। ३ (क) ×।

[†]राजधरका, हमीरदेका, नरूका—इस प्रकार के भी कछवाहे राजपूत हैं।
[‡]दूसरा।

तीजै नगारै चढ़ी सेन सारी।
मनों वासरा[1] की भई रैनकारी[2] ॥
सर धारय सो अरावा स ठठै।
पछैं कटक चढे मनौं इंद्र घटे ॥
यसी राजगढ़ ठाम होती अवाजै।
आये कटकै रटकै सज काजै ॥
सुने तो यसी राजगढ़ ठांम मंत्री।
षुलाये जते भार भंडार जंत्री[3] ॥
चढ़े तेग तीरे कमानै वरछी[4]।
वटै दारु गोली वदूकै[5] स अछी ॥
वटै पाषरै टोप झिलम सझकै।
पटंबी चलत सभालै मलकै ॥
वटै जीन जोटे किलंकी सझकै।
वटै सेत ही गजगाह[†] गरकै ॥
वटै बाजि कंमैत लीला हरेई।
वटै लालिया चीनिया नुकरेही ॥
कछी अरबी तुरकी स ताजी।
षदारी षरंते मनो बाज बाजी ॥
वटै पातला राव के सूर सजें।
वजी त्रमाट चढे जुध कजें ॥[१८७]

दोहा : वति आये दल नृपति के, यति पातिल के सूर।
दुहू वोर लागे बहन, सार समर भरपूर ॥[१८८]

छंद भुजंगी : धकै सूर सोही भरै छोर छोहं।
परै रुंड मुंड गरकै स लोहं ॥

---

१ (क) वसरा। २ (ख) रनकारी। ३ (ख) पूरा चरण नहीं है। ४ (क) करछा। ५ (क) हूवकै।

---

*गजगाह-युद्ध—गज और ग्राह के पौराणिक आख्यान के आधार पर 'गजग्राह' अथवा 'गजगाह' का अर्थ ही 'युद्ध' हो गया।

वहै तेग[1] बानै कमांनै बरछी।
वहै गोल गोला लगै तोव अछी॥
वहैं रामचंगी जमूरा जजालै[†]।
वहै बीर बंदूक हथ सत्र नालै॥
फूटै कटै सीस होय टूक टूक[2]।
गिरं लोथ लोथं परे षेत कूकं॥
अैसी जुड़ी मास दो हुई लराई।
षिस्यो राजसी षेत बाजी न पाई॥
समै साल गुनतीस[3] होनै विरुधं।
वतै नृप फोजं पता से न युधं॥[१८६]

दोहा : हटे राजसी हो षटे, लरे राजगढ़ आय।
जो नृप पीथल पै षबरि, दीनी षत पठवाय॥[१९०]

चौपाई : मास दोय कीनी रण भारी। धाप गई धकि फौजै सारी॥
सर न राजगढ़ हम पै होई। हुकम नृपति कहो कीजे सोही॥[१९१]

दोहा : षत बंचै पीथल नृपति; सला धारि उर आप॥
आगल है या देस की[4], कोके[5] राव प्रताप॥[१९२]

छप्पय : लियो कोकि[‡] परताप आप नृप लिषे षास षत।
सरी तुमारी रारि आरि मिलिये सेवगियत॥
अवनि दाय कै भाय आट आगा लगि आइय।
उदैकरन नृप होय तास तन हम[6] तुम भाइय॥
षत जोजि बंचि[7] पातिल प्रबल जुध जीति किये चलन।
धनी राजगढ़ राजई नृप अमावति पीथल मिलन[8]॥[१९३]

---

१ (क) तेज। २ (ख) टकं। ३ (ख) ग्रनतीस। ४ (क) देकी। ५ (क) ×।
६ (ख) यह। ७ (क) वंदि। ८ (ख) मीलन।

[†]रामचंगी, जमूरा, जजालै, जजरवा अनेक प्रकार की तोपें होती थीं। जजाला तोपें ऊँटों पर रखी जाती थीं और आवश्यकतानुसार उनको नीचा-ऊँचा किया जा सकता था।
[‡]कोका – शब्द निमंत्रण के अर्थ में भी आता है। जैसे ब्याह का 'कोका' (निमंत्रण) सामान्यतः 'बुलाना' अर्थ होता है।

छंद नाग : त्रमाट वेर वजई[1]। समाज सेज सजई[2] ॥
गजैस बाजि चलयं। चवर सीस ढलियं ॥
नकीब बोल वान ही। हये परास ग्रान ही ॥
हुइ तमा तस्राम ही। दिसा दसौं[3] सलाम ही ॥
जबै[4] ल ज्वान जो बलं। कतार कोर कूतलं[5] ॥
सढाल[6] होर संग ही। फरक पंचरंग ही ॥
बजै मुकाम[7] काम ही। गये स नृप ठाम ही ॥[१६४].

दोहा : पहौंचे पातिल ता निकट, नग्र ग्रमावति नाम।
जो विदीत जग जानिये, रघुवंसी रति ठांव ॥[१६५]

चौपाई : सो ग्रवाज नृप सुनि है कानन। नर सामहि पठये परवानन ॥
परसत ही पातिल पन धारिय। नृप ग्रासन दे भुजा पसारिय ॥[१६६]

दोहा : मिलिये पीथल मेलि भुज, ते रघुकुल के राज।
कहीस पातिल राव सों, करन स्यांम के कांम ॥[१६७]

छंद पद्धरी : यम वचन बोलि पीथल नरेस।
सो सुनी राव पातिल प्रवेस ॥
कर जोरि जुगल यक ग्ररज कीन।
महाराज मोहि यह माफ कीन[8] ॥
करि है सजोय नर यसो कौन।
सरि है सजोय दरबार लौन ॥
रजपूत होय छत्री सु नाव।
टरिहै[9] न स्याम के करत काम ॥
मानैस जोय नृप हुकम येक।
जानै न दूजा य ग्रनेक ॥
वीजोस कौन जारंस हाथ।
जो दीन लीन ग्रामैरिनाथ ॥
कीजैस नृप जो सला जोय।
लीजिये ठांम ग्रब षुसी होय ॥[१६८]

---

१ (क) वजई। २ (क) सजयं। ३ (ख) सदों। ४-५ (क) पूरी पंक्ति नहीं है।
६ (ख) सडाहोरल। ७ (क) सुकाम। ८ (क) प्रति में पूरा चरण नहीं है।
९ (क) फरि।

दोहा : यों बोले पातिल बचन, नृप सू स्याम्र सुभाव।
बढचो[1] हरष[2] नृप यों कह्यो, राज राजगढ़ राव ॥[१९९]

इति प्रताप-रासो जाचीक जीवण कृत चतुर्थो प्रभाव ॥४॥

पंचम प्रभाव

दोहा : मिलि पातिल नृपराज सों, लई सीष तिह वार।
राज राजगढ़ थान पै, उतरे पातिल आरि ॥[२००]

छप्पय : दिली साहि सारीष जोय आमैरि नृपति नर।
ताही नृप[3] सारीष राव परताप भोमि भर ॥
अवनि लीन वंसि कीन दीन कोनसी अपन।
उथपन थे[4] थिरकरन करन ते थिर ते उथपन[5] ॥
परताप राव रावत तिलक जगत जोय नषतरू नरू।
पूरब पछिम उतर लग दषिण लग जानें सरू ॥[२०१]

दोहा : पूरन ससी सो सील तन, तेज तरन परवान।
ताहि चाहि[6] दिली धनी, देये[7] साहि परवान ॥[२०२]

छंद भुजंगी : दिये फुरमान दिलीपति साहि।
लिये सिर पातिल राव चढ़ाय ॥
कह्यो वतराव बहादर[8] तुम।
करो धर ऊपर धाय हुकम ॥
दये गज तेंग षिलत दुसाल[9]।
दये सिरपेच किलंगी भाल ॥
सजन मांहि मुरातव[†] लारि।
वजन साहिब नोवति वार ॥

---

१ (ख) हो ममं। २ (ख) रष। ३ (ख) नप। ४-५ (क) प्रति में इतनी पंक्ति नहीं है। ६ (क) वाहि। ७ ख) देषे। ८ (ख) षोहावर। ९ (ख) हुसाल।

---

†मुगल बादशाहों द्वारा माही मुरातब प्रदान करना बड़े सम्मान का सूचक था। अनेक देशी नरेशों द्वारा दशहरा के अवसर पर, अब तक, इनका प्रदर्शन किया जाता था। सं० १८३१ में प्रतापसिंह को एक स्वाधीन राजा मान लिया गया। प्रतापसिंह का जयपुर में भी कुछ हस्तक्षेप बना रहा।

यसो[1] पतिसाह कियो सनमान।
नरुधर पातिल वड प्रमाण ॥
किये अति पातिल राव उछाह।
हुई यह बात दोऊ दल राह ॥
यसो बल पातिल हुकम लीन।
मनु धर ऊपर दावस दीन ॥
लिये सब मंत्री बंधुह बोलि[2]।
कह्यो यक बचन श्रीमुख षोलि ॥[२०३]

चौपाई : हुकम साहि[3] को सोई[4] कीजै। दिसा दिसा सिर डेरा दीजै ॥
अवनी ऊपर अमल बजावो। अनमिल मारि मलैन मिलावो ॥[२०४]

दोहा : हुकम धणी पातिल दिये, लियेस मंत्री नाव।
कर सलाम तिह बेर ही, करन स्याम के काम ॥[२०५]

छप्प : प्रथम षुस्यालीराम[5] नाम[6] मंत्री सुबुद्धिवर।
दूजै दौलतराम स्याम के काम करन कर ॥
किये कूच तिहिवार लार फोज अराव घन।
वजे त्रमाट विराट ठाठ पचरंग सीस पन ॥
कियो पयान परताप ही स्यांम काम बंधू बलन[7]।
उत्तर षुस्याल दोलो दिषन दिसा दोय कीने चलन† ॥[२०६]

दोहा : मंत्री चढि महाराव के, लै संगि सुभर समाज।
गढ़पति भारे भोमियन‡, सुनियै सो आवाज ॥[२०७]

छंद पधरि : भजैस वास छंडै निवास।
सुनितैस सोय त्रमाट[8] तास ॥

---

१ (क) सो। २ (क) बंध्रु है। ३ (क) सार। ४ (ख) सो। ५ (क) नाम। ६ (ख) राम। ७ (ख) वरलन। ८ (क) सोयत्रसट।

---

†प्रतापराव के इन दो (हल्दिया) वीरों ने दोनों दिशाओं में विजय हेतु प्रस्थान किया। इनके अनेक विजय युद्धों का वर्णन जयपुर के श्री नरसिंहदास हल्दिया के पास उपलब्ध है।
‡भोमिया का अर्थ है खेती करने वाला अथवा भूमि पर बलिदान होने वाला।

गढ़पति सोय सजैस कोट।
उबरै[1] आज तो यही वोट॥
आयेस राव दल जवर जोरि।
भरियेस भेंट भोमिया ओर॥
सजै सजोय गढ़पती दाय।
भजेस बेर गोला बजाय॥
मुरडेस जोही लीनेस मारि।
उबरेस जोय मिलियेस आरि॥
फिरईस आन परताव राव।
घर अनद सोय लगेस पाव॥
नरपती साहि सुपाय हद।
धर हुकम कोस दोसै[2] गरद॥[२०८]

दोहा : हुकम धरनि दो सै गरद, आन फेर घर आप[3]।
गढ़ गढ़ मै बैठक वणी, पातिल राव प्रताप॥[२०९]

छंद *हनूफाल :*
अलवर साहि नगर[4] सुनांम। बंके किला विकट सुठांम॥
हणवत गढ कहियते हद। बहादुरपुर सु नाम मरद॥
हयगढ़ सेरगढ़ नौगांव। ठीकस रामगढ़ सो ठाम॥
कामां कीलो हो कमठांण। राजसथान[†] प्रतछि प्रवाण॥
पीपलषेडै गढ़स वीर। जठै सावत्तारा सीर॥
भनत गुसावलीगढ़ पूर। थाणथट रावत सूर॥
गिर पर केसरोली वीर। रणवर वायबोली धीर॥
लछिमनगढ़ लरन सुबंक। देषत मानबै दल संक॥
मांनु मोजपुर सु नाम। जानों समोचि ससि ठांम॥

१ (ख) ऊपरै। २ (क) (ख) सो दोय। ३ (ख) आय। ४ (क) नगर।

[†] प्रायः यह कहा जाता है कि प्रान्त के अर्थ में 'राजस्थान' नाम टॉड द्वारा ही सर्वप्रथम प्रयुक्त हुआ। इतिहास के प्रो० डॉ० बनारसीप्रसाद सक्सेना ने भी इसका समर्थन किया है। 'प्रतापरासो' में इस शब्द (राजस्थान) का राजधानी या रियासत के अर्थ में कई बार प्रयोग किया गया है।

षेड़ै जंध जोधा जूप। मालिम करण रोड़ा भूप ॥
भणि वावडी षेडै वीर। जंगो जामडोली धीर ॥
रणपर राजपुर गढ़ सूष। दंगो दुवि कहियत दूठ[1] ॥
अरि नर गुढ़ीगंज गरूर[2]। वडवो विकत्तकि सूर[†] ॥
सैथल वीर कोटस बड़। सरसो सरू पातिल गढ़ ॥
अजबगढ़ विजैपुर स विराट। भणि बहोरो थोगन थाट[3] ॥
बसईस कहियत भाल। गाजीथान सत्रुन साल ॥
टहलों कांकवाडी नाम। गनदागिरा विकट सुठांम ॥
कहत षुस्याल गढ़ सु नाम। प्रथीसिंहपुर पर परवान ॥
मानों मालषेडै[4] ठोर। वरणीयत झेले और ॥[२१०]

दोहा : गढ यतने महाराव के, ते कथि वरने नांम[5]।
तिन सिर तषत सु राजगढ़, रहनि आप सुख ठांम ॥[२११]

छप्पय : गढगढ़ा विराट[6] ठाव रजपूत रषि घन।
जुरत जंग नंहि मुरत सूर सावंत सत्रुहन ॥
हासलाह सहैवास तेज तातेस तुरंगम।
घन गोला बारूद तोव तोवकै मझि संगम ॥
लरन यसो पर दल लषत जालिम जोइ जवर जड़।
राव राज के गढ यते सो सवा[‡] सिरै[7] राजगढ़ ॥[२१२]

दोहा : वरणि राजगढ़ गढ़ कह्यौ[8], जोजन येक मझारि।
जल-षाई ऊंचे अलग, द्वार च्यारि दिसि च्यारि ॥[२१३]

चौपाई : प्रथम द्वार कहियत पछिम धर। दूजै दषिण तीजै ऊत्तर ॥
चौथे पूरब मधि पहचानौ। ठाम ठीक ये पोरि प्रवानौ[9] ॥[२१४]

---

१ (क) पूरा चरण नहीं है। २ (क) यह चरण इस प्रकार है—'अरिगजन गुढ़ो गढ़ रूप'। ३ (ख) थाव। ४ (क) मालषेड़। ५ (क) कांम। ६ (ख) वीरा। ७ (क) (ख) बासिरै गढ़। ८ (क) कस्वौ। ९ (क) पूरा चरण इस प्रकार है—तामधि मल सुरंग सर्वन कल ॥

---

†स्पष्ट नहीं है।
‡'सब का बहुवचन।

छंद त्रोटक : चलि आवत भीर चहु दिस की। गजराज अवाज चहु दिस की॥
धरि ऊपर पातलराव यसो। बल विक्रम भूपति भोज तिसो॥
असुपति गजपति आतकते। नर नोकर पाय लगंति किते॥
सइद सेष मुगल पठाण। हीदु हीदवान दिली तुरकान॥
सही सुरपति पुरीस पठान। नरूधररै गढ़ राजसथान॥
तठै महला छवि घाटसु घाटवणे। जालियां वंगला सुभरोष गड़े॥
मनु चतरंग चतेर जड़े। पड़दा अतिरंग सुरंग पड़े॥
बिछायत मसंद गीलम गदी। अतरा षतरा षसवाय हदी॥
नरुकुलरै[†] पति पातिलराव रजै। घडीयालस नोवत वार वजै॥
नगरी मज बंस छतीस षसै। मग आवत जावत ढाल वसै॥
यहो ऊगत प्रात कितेक नरै। सिर नाय सवाय सलाम करै॥
हठ चौहट वट वजार वणे। अति सुन्दर मंदिर मध्य घणे॥
वगवाय वणे सतलाब तरै। घण पछिम[1] कोट कलोल करै॥
कहु कडीय तोवसु ठथ थिरै। कहूं गजराज सवाजि फिरै॥
कहू धुन ध्यान स राग रंगे। कहू रजपूतसु थट सगै॥
यते भनियेस[2] प्रतछि प्रभाव। सुछजि नरपति पालितराव॥[२१५]

छप्पय : अठरासै[3] वतीस साष संवत परवानन।
राज राव परभाव समै कथि कहे सथानन॥
यत दिली आमैरि मझि[4] पातिल पन धारिय।
अरन नाय नर किते हद दोऊ धर पारिय॥
धणीस राजगढ़ नरपती नरू वंस मोटे वषत[5]।
यति आमावति पीथल नृपति वत अलीगवर[‡] दिली तषत॥[२१६]

१ (ख) पछिग। २ (क) मनियेस। ३ (ख) अवरासै। ४ (ख) मतिझि।
५ (ख) वतत।

[†]राजस्थानी का षष्ठी-कारक का रूप।

[‡]अलीगोहर (शाह आलम—द्वितीय)—दिल्ली का मुगल बादशाह, शासनकाल १७५९ से १७८८ ई०।

दोहा : जीरण घर नर दोऊ[1] होये, धर नायक धर आव।
हींदु हद पातिल प्रछति, दिली नजब[1] नबाव ॥[२१७]

छप्पय : दिली नजब नबाब आब दल की सरसाई।
अलिगवर से साहि ताहि तिन यसी[2] सुनाई॥
होय मोहि यक हुकम देष हों जाय ब्रजधर।
करौ[3] स्याम के काम नांय होय भूप ब्रजनर॥
सो सुनत साहि दिली धनी, वार लार देनो सदल।
नर नजबषांन कीनौं चलन, कियो साहि को हुकम बल॥[२१८]

दोहा : नजब साहि को हुकम ले, कोके पातिल राव।
बंधु जारिण कै बोलिये, दीन ब्रज पर दाव॥[२१९]

छप्पय : ते षत पातिल बंचि दरबार कीन भर।
मंत्री सब उमराव बंधु ले कहे बचन भर॥
कोके नजब नवाब काज ताको चल कीजित।
सुभर सेन लैं[4] संगि जंग औसर चल लीजत॥

१ (क) ×। २ (ख) इसी। ३ (क) कस्यौ। ४ (क) लैन।

[1]दिल्ली का सेनापति इतिहास प्रसिद्ध नजफखां। 'सुजान चरित्र' तथा 'प्रताप रासो'—भरतपुर अलवर के दोनों वीर काव्यों में नजफखां का वर्णन 'नजब' नाम से मिलता है। सन् १७७४ ई० में इसने बरसाने की लड़ाई में नवलसिंह को हरा कर आगरा ले लिया था। इसने भरतपुर के रणजीतसिंह का साथ दिया। यह दिल्ली के मुगल बादशाह के यहाँ प्रधान सेनापति था। इन्हीं दिनों दिल्ली के आसपास जाटों के बड़े उपद्रव थे। माचेरी का सामन्त, मरहठे आदि से मिल कर नजफखां ने नवलसिंह को हराया। उसी समय माचेरी के सामन्त ने जयपुर से अलग होकर और अपना स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित किया। नजफखां ने मुगल सत्ता को स्थापित करने का प्रयत्न किया। १७७८ ई० में नरूका प्रतापसिंह को दबाया और स्वयं शाह आलम के जयपुर की ओर बढ़ने पर वहाँ के बालक महाराजा को बाध्य किया कि शाही पड़ाव में उपस्थित होकर बादशाह के हाथों राज्यारोहण टीका करवाये (१७७९)। १७८० में दो बड़ी शाही सेनाओं ने जयपुर राज्य पर चढ़ाई की परन्तु आर्थिक अव्यवस्था के कारण यह आक्रमण विफल हुआ [१७८१] प्रतापसिंह उद्धत था और उसने सब काम रोड़ाराम दरजी तथा दौलतराम हल्दिया पर छोड़ दिया था। राजपूत सरदार असंतुष्ट हो गए। सन् १७८२ ई० में बीमार होकर नजफखां मर गया।

बंधु कहे ते बंधु ही, और न दूजा जानिये।
जिन जो भर भीर परी, चलन ता निकट ठानिये ॥[२२०]

दोहा : यों पातिल के बचन सुन, बंधू मंत्री बोलि।
आप चलण नही जोग है, भेजो और सतोलि ॥[२२१]

चौपाई : मंत्री बंधू बचन सुनाये। ते परवानि[1] आप मनि आये।
दीठि सभा दे देषी[2] सारो[3]। है षुस्याल मंत्री बुधि भारी ॥[२२२]

दोहा : मंत्री जाणि षुस्याल[1] सौ, अति बल बुधि निधांन।
पुरषसिंह संतोष[4] से, अर संग काका मान ॥[२२३]

छप्पय : मंत्री वार षुस्याल लार सिरदार दोय किय।
अप पटतर से आप राव परताप संग दिय॥
अर सेना सब सुभर बाजि गजराज साजि नर।
दई चाहि अपभाय भेजिये नजम भीरि वर॥
मंत्री षुस्याल कीने चलन, स्यांम काम दीनो हुकम।
करतै सलाम चढ़िये कटक, बजि त्रमाट तिह बेर बम ॥[२२४]

छंद पद्धरी : चलियेस राव मंत्री षुस्याल।
सिरदार लार दो संग भाल॥
समरथ सतोष पुरषा प्रवान।
इंदरेस नाव कहिये समान॥
लीनीस संगि फौजै स पूर।
रजपूत लार रजवंस सूर॥
कर कर मुकाम पहोचे स ठाम।
दल नजमषान के निकट नाम॥

---

१ (क) परषानि। २ (क) देषी है। ३ (क) ×। ४ (ख) सताष।

---

[1]षुस्यालीराम का नजफखां से यह सम्पर्क बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ जैसा कि आगे के विवरण से स्पष्ट होगा। सेना के अध्यक्ष खुशालीराम के साथ संतोषसिंह तथा काका मानसिंह दो श्रेष्ठ वीर प्रतापसिंह ने और भेजे थे।

सुनिये[1] सजोय नर नजम बात।
भेजिये राव मंत्री स भ्रात॥
भेजिये वेर स्यामी सलीन।
नर नजबषान दरबार कीन॥
पठयेस[2] षुस्याल मंत्री सजाय।
मिलिये नवाब हित चाय भाय॥
नर नजब बोलियो बात भाव।
वर यही बंध सै बंध राव॥
कहहो सजाय दैहैस दीन।
करिहैस राव राजा सकीन॥
बोले सतोष समरथ प्रवान।
कोकंत आप[3] कीने सु आन॥
कीजे नवाब जो षुसी होय।
करिहैस काम सरिहै सजोय॥
डेरास कीन सुध सीष लीन।
नर नजबषांन सिरपाव दीन॥[२२५]

दोहा : मिली डेरा नर नजब के, मंत्री किये षुस्याल।
बजे कूंच वर भोर ही, धरा ब्रज परि चालि॥[२२६]

चौपाई : जो अवाज व्रजराज प्रवानन। आत नजब[4] दल सुनी सुकानन॥
नर नवलेस[1] व्रजपति सोई। सूरजमल सुत बोले जवई॥[२२७]

दोहा : सब दरबार सुनाय[5] कै, कह्यो वैन[6] नवलेस।
अब देषें कैसे बने, तुरक तकत वृजि देस॥[२२८]

छंद पद्धरी : जो सुनिय बात मंत्री स ठांम।
जोधराज कहिये सुनाम॥

१ (ख) सनिये। २ (क) परसे। ३ (क) भूप। ४ (क) आनन जम।
५ (ख) सुनायक। ६ (ख) बन।

[1] नवलसिंह—भरतपुर के राजा तो नहीं थे, रीजेण्ट थे, किन्तु राजा के ही माफिक काम करते थे। इनका कार्य-काल सं० १७६८ से १७७६ है।

चतरेस सुणी चौंहाण चाहि।
ब्रज-राज बंध सुनि दान साहि॥
जट चक्रसाल सीतासराम[†]।
सुन चत्रदास गुरु सो स ठांम॥
समरू[‡] स सार भर सो सुनीत।
फिरजीस जीत जंग सभीत॥
सुनि सब बोलियो बचन स बात।
करियेस जोध जो नजब भ्रात॥
करिहैस स्याम के काम सथ।
जो जीति हार हरदेव[*] हुथ॥[२२९]

दोहा : वति चढ़ि आये नजब दल, यत चढ़िये व्रजराज।
गगन सूर छाये गरद; रचिये रार समाज॥[२३०]

छंद भुजंगी : मनो बोल्रे ईंद्र बल दोय सजै।
वहै गोल गोला अरावे गरजै॥
बहै बाघणी वीर बंदूक अछी।
बहे बान कमांन तेगैं बरछी॥
ह्वैं टूक टूकं जुटै सूर सूरं।
गले माल गेरैं बहै हूर हूरं॥
धरैं सीस टूटें लगै रूक रूकं।
किते घाय घायं पर खेत कूकं॥
न को कोय सूझै भयो जुध भारी।
मनू वासरग की भई रैन कारी॥
वरैंहं किये बाजते राजमंत्री।
कटी जट की सेन जो हुथ कत्री॥

[†]सीतासराम में 'स' भरती का है।

[‡]समरू—भरतपुर-नरेश की सेवा में भी था। कुछ लोगों का कहना है यह किराये पर जाकर तोपखाने का संचालन करता था। विस्तृत विवरण अन्यत्र देखें।

[*]हरदेवजी राजा के इष्टदेव थे। इनका एक मन्दिर भरतपुर में अब तक विद्यमान हैं। विस्तृत विवरण मेरे शोध-प्रबन्ध—'मध्य प्रदेश की हिंदी साहित्य को देन' में देखिए।

पिछै है किया ज नवाब सोई।
भजी जट की फोज तज षेत जोई[1] ॥[२३१]

दोहा : भजी फोज[2] व्रजराज की, नजम जीतिये जंग।
दोहु दलां बिचि रावरा, मंत्री चाढ़े रंग ॥[२३२]

छप्पय : बर बरसाने षेत जीति चलियेस जोम भरि।
व्रजराज की ठांम नाम ता दीघ लैन लरि॥
गये हुंक दल नजम वंक गढ़ राड रचाई।
व्रजदेसन नवलेस तोव टीवन[3] ठहराई॥
गोलास गोल मानू असन, गरज इंद्र वर संत घर।
लरे मास चौबीस लग, लियो जीति गढ़ नजम नर ॥[२३३]

इति प्रताप रासो जाचिक जीवरण कृत पंचमो प्रभाव।

षष्टम प्रभाव

दोहा : सो पति है व्रज देस को, नगर दीघ सुनाम।
तापर बैठे नजब नर, ईंद्रं पुरी सम ठाम ॥[२३४]

छप्पय : तोरि दीव निज ठांम जोर अति भरे नजम नर।
कहै अंन मुष बैन देषि हौ जोय हिंद घर॥
(गया) राम नाम बड़ ठांम लूटि लैहौ सब लछि धन।
गढ़ अजंग गढपतिय डारि है भंग जंग जिन॥
हके नवाब हिंदू धरा लेन काज भर वहो बलन।
कीने पयान पछिम दिसा बार लार ले लषन दल ॥[२३५]

छंद छप्पय : साज बाज[4] गजराज सेन ले चढ़े नजम नर।
षुरासान मुलतांन कासि षंदार मीर भर॥
सैयद मुगल पठाए सेष भारथ अभंगिय।
तिलगु रुहैला तेस देस कत ... ...फिरंगय॥
तो वै सुथट सगि इंद्र घन प्रथम मझि मुकाय किय।
हिंदवान हद पातिल प्रछति दल हलकारे षवर दिय ॥[२३६]

१ पूरा चरण (क) में नहीं है। २ (ख) भोज। ३ (क) टीपन। ४ (क) वास।

चौपाई : जो अवान पातिल सुनि कानन। आन नजब की बात प्रवानन॥
मंत्री बंधू बोलि पठाये। भारी भर दरबार कराये॥[२३७]

दोहा : पातिल बोले बचन यों, सब दरबार सुनाय।
कर सर वा ब्रज देस कूं, नजब हींद घर आय॥[२३८]

छंद पद्धरी : बोलिये बंधु मंत्रीस जोय।
करि है प्रमाण जो हुकम होय॥
बोलिये रावराजा सभाय।
करिहैस राडि परिहैस पाय॥
कै आत षात यन गढ़न फेट।
कै होत एक चौड़े चपेट॥
है रचन राड़ि[1] को बात दोय।
करिहैस देषि जो जिसी होय॥
टूटत देषि हिदवान हद।
टरि है न जोय छत्री मरद॥[२३९]

दोहा : वत दिली दल चाढ़िये, नायभ[2] नजब नवाब।
पायक लायक राव के, कीने सेष जुवाब॥[२४०]

छप्पय : सुनिये नजब नवाब ज्वाब[3] यक अरज हमारिय।
कीजे कूंच विचारि धारि हीदू दल भारिय॥
तम सम आगे और ठौर तापैस आप बन।
होसदारषां बोलि यहै हीदु घर दल दहन॥
गये अटकि सिर पटकि वेर वाजी न पा जीनय जनि।
करि है जो जानै षुसी[4] कहनहार पुजै कहनि॥[२४१]

छंद त्रोटक : सुनतं[5] नर नजब वात यसी। अप बोलिये यह बात कसी॥
तुम्हरी हद देषन आंन हमै। करि है पर[6] और हरोल तुमै॥
रहिये असेष व सेष षुसी। तुमरी हमरी घर येक वशी॥
मिली तुम सौ जिनिहूं मिल हों। ढूढाहर देषन कौ चलि हौ॥[२४२]

---

१ (ख) रा। २ (ख) नायम। ३ (क) जवाव। ४ (ख) दुसी। ५ (ख) सनतं। ६ (क) घर।

दोहा : होसदार[1] षां बोलिये, सुनतो यसो जुवाब।
वा घर या घर येकही, आनों नजव नवाव[2]॥
आमावती सम राजगढ़, नरपत पातिलराव।
धरतो के दो ही धनी, वत राजा यत राव॥[२४३]

छप्पय : होसदार ले सीष वार तिहि चले नजब तजि।
नजमषांन जवमर्द व्योन सेना सुरभर सजि॥
तोवर हत[3] ले तुपक वाजि गजराज सेन भरि।
चढे दाप रण चाय[4] ठाठरु वढेस[5] सिंधूसर॥
आयेस धकि धर धर परिय उडि सुन्य लगी[6] गरद।
षवरि रावराजा सुनी नजब षांन आयेस हद॥[२४४]

दोहा : सुनत रावराजा यसी, बज[7] त्रमाट वर साजि।
पातल सबन सुनाय करि, दये हुकम यक गाजि॥
हद[8] टूटत टूटत धरा[9], टरै न छत्री नाम।
जुद्द करन कौं जोग है[10], करै सू सीताराम†॥[२४५]

छंद पद्धरी[11] : यम हुकम[12] रावराजास दीन।
चढिय जोर भर जुध कीन॥
दषिनी[13] हरोल[14] आगैस षंरम।
वापुस अम सिरदार नाम॥
पाछैस बंध[15] मंत्रीस जोय।
सेना समाज सब संग होय॥
चलियेस तेज[16] ताते तुरंग।
मिलियेस[17] तेग टोडै सु जंग॥

---

१ (क) हो सुदार। २ (ख) आमावति नवाव। ३ (क) हक। ४ (क) चाप। ५ (ख) उपदेस। ६ (ख) सगी। ७ (क) अयसीज, (ख) जव। ८ (क) ×। ९ (ख) धधरा। १० (क) ×। ११ (ख) छेद पधर। १२ (ख) हलम। १३ (ख) दवनी। १४ (ख) हराल। १५ (ख) वंट। १६ (ख) तरज। १७ (क) मिलस।

---

†सीताराम अलवर के इष्टदेव रहे हैं। स्व० महाराजा ने भी अपने महल में राम की आकर्षक मूर्त्ति स्थापित कराई थी। वर्त्तमान नरेश ने उसके साथ सीता की प्रतिमा स्थापित की है। 'राजगढ़' को राजस्थान की हद माना गया है।

बजैस गोल गोला सगुम।
संजेल इंद्र धर परत घुंम॥
दल दुहू वोर बजैस सार।
टूटंत सीस फुटंत पार॥
सजीस[1] सेन यों रची राडि।
जाते न कोय न कोय हारि॥
रवि अस्त होत पिछे[2] सु दिन।
उसरेस जुद्ध करि पहरि तीन॥[२४६]

दोहा : वत उसरे दल नजब ले, यत पातिल दल भीर।
माझि हद पर रावकै, लछमनगढ़ गढ़ वीर॥[२४७]

छप्पय : ताहि[3] देषि नर नजब बात मीरन्न मिल बुझिय।
कहिये सलास जोय होय सरसा रग सूझिय॥
है हिंदु धरि प्रछति राव पातिल पन्न धारिय।
रचीये नर धर यम किला दिषत अति भारिय॥
बोलेसु मीर सुनिये[4] नजब याहि तोड़ि कीजे चलन।
ता पीछै फिर देषिये राडि रावराजा दलन॥[२४८]

दोहा : सो मीरन लाहा[5]† दई, कीनी[6] नजम प्रवान।
लछमनगढ़ गढ़ लरन की, रची बात निधान॥[२४९]

चौपाई : गढ पर धरी नजब नर घातै। पातलराव सुनी सो बातैं॥
सुनत आय योंसी उर धारीय। वंधु भेजिये ता गढ़ भारीय॥[२५०]

छप्पय : वुधिवंत वलवंत जंग महमंत मंन गर।
धीर पाय अवदाय भार रण चाय करन सर॥

---

१ (क) स। २ (क) पिद्धै। ३ (क) तानहि। ४ (ख) धनिय। ५ (क)(ख) लाहा। ६ (ख) पीनी।

---

†सलाह।

अरन काल सिर साल भाल रछपाल वाम पर।
धायक वत दल फोर सोर जीतंत जोय छरि ॥†
इम धारि राव राजास चित यसो चाहिये बंधु वर।
सभा सुध सव हुकम दिय है लायक मंगल कवर ॥[२५१]

दोहा : अरणभंगु षग अमरेस तरण, स्याम काम परणवंत।
पातिल कोके जाणि कै, मंगल मन महुमंत ॥[२५२]

छन्द कोकीत पातल राव। आये कवरि करि चाव॥
हनुफाल : बोले रावा राजास आत। सुनिये कंवर मंगल बात॥
आये नजब धरि करै दाय। लैन लछमनगढ़ ठहराय॥
हद परो होई विरोध[1]। तुम जाय कीजो जुध॥
यों हुकम पातल दीन। सो प्रवान सुनतहि कीन॥
चलिये कंवर मंगल चाय। दुजै संग लै सिवसाहि॥
कुल कछवाह जोगी जती। हथ सूरवीरस सती॥
करवा स्याम वाले काज। ले नर वाज सुमर समाज॥
उतरे निकट गढ़ की ठांम। मंत्री मझ छाजूराम॥
जिन जो कही क्यो हो वारि। यन जो करिय चौड़े राड़ि ॥[२५३]

दोहा : मंत्री सुनतै वचन ये, पातल पै षत दीन।
× × × × × ॥[2][२५४]

चौपाई : पातिल राव हुकम पौंचाये। आपन पै सिवसिंह बुलाये॥
काका कवर कन्ह से भारे। सो लायक लछमन गढ़ धारे ॥[२५५]

दोहा : आये दल सिवसिंह सो, मंगल किला मझार।
जो अवाज नर नजब पै, पौंची ताही बार ॥[२५६]

---

१ (क) हदह विरोध। २ (क) (ख) दोनों प्रतियों में यह पंक्ति नहीं है।

---

†(क) प्रति में ये चार पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—
बुधिवंत बलवंत जंग जंगमह मजबुत पथ जहि।
किरवान धारिम्ह मंतर हरोपियय सयमहि॥
अरन काल सिर साल जानि लरछपाल आमद्वार व ऊपरि।
निज दल होय करिवाह सोर जीतंत जोय छरि॥

सब दरबार सुभाय वचन वर कहै नजब नर।
रावराज गढ़ काज ग्राज भेजीस भीर[1] नर॥
बुझी सबत विचारि लारि सेनापति को है।
कहो जुवाब नवाब राव परताप च चोहै॥
यो सुनत भोग वजीस बब कहर होय चढिये कटक।
स्याम लाज की काज पर लईय राड़ि चौड़े रटक॥[२५७]

दोहा : लई राड़ चौड़े रटक, ग्रटक कटक[2] कूं दीन।
मंत्री बोले कंवर सूं, वहोर सेन गढ़ लीन॥[२५८]

छप्पय : बहोरि सेन सब ग्राय कवर पहुंचाय हुकम वर।
रण मतंग रजपूत पाय मजबूत जोम नर॥
जादम सोढा तवर पवार राठोड़ गौड़ गनि।
वड़गूजर निरवान[3] चत्र चोहान जोय धन॥
गहयलोत धीर पुंडोर गिनि षीची हड़मती किते।
गढ़ मझारि करि राड़ि के कुल कछवाह जे जिते॥[२५९]

दोहा : वत दल ग्रावै नजब थकि, यत पातल दल पूर।
माझि लछमनगढ़ लरत, समर करत नित सूर॥[२६०]

छंद त्रिभंगी : वतै सैन नवाब[4] की दौरि ध्यावै।
यतै सूर सायै सिरै हाथ वाहै॥
वतै मारिलौ मारिल्यौ वीर बोलै।
यतै मारियें लै करै सेल तोलै॥
वतै गोलनी ते करै तोव तारै।
यतै गोलनी ते (तौ) तहां गोल मारै॥
वहै वांन कवांन तेजो बरछी।
बहै बाघणी वार बंदूक ग्रछी॥
लगे सार धारं उडै टूक टूकं।
कते धाय धाय परे षेत कूकं॥

---

१ (क) भी, (ख) तीर। २ (क) ×। ३ (ख) मिरवांन। ४ (क) नवा।

धरै सीस फूटै भुजा पाय पायं।
कते ही तिलंगा करे हाय हायं॥
कते मीर मुगलानु ते काम आवै।
दिलं वाय तंबू तते ठाठ जावै॥
पड़ावी वड़ी बीवियां यो बिलषै।
अला तोहि नवाब वा षेत रषै॥
करी मास[1] दोय किला[2] सूं लड़ाई।
आवै नवाब बाजी न पाई॥[२६१]

दोहा : नजबषांन पछितात लड़ि, गढ़ लछिमनगढ़ आय।
बोलि गुंसाई[†] सौं कही सला होय सुनाय[3]॥[२६२]

---

१ (ख) माम। २ (ख) दोला। ३ (क) सलाहो सुनायहोय (ख)सलास होय।

[†]गुसाईं अनूपगिरि—उस समय का एक प्रसिद्ध युद्ध-विग्रहकर्त्ता। इनसे संबंधित दो हस्त-लिखित ग्रंथ इंडिया आफिस लाइब्रेरी में देखे थे—अनूप प्रकास (पद्य में) अनूप प्रकास (गद्य में)। इनके संबंध में नीचे लिखा वृत्तान्त पठनीय है—अनूपगिरि एक सनाढ्य ब्राह्मण के लड़के थे। पिता बाल्यकाल में ही मर गए, माँ पालन न कर सकी। अतः उसने इनके भाई सहित राजेंद्रगिरि नामक गुसाईं के हाथ बेच दिया। राजेंद्रगिरि ने दोनों को चेला बनाया—बड़े का नाम उमरावगिरि रखा और छोटे का अनूपगिरि। गुरु ने इनका पालन अच्छी तरह किया, बाद में, इनमें सैन्य मनोवृत्ति जागृत हो गई। दोनों भाई मिट्टी की सेना बनाकर युद्ध का खेल खेला करते थे। गुरु ने भी इन्हें शरीर तथा मन से खूब तगड़ा बनाया था। जब गुरु मर गए, तो ये दोनों भाई शुजाउद्दौला की फौज में नौकर हो गए। शुजाउद्दौला ने अनूपगिरि को 'हिम्मत बहादुर' की उपाधि दी। एक बार शुजाउद्दौला की जान बचाने में इन्हें सफलता मिली, पुरस्कारस्वरूप कानपुर-फतहपुर में रजधानी की जागीर पाई। तभी से ये 'रजधानिया गुसाईं' कहलाने लगे। कालान्तर में ये अलीबहादुर से मिल गए और उसे बाँदा का नवाब बनाने में सहायता की—स्वयं सेनापति बने। इसी को साथ लेकर बुंदेलखंड पर चढ़ाई की और वहाँ के अधिपति को हराया। कुछ समय पश्चात् ये अंग्रेजों से मिल गए और अलीबहादुर के लड़के को हरा कर स्वयं उमराव बन गए। फिर तो इन्होंने शादियाँ भी कीं, और विलास में फँस गए। इनका चरित्र कुछ अच्छा नहीं था। बुंदेलखंड में पदा होकर वहीं के राजा अर्जुनसिंह को मारना, जिससे सहायता ली उसी के लड़के पर अत्याचार करना, अपना देश अंग्रेजों के हाथ में सौंप देना आदि। अनूप-प्रकाश और हिम्मत बहादुर बिरदावली (पद्माकर) दोनों को मिला कर ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होती है। अनूप-प्रकाश मान कवि ने लिखा, जिसका समय १८२० वि० समझा जाता है। इसी का सीधा-सादा गद्य स्वरूप भी देखने को मिलता है, जिसके कर्त्ता कोई तुला बहादुर भट्ट हैं। पुस्तक इंडिया आफिस लाइब्रेरी के हस्तलिखित विभाग में सुरक्षित है। इसका कुछ अंश इस प्रकार है—"राजेंद्रगिर बोले महाराज मेरे यह इच्छा है के हम राजाधिराज होइ सब [अगले पृष्ठ पर]

छप्पय : अनुपगीर उमरावगीर कहियत जुग भायन ।
वड़ उमरावन सब नजब तिन यसीं सुनायन ॥
बोल गोसांईन कहै चहै परवान कहौ तुम ।
रावरीय अनमान सला सलाह करी हम ॥
सुनिये नवाब जुवाव[1] यक हुकम जोय जब दीजिये ।
यो सुनत बात बोले नजब जो तुम करो सो कीजिये ॥[२६३]

दोहा : बचन गुसाईं नजब के सुने सलाके अैन ।
लिषि पठये करि षास षत, रावराज पैं दैन ॥[२६४]

छप्पय : जो षत पातिल बंच सीचि दरबार कीन भर ।
बोले सबन सुनाय सलाह करिहै स नजब नर ॥
मत्री बंधु सुनै सुनै राठौड़ गौड़ घन ।
कुल कछवाहा जतै सुनै निरवान सोचहंन ॥
उमराव दोय दिषनीस संग अवो वायु नाम जनि (जिन) ।
रावराज सु जोड़ करि अरज सुनाई सुनति तिन ॥[२६५]

चौपाई : सुनिय रावराजा यह बातै । को बिधि टरै नजब नर ह्यांतै ॥
यह हिंदू धर है धर्म धारिय । यतवत करत कुफर वह भारीय ॥[२६६]

दोहा ते पातल वर वचन सुनि बोले मंत्री नांम ।
बुधिबल छाजुराम सुत कवर षुस्याली रांम ॥[२६७]

छप्पय : बोलि षुस्याली राम नाम मंत्री सु बुधिवर ।
पातिल दीन हुकम जाय तुम मिलौ नजब नर ॥
जा नवाब सू ज्वाब सला सुधि बुधि सु कीजे ।
आपदाप तुम बात जाय डेरा दल दीजे ॥
यों रावराज बोले बचन सुनि मंत्री कीनी चलन ।
नाम षुस्यालीराम तिन नजमषान ता दल मिलन ॥[२६८]

---

१ (क) × ।

हमारी आज्ञा मानै................कछू दिन बाद फिर ब्रंदावन कौं गए तहाँ व्रजभूमि को विलास करो । दान पुन्य करो । कुंज बनवाई । उतै भरतपुर वारे राजा जवाहरसिंघ जाट सों भेट वई । बढे मिलाप भऐ । वे हिमत वहादुर को अपने मकान कौं लै गए । बहुत दिन उहां रहे । तब एक बैरागी ने झीरषा मानी............. ।"

दोहा : दल षुस्याल[1] नर नजम सु मिलिय मंत्रीय जाय।
हसि नवाब बोले वचन भली कीन तुम आय॥[२६६]

चौपाई : यों सुनि मंत्री बोले बातें। यह बनि आवै कहिये जातें॥
दिली साहि के दल तुम सथै। जानि दिये तुम[2] हम अड़े हथै॥[२७०]

छंद : यम किये जोगि मंत्री जुवाव। सुनियेस सोय नजब नवाब॥
नर नजमषांन वर वचन दीन। कहि है षुस्याल मैं सोय कीन॥
बोलिये राजमंत्री सु बात। कीजे सु सोय अब षुसी आत॥
नर नजब बात बोले सुनाय। दलमो षुस्याल डेरा कराय॥
मंत्री मुकाम दल मध्य कीन। नर नजब भीरि सब बात कीन॥[२७१]

दोहा : भीरि बोलि लीनी नजव, लछमनगढ़ की घेर।
उलटिवाटि कीनो चलन, लारे मंत्री लेर॥[२७२]

छप्पय : अठारासै पैतीस मांहि नजब से दायक।
मंत्री सो षुस्याल धरणि पत्तिल को पायक॥
लछमनगढ़ से लरन कवर मंगल संग म्होकम।
लाष सेन के संग जंग जीते सजोग्य जम॥
अटकैस आनि दीली कटक पटकि सीस पछै पड़ै।
स्यांम नाम के काम पर दंगल दल मंगल करै॥[२७३]

दोहा : दंगल दल मंगल लरे, काका कन्ह प्रवान।†
पछि पातिल प्रथीराज सों, गुन कथि कहै वषांन॥[२७४]

इति प्रताप रासो जाचिक जीवण कृत षष्टमो प्रभाव ॥६॥

---

१ (ख) षुस्यान। २ (ख) तु।

---

†यहाँ मंगल को 'काका कन्ह' तथा पातिल को 'पृथ्वीराज' कहा गया है। काका कन्ह के लिए प्रसिद्ध है कि वे अपने सामने किसी को ऊँचा नहीं देख सकते थे। कहा जाता है कि यदि भूल से भी किसी का हाथ उसकी मूछों पर चला जाता, तो कन्ह की तलवार से उसका सिर उड़ता ही दिखाई देता था। इस स्थिति को बचाने के लिए 'कन्ह' की आँखों पर पट्टी बँधी रहती थी और इसीलिए 'कन्हपट्टी' प्रयोग अभी तक चलता है। मंगलसिंहजी भी प्रताप के काका थे और बड़े ही वीर। उनके आदेश पर ही 'प्रताप-रासो' की रचना हुई।

सप्तम प्रभाव

दोहा : छपे व्रजिधर[1] नजब दल, नाम[2] दीघ निज ठांम।
मंत्री पातिलरावको[3], संग षुस्यालीराम ॥[२७५]

छप्पय : समय येक करि सुरति बात नर नजब उपाईय।
बोलि षुस्यालीराम षोलि तिन[4] यसी सुनाईय ॥
रावराज तुम[5] घनी बार यक हमैं मिलेयत।
देहु राव[6] वड़ ठांम परगना ते[7] तुम चहियत ॥
मंत्री जुवाब नवाब के सुनत स्याम सुधि षत दिये।
ते बंचि रावराजा करन भर भारी दरबार किय ॥[२७६]

दोहा : भर भारी दरबार कर, मझि पातिलपति राज।
दुहु भुजा बल देषियत, मंत्री बंधु समाज ॥
दोलै ओर नंदराम हो नषराम स्योजीराम।
जीवणषा होसदारषां सेष[8] मुसायम ठांम ॥[२७७]

छंद हनुफाल : भनि विसनेस बंधु भवान। भगवतस्यंह संग स्योदान।
जगतेस जानो जोर। मंगल कवर कर मोर ॥
विक्रमान कहत षुस्याल। संतोष पुरषा भाल ॥
नर अषमाल ईंद्र सुठाम। नाहर सेरसिंह सुनाम ॥
कहत उमेद वायुधीर। भारथ[9] सिंह दुरजन वीर ॥
कुल बंधु संगि केतेक। जो दरबार लार जितेक ॥
नरपति नरूवारे ठाठ। राजाराव पातिल पाट ॥[२७८]

दोहा : कुल बंधु कहिये किति, सो सब संगि दरबार।
दुजै पातिल पायरैं, रहै यते दल लारि ॥[२७९]

दोहा : पच्याणोत कलरायणोत, सेषावति संगि मानि।
राजावत रजवंस के, स्योब्रह्मवोत वषांनि ॥[२८०]

---

१ (ख) जिधर। २ (क) नान। ३ (क) को। ४ (क) न। ५ (क) सुभ। ६ (ख) राम। ७ (क) दे। ८ (क) से। ९ (क) भार।

छप्पय : तुमर गौड़ राठौड़ व पवार निरवाण चौहाण।
वड़गूजर सामोत राजधरकास पास धन॥
हमीरदेक धीरोत जोग्य भारी[1] कछ्वाहे।
कीतावत सुरतांन सूरसिंघोत सवाये॥
भांषरोत बलिभद्रभण ते कुंभावत कहिये यते[2]।
किते रावराज पातिल पति दरवरि लार सजै यते॥[२८१]

दोहा : राजाराव दरवारि वरि[3] सबसौं सलाहा लीन।
नजब मिलन[4] व्रजदेस कुं कुंच प्रात ही कीन॥[२८२]

वर भोर होत बजे त्रमाट।
किलके नकीव सजे सुथाट॥
रजपूत वीर गजराज बाजि।
तोवे तीयार सेना समाज॥
चढ़ियेस राव परताप भूप।
होदास अववारा† अनूप॥
जो कनिक काम जठे जराय[5]।
झलकंत जोय रवि[6] किरन भाय॥
परि मोरपछ्र सिर चंवर ढालि।
भाले भलेस चोकोर चालि[7]॥
जलेव जोन[8] कुंतिल कतार।
होनी सलाम दिस दोय बार॥
सुर नाय स्याद नोबत[9] नंद।
साड़ा हरोल सोहंत हद॥
डंका त्रमाट गहरंत घोर।
सुषपाल सजि दल दुहु वोर॥

---

१ (क) (ख) ×। २ (क) कहिये। ३ (ख) वारि। ४ (ख) मिलत। ५ (ख) जराम। ६ (ख) रमवि। ७ (क) चरण इस प्रकार है—'चलहंत भाल किरणाल माल'। ८ (ख) जलेबाजोन। ९ (क) वय।

---

†अंबाबाडी, अम्बरी नाम प्रचलित हैं।

फरके निसान पचरंग रंग।
धरकेज सूर[1] आगे स चंग॥
सजि सहस[2] बीस नर वाजि जोर।
तोवे सठ्ठ हसतीस डोरि॥
प्रथमीस[3] जाय कीने मुकाम।
गढ़ लछमरणगढ़ अछे सुठाम॥[२८३]

चौपाई : पहल मुकाम किये लछिमनगढ़। छुरे कटक वर भोरण येक चढ़ि॥
जुलषांन जादा धर धाये। ग्राम लूट पहारी लाये॥[२८४]

दोहा : किये कुंच दर कुंच दल, ब्रजिधर पहौचे जाय।
सो सुनते नर नजबषां, साम्ही मिलिये आय॥[२८५]

दोहा : वत दिली धर नजब नर, यत आमैररौ अधराज।
दुहु वोर के दल दिपति, सब सारीष समाज॥[२८६]

छप्पय : नरा ठाठ गजराज बाज नोवत नद वजत।
सजि सुषपाल समूह तोव आगे घन गज्जत॥
यसो जानि नर नजब, वसन पलटे कर भाईय।
सिंह रूप वड़ भूप भीर भंजन बल दाईय॥
रावराज नवाब नर मिलि डेरन दल आवियेे।
प्रात होत परताप दल आगै कोक बुलावियेे॥[२८७]

दोहा : चढ़े प्रात परताप दल, वाजि मुकाम यक गांव।
कोस तीन दल नजब के, कहित ककरा नाम॥[२८८]

चौपाई : दल दोउ तोवै घन गजै। नदि नोवत निस वासर वजै॥
इति अधपति अंमावति वारो। वति नवाब दिली दल भारो॥[२८९]

दोहा : औसर दिन मोसर मिलन, नजबषांन नर आप।
अपदल कोक[4] बुलावियेे, रावराज परताप॥[२९०]

छप्पय : मिलन काज दल साज रावराजा चढ़ि चलिब।
परसत ही नर नजब मेलि पातल भुज मिलिब॥

---

१ (ख) मूर। २ (क) सागेसहंस। ३ (क) प्रथमस। ४(क) (ख) कीक।

बाजिराज[1] गजराज षिलत मुकता गल माला।
सिर सोहन सिरपेच किलंगीय जटित दुसाला॥
मंत्री बंधु उमराव संग सो सिरपाव सजाविये।
पातिल मिल नर नजब सूँ अप मंत्री डेरे आविये॥[२६१]

दोहा : दिली नवाब लाषन लषत गए मोंण निज[2] ठांम।
मंत्री गिनैं षुस्याल से पातिल सो[3] सिर स्याम॥[२६२]

दोहा : मंत्री आवन स्याम को, सुनतैं उठे सजोय[4]।
दिस साम्ही सिर न्हाय के, ठारौ कर जुग जोय॥[२६३]

चौपाई : रावराज पातिल सुधि लीनी। अति महिमा मंत्री की कीनी॥
दलपायक के तोल बधाये। राजाराव आप दल आये॥[२६४]

दोहा : आये राजाराव दल, आनंद नोबति बजि।
सकल आरिवैं सो समैं, मानु ईंद्र गरजि॥[२६५]

दोहा : पहल[5] गये दल नजब के, राजा राव प्रताप।
पीछे राजाराव दल, आये नजब सु आप॥[२६६]

दोहा : घने[6] बाज गजराज दिय, संगि मीरन सिरपाव।
मिली महैमा नर[7] नजब की, कीनी पातिल राव॥[२६७]

छप्पय : मिलि पातल नर नजब आप दल दीघ[8] स आयब।
नाम षुस्यालीराम ठांम मंत्री सु बुलायब॥
लहै नैन मुष बैन वचन सोही तुम कीजत।
अलवर[†] साहि सुठांम किला यह हमकु दीजत॥
मंत्री नवाब नवाब के कहे बचन सो सुनत जब।
मो बलकी यह बात प[9] पातल जीवत देत कब॥[२६८]

१ (क) ×। २ (ख) ज। ३ (क) ×। ४ (ख) सोजुय। ५ (क) पदल।
६ (ख) यने। ७ (क) (ख) रन। ८ (ख) दीय। ९ (क)(ख) मैं।

[†]अलवर का किला भरतपुर के जाटों के पास था, किन्तु सन् १७७५ में वह किला जाटों ने अलवर के हवाले कर दिया, और कुछ समय उपरान्त यही इस राज्य की राजधानी बना।

दोहा : यो सुन वचन नवाब नर, फोरे[1] मंत्री आप ॥
या दल करु दीवान तुम, तजिये राव प्रताप ॥[२९९]

चौपाई : सुनत वचन मंत्री मन भायो। निसि निकारि परवार मंगायो ॥
राजाराव तजे तिहि वारे[2]। होय हराम[†] नजब दल लारे ॥[३००]

दोहा : नाम षुस्याली राम बड़, भुज दौले नंदराम।
छाजुराम तिन तात है, निसढ़ि गये तजि ठाम ॥[३०१]

दोहा : मंत्री सिर ते स्याम तजि, हुये नजब दल लारि।
रावराज पातिल निकट, हुई षबरि तिहि वार ॥[३०२]

छंद अरधनराज : सुनत[3] रावराज ही। सुनत[4] ले समाज ही ॥
भुजास मीर भ्रात ही। सुनाय बोल बात ही ॥
दगोस देत मत्रि ये। कहोस जोय कीजिये ॥
बंधु तोलि बानि ही। सबै सम प्रवान ही ॥
यहांस जुध जो करै। मिलेस ये ऋहां[5] दले ॥
विचार ठीक ढलिये। दिसास देस चलियै ॥[३०३]

चौपाई : यों सलाह बंधु मिली दीनी। रावराज सुनि सोही लीनी ॥
बंब[6] ऋमाट दलि वार बजाये। वहोरि देस दिसि कुंच बजाये ॥[३०४]

छप्पय : रावराज परताप आप चढयेस तास वर।
जबर होय जो जात बात यौं सुनी नजब नर ॥
ऋहु दलन दे षबरि नजब चढीये सकुत चकि[7]।
पकरि लेहु परताप धारि आये सु आप धुकि ॥
रचियेस षेत रसिये सरण दलब राह दल धारिये।
यत यक भनि उत तीन गिनि[8] मन्न फंदन दल जोइये[9] ॥[३०५]

---

१ (क) फेरि। २ (ख) वोर। ३ (क) सुत। ४ (ख) सुन। ५ (क) ऋका
६ (क) (ख) वेव। ७ (क) सकुचित। ८ (क) मिनि। ९ 'मनफदवजबदब जोय' (क)(ख)।

---

†कवि ने यहां उपयुक्त शब्द का प्रयोग किया है। हल्दियाओं की वीरता, बुद्धिमत्ता, रणचातुर्य और नीतिमत्ता के साथ उनका यह रुख भी कई बार पाया जाता है, जिसका समाधान, प्राय, नहीं हो पाता।

छंद भुजंगी : वहै तोव तेगे सघन हल मांचो।
यसो हलहलै दोउ दल मुच्ची[†] ॥
चल्यो नूर सूर कतै देत कची।
....[1] ॥
कहै मारिलैं मारिलै वीर बव्यौ।
वरै रावराजा सहस तीस हक्यौ ॥
यसी जांनि कै बंधु मंत्रीस जोई।
फिरे जाय अडि लिये फेरि जोई ॥
षरे रावराजा षगे षेत षेते।
सैना सबै बंधु मंत्री समेते[2] ॥
वरैं देषतै सेति तोपैं सचली।
दल ध्याय नवाब कै जाय मिली ॥[३०६]

दोहा : मिलि सेना सो नजब दल, अरु तोवै घन पठ।
रहे राव परताप संगि, मंत्री बंधु विरठ ॥[३०७]

चौपाई : पातिल षेत षगे तिहवार। कहै आप छत्री धमधार ॥
गज नवाब होदा हथयाल। पातल नाम न जो टरि चाल[3‡] ॥[३०८]

दोहा : यसो राव राजा बचन, मंत्री बंधुन दीन।
मंत्री बंधु बोलिये, सलाह संगि सो कीन ॥[३०९]

छप्पय : सेष[4] मुसाहिब ठाम जोवणषां कहियत।
षरे होय कर जोय दरज करि अरज सुनैयत ॥
रावराज परताप आप हिंदु धर भारिय।
गढ[5] वावन धर षात जात येकैं दिन सारिय ॥
करिये जो जानै षुसी हसत सत्रु यह सुनत सब।
यह करनी जब जोग्य है दल आवत[6] तकि[7] देस तब ॥[३१०]

---

१ (क) (ख) चरण नहीं है। २ (ख) समेती। ३ (ख) चाट। ४ (क) सेठा।
५ (क) बाढ़। ६ (ख) आक। ७ (क) कि।

[†]संयुक्त अक्षर प्रायः कम ही मिलते हैं, विशेषतः उसी अक्षर का द्वित्व—'मुच्ची' जैसे उदाहरण बहुत कम हैं।
[‡]यदि उसकी 'चाल' विचलित न कर दी, तो मेरा नाम 'पातल' नहीं।

दोहा : रावराज सुनि सेष सूं, कही क्रोध[1] की बात।
दुरजन तोही जानयत, छत्री धरम डिगात ॥[३११]

छंद सावल : साय सारं लही। रावराजा कही ॥
बंधु बोले वरै। कीजिये सो करै ॥
आप चढ़ै चलै। वोर वाही दलै ॥
गुंम भारी भली। नवाब याही सिली ॥
आप होजै अगै। मारि भंजै षगै ॥
बंधु बातै भनै। नीठि आई मनै ॥
रावराजा चढे। बाग ताती कढे ॥
बाजि ताते हके। ध्याय सूघे धके ॥
हल माची दलै। जंग[2] भाले चलै ॥
वार वजी यसी। द्यौस हौनी निसी ॥
फाड़ि फौजे घनी। देस आये धनी ॥[३१२]

दोहा : बल भारी दल नजब के, फारि आविये आप।
धनी राजगढ़ राजई, राजाराव प्रताप ॥[३१३]

दोहा : किती सेन ठी निकट है, घन घायल संगि आय।
सिरदार च्यारि सारी षसे, दोय षेत दो धाय ॥[३१४]

छंद भुजंगी : रहे अषमाल सषेत अवीह।
घने बड भजिय षगन[3] सीह ॥
धरणी पलवाह रहे रणवार।
अषा करि सार चढ़े रणवार ॥
वियौ निरवाणस उदैल नाम[4]।
रहौ रण स्याम तणौ तकि काम ॥
हुये संगि घायल बंधुस दोय।
इन्द्रसिंह संतोषस जोय ॥
दगो नर नजब ता दल कीन।
यतै[5] दल येक उतै दल तीन[†] ॥

---

१ (ख) त्रोध। २ (ख) जेग। ३ (ख) षन। ४ (ख) नाव। ५ (क) षतै।

---

†"दिलीदल आमंरिदल अरु देषणी दल संग।"

समे षटतीस तणैस प्रमाण।
कहै कवि ता गुण कथि वषाण ॥[३१५]

दोहा : अठारैसै षटतीस कै, दिये नजब सिर दाव।
पातिल आये षग बल, धणी राजगढ़ राव ॥[३१६]

चौपाई : रावराज घर पति घर आये। नजब साजि दल पाछै[1] धाये ॥
लीन काज अलवर गढ़ ठामै। मजलि मजलि पर किये मुकामै ॥[३१७]

दोहा : दिलीदल आमैरिदल, अरु देषणीदल संग।
ले चढ़िये[2] बल नजब नर, गज बाजि सुचंग ॥[३१८]

दोहा : यति पातिल घर आवियो, वत सुनि नजब नवाब।
बोलि[3] षुस्यालीराम सगि, यो अप कहिये जवाब ॥[३१९]

चौपाई : बचन तुम्हारो सौ सै पारो। धरम राव पातिल सु हारचौ ॥
सो मंत्री सलाह अब दीजै। कह्यौ तुम्हारी सोई कीजै ॥[३२०]

छंद पधरी : कीन्हे पुस्याल मंत्री जुवाब।
सुनसु पीर मुरसद नवाब ॥
चलिये सु रावराजा सु देस।
मोहे हरोल अगै सुपेस ॥
लैहेहु साह अलवर सुनाम।
जो है षुस्याल मेरो सुनांम ॥
सुनि सोई बात नर नजब षांन।
चढ़ियेस साज दल सज वषान ॥
आमैरि जोव दिषणीस भार।
काबिल षंदार मुलतान मार ॥
गजराज बाजि तोवैस ठठ।
फौजे प्रमाण उमगेस घट ॥
दौले षुस्याल नंदराम नांव।
मंत्री हरोल हुने हरांम ॥
दल जलद कूंच दर कूंच कीन।
डेरास राव घर घट दीन ॥[३२१]

१ (ख) पीछै। २ (क) चलिये। ३ (ख) बालि।

दोहा : बल भारी दल नजब कै, डेरा दीन सु घाट।
करि विजोग दिषणी गए, गह दीषण की वाट[1] ॥[३२२]

चौपाई : दिषणी दिषण दल चलि गये। नजब संग नरपति दल रहे ॥
भोर होत वर कूंच बजाये। अलवर निकट मुकाम कराये ॥[३२३]

दोहा : यत डेरा अलवर निकट, कीने नजब सु आय।
वत चढिये नृप मिलत ही, अलीगोहर पति साह ॥[३२४]

छप्पय : अलवर पतिसाहि वाहि जैंपुर दिस ध्यायव।
मिलन काज दल साज भूप पीथल हित आयब ॥
तिन लिषिये षत षास कोकि ये नजब तास[2] वर।
ते जवाब नवाब बंचि दरबार कीन भर ॥
बूझिये मीर उमराव सब सलाह सूल सो दीजिये।
लीजिये राउ अलवर किला अक हुकम साहि को कीजिये ॥[३२५]

दोहा : सुणि जवाब नवाब कै बोलि मीर उमराव।
हुकम साहि को कीजिये, बहोरि किला सिर दाव ॥[३२६]

छंद पधरी : यो दीये मीर उमराव ज्वाब।
सुनियेस सोय नजब नवाब ॥
सलाह सथ सब सुलि दीन।
परभात प्रात दल कुंच कीन ॥
संगे षुस्याल मंत्री सुनाम।
पहोंचेस साहि संग नृपति ठांम ॥
मिलियेस साहि पीथल नरेस।
गज बाजि साहि दीने सुदेस ॥
परसे नवाब नर साहि चाहि।
लै सीष वार बाहिरस[3] आय ॥
मग मंझि राजगढ़ येक आंन।
ठांम नांम गाजीसथांन[4] ॥

---

१ (क) चतुर्थ चरण नहीं है। २ (ख) नास। ३ (क) वहिरिस। ४ (ख) सायांन।

देषेस सोय नजब नवाब।
दीने सुनाय सब साथ ज्वाब॥
लरि याहि तोरि करिहैंच कूंच।
कीनों मुकांम फौजै समूंच॥
वत किला भीर भारी प्रवान।
चारण चाहि चावंडदान॥
तिन स्याम लाज[1] टारी न टैक।
कीनोस मास रुपि राड़ि येक॥[३२७]

दोहा : बल भारी दल नजब के, पातिल जांन प्रवांन।
लिषयति कोक बुलाविये, चारण चावड़दान॥[३२८]

चौपाई : चावडदान बंचि षत बोले। साथ सुनाय बचन यों बोले॥
हुकम धणी को टालै जोई। तासुं कहियत स्याम दरोही॥[३२९]

दोहा : यों सुनाय सब साथ सौं, निकसे[2] चावड़दान।
हुकम धणी को सो कियो, तजि गढ़ गाजीथान॥[३३०]

चौपाई : चांवडदान कियो यत ग्रानै। यौं नवाब लीनौं गढ़ थानै॥
वार षुस्यालीराम बुलाये। दल अलवर दिस कुच कराये॥[३३१]

दोहा : आये प्रथम षुस्याल गढ, दूजै मध्य मुकांम।
तीजे दल नर नजब के, भनि बांबोली ठांम॥[३३२]

छंद पधरी : दल बांबोली नजब आत।
सो सुनी राव परताप बात॥
सगि लीन बंधु मंत्री बुलाय।
तिन हुकम येक दीनौ[3] सुनाय॥
आयो नवाब अलवर सु लीन।
जो जुरत जंग कैसी सु कीन॥
लीजेस साथ सेनास कूटि।
धणी कटी बाजि लैहोस लूटि॥[३३३]

---

१ (क) लज। २ (क) निकस। ३ (क) दीनूं।

दोहा : हुकम राव पातिल सबन[1], मंत्री बंधुन दोन।
मंत्री बंधु बोलिये, सरं लूण सो कीन ॥[३३४]

दोहा : बत वांवोली नजब नर, कीनैं घणे मुकांम।
येक दिना कर सूरती, देषण अलवर ठांम ॥[३३५]

छप्पय : ठांम षुस्यालीरांम नांम मंत्री सु बुलायब।
अैन बैन नर नजब बोलि तिन बोलि सुनायब[2] ॥
अलवर किला सु ठांम नाम देषुस आजिवर।
हो हरोल सजि गोल वचन मुषक[3] प्रवान कर ॥
सुनि सो जुवाब नवाब के मंत्री वचन ऊचारिये।
है विकट ठांम अलवर किला चलन दलन सजि धारिये ॥[३३६]

दोहा : विकट ठांम अलवर किला, दल पातिलपति पूर।
नीठि नीठि[4] दीषै किला, फटै षेत घन सूर ॥[३३७]

चौपाई : यो सुनि आप नजब नर बोले। कहे वचन मंत्री तुम भोले ॥
रसिये भिरतन बाजी पाई। अब जीतै क्यों रावल राई ॥[३३८]

दोहा : लैहु लराई राव दल, पीछैं पाव न देहु।
कै अलवर मो ले रहै, कै अलवर मैं लेहु ॥[३३९]

छंद पधरी : वर भोर होत बजे सुघोर।
सजेसु बाज गजराज ठोर ॥
तोवै सुथट सेना सभीर।
पठांण सेष मुगलांन मीर ॥
नर नजब बैठि गज चँवर ढालि।
जो कीन राडि अलवर सु चालि ॥
संग सहस साठ दल लीन तूल।
कीनो षुस्याल मंत्री हरोल ॥
जो सुनि रावराज सु बात।
सजि सबल फोज नर नजब आत ॥

---

१ (ख) वन। २ (ख) सुयव। ३ (क) मुष। ४ (ख) दीठि।

दरबार बंधु मंत्री बुलाय।
तिन हुकम येक दीनो सुनाय॥
नर नजब कौन आयो विरुध।
जुड़ि करो जाय चौड़ेस जुध॥
करि क्रोध जोध ठठे रिसाय।
चढ़ियेस चाय चलियेस धाय॥
हके सतेज ताते सुरंग।
विसषेत दल दुहुं ओर जंग॥
वजेस गोल गोलास गोम।
उमगेस इंद्र धर परत धूम॥
लगेस तेग बन्दूक तीर।
कमांन बांन बरछी सु वीर॥
देषंत रावराजा सहाय।
कटैस सेनि घन सूर सथ॥
लरिये षुस्याल मंत्री चलाय।
लगेस लोह हुनेस घाय॥
जो सुनि बात नर नजब आप।
षिसिये सुषेत षाई सु ताप॥
धन कूटि लूटि लीने सु बाज।
जीतिये जुध दल रावराज॥[३४०]

दोहा : आप राडि जुडियेस अप, लैंन किला के हेत।
जीते[1] पातिल राव दल, षिसे नजब दल षेत॥[३४१]

दोहा : हरे नजब दल हो षटे, होय चाहि अनचाहि।
सो अवाज सरवन[2] सुनी[3], दीलीपति पतिसाहि॥[३४२]

इति प्रताप रासो जाचिक जीवण कृत सप्तमो प्रभाव॥७॥

अष्टम प्रभाव

चौपाई : सुनिय साह लिषिये षत बातै। करिय कुंच नजब नर ह्यांतै॥
ये षत वेर बंचि तुम लीजे। (जलद)चलन दिली दिस कीजै॥[३४३]

---

१ (क) जीति। २ (क) सरदन। ३ (ख) सुना।

छप्पय : दिलीसाहि के ज्वाब जो बंचे नवाब नर।
कोनो चलण समाज दलन सेना समेत वर॥
दोलै नंद षुस्याल ग्रहु मंत्री संग लीये।
ग्रषपरतरसे ग्राप ग्रहमदानीस रषिये॥
†जिन हुकम नवाब दीनो यसो पातिल सों कीजे मिलन।
करि जुवाब सरसीरसी तब कीजो दीली चलन† ॥[३४४]

दोहा : रषी ग्रहमदानी[1] नजब, गये दिली दिस ग्राप।
वसन पलटि बंधु हुये, मिलिये राव प्रताप॥[३४५]

चौपाई : करि मिलाप दिली दिस ध्याये। धरा राव ग्रौर दल ग्राये॥
(तिछी)पर कुंची लई सानफतेली। तिन की मार फोज घन मेली॥[३४६]

दोहा : ते तकि ग्राये राव घर, ते नवाब लिये कूटि।
लछी बाजि सुषपाल गज, लीये पातिल लूट॥[३४७]

दोहा : रहत नगर दिली नजब, त्रिहु बंधु सगि भाल।
नंदराम दोलो सुभुज, मंत्री बड़ो षुस्याल॥[३४८]

दोहा : तजि दिली चलिये ग्रहुं, दोल षुस्याल रु नंद।
धकि ग्राये ग्रामेरि दिसि, कियो भूप चरछंद॥[३४९]

चौपाई : पातिलराज सुनी सो ग्रातैं। दे कागद तिन बुझी बातैं॥
क्यों तुम दिली नजब तजि दीनौं। या[2] दिसि ग्रांन काज[3] को कीनौं॥[३५०]

दोहा : षत मंत्री लिषी[4] भूप कौं बहुरौ[5] दिये पठाय।
सिर पै नाहिन स्यांम है, यातै या घर ग्राय॥[३५१]

छंद पधरी : षत बंचि भूप लषियेस ग्राप।
ग्रयै निसंक षयै न ताप॥

---

१ (क) ग्रहमदीनी। २ (क) य। ३ (ख) काय। ४ (ख) लषि। ५ (क) (ख) बहुररौ।

---

†ये दोनों पंक्तियाँ (क) प्रति में नहीं हैं।

हम सीस स्याम तुम रहो येस।
करिहौ[1] दिवान याही सु देस॥
षत देषि बंचि मंत्री सजोय।
चलिये सुचाय अति षुसी होय॥
पहौंचेस जाय जो नृपति ठांम।
मंत्री षुसाल दोलतिराम॥
यौं सुनत भूप लीने बुलाय।
लगेस जाय वा नृपति पाय॥
मिलि कहै भूप को काज कीन।
यन कह्यौ[2] होय जो हुकम दीन॥
बोलियो आप पातिल नरेस[†]।
तुम रहो राव परताप पेस॥
मंत्री सु तासके[3] तुम सुनाम।
कहियेस राजगढ़ किसी नाम॥[३५२]

दोहा : जल षाई ऊंचे किला, तोवै इंद्र अवाज।
बसै वंस षटतीस मधि, दल बल सुभर समाज॥[३५३]

चौपाई : बचन सुनत मंत्री को सोई। कहै भूप चलि देषु जोई॥
अब लग राव धरा सब षाई। देह छोड़ि कै लेहु लराई॥[३५४]

दोहा : जब मंत्री कर जोड़ि जुग, अरज भूप कौं दीन।
दल हरौंल अगैस हम, हुकम होय सो कीन॥[३५५]

छंद पधरी : बोले सु राज पातिल नरेस।
घन फोज संग दैहुस पेस॥
तुम प्रात होत कोजे पयान।
डेरास नग्र बाहिर करान॥

---

१ (क) (ख) कटि हौ। २ (क) करचौ। ३ (क) नासके।

[†]'पातल नरेस' और 'पातल राव' का अंतर ध्यान में रखना उचित है। 'पातल नरेस' जयपुराधीश, तथा 'पातल राव' राजगढ़ के राव प्रताप के लिए प्रयुक्त हुए हैं। प्रतापसिंह जयपुर वालों का राज्यकाल १७७८ से १८०३ ई० है।

सुणि वचन भूप मंत्रीस जोय।
चढि चले वार बंधुस दोय॥
कहियेस नांम दोलो षुस्याल।
लीनीस फोज घन संग लार॥
आयेस धकि धूलैस ठांम।
डेरास ढालि कीने मुकाम॥[३५६]

दोहा : आये दिसि मंत्रीस धिकि, घात बात की दाव।
सो[1] अवाज सरबन सुनी, धनी राजगढ़ राव॥[३५७]

छप्पय : यसी राव परताप, आप सुनीयेस वर।
दल बल सबल समाज, चढ़िये नरू नृपति वर॥
हव नोबति नद वजि, गजि डंका[2] अमाट घण।
समैं अरावैं सलक, इन्द्र गरजंत जोय मन॥
धकिये स धाय दिस पधरीय, गढ़ सैथल मुकाम ढरि।
प्रतापराव बोले वचन, यन जीवत लैहौं पकरि॥[३५८]

दोहा : लघुता ते दीरघ भये, निसष हमारो षाय।
दो हरांम साम्है परे, आ तन आड़ी आय॥[३५९]

चौपाई : पातल राव बचन यौं बोले। जो हलकारे वा दल षोले॥
श्रवण बात मंत्री सुनि जोई। षत भूपति पैं दये पठोई॥[३६०]

दोहा : आये दल बल सबल सजि, धके राव परताप।
हम बलकी अब बात नैं, सलाह आपनो आप॥[३६१]

छंद पधरी : षत जोय[3] जाय पहोचेस पेस।
बंचेस षोलि पातल नरेस॥
वर कियो भूप दरबार दीप।
उमराव जोय मंत्री समीप॥
नर नाथावत कहिये सुनांम।
चित चाहि चतुरभुजोत ठांम॥

---

१ (क) जो। २ (ख) टंका। ३ (क) जाय।

कहिये षगारोत बानिवोत।
पच्याणोत बलिबघोत॥
कुंभावत कुमाहण धीर।
भणि बांकावत विरधंत वीर॥
सुरतानोत स्योब्रह्मवोत।
कीतावत किलकाणिवोत॥
राजधरा धीरावत सोय।
जोगी कछवाहा झाम जोय॥
हमीरदेक कहियेस ठांम।
तीजि और तामवरण[1] स नाम॥[३६२]

चौपाई : हाड़ा खीची उमर नावै। जादव भूप करोरी[2] ठांमै॥
सीसोधा राठोर पंवार। तंवर गौड चौहाणस लार॥[३६३]

दोहा : बैठ्यो पातल पाटपति, कछवाह सिर मोड़।
मंत्री दो सजे निकट, रतनराय अरु रोड़[†]॥[३६४]

दोहा : तिन पातिल दीने हुकम, आमावति के राज।
धरणि राजगढ़ राव पै, कीजे चलण समाज॥[३६५]

छंद पधरी : बर हुकम होत बजे त्रमाट।
सजी सैंन दल सबल ठाठ॥
गजराज बाज तोवँ तयार।
चढ़ियेस भूप परताप वार॥
सहस साठि नर बाजि चंग।
उमराव संग सावंत संग॥
उतरेस आनि धूलेस ठाम।
डेरास ढालि कीने मुकाम॥
यों सुनी रावराजास बात।
चलियेस ध्याय नरपतिय आत॥

१ (क) तामवणा। २ (ख) ककरोपो।

[†]रतनराय और रोड़ाराम खवास दोनों ही मंत्री थे। (ख) प्रति में यह पंक्ति नहीं है।

तब राज काज दरबार कीन।
मंत्री सु बंधु सब बोलि लीन॥
बोलिये आप परतापराव।
आयेस राज[1] होय[2] क्रोध[3] भाव॥
कहियेस सूल सलाह होय।
दीजे विचारि कीजेस सोय॥
बोले सु बंधु[4] मंत्री विचारि।
परतापराव यह सला धारि॥
कछवाह वंस तो तिन सु ठाठ।
तिन तिलक भूप आमैरि पाट॥ [३६६]

दोहा : मंत्री बंधुन के वचन, पातल किये प्रमाण।
सजि दल सैंथल ठाम तजि, टरे स्याम सिर जाण॥ [३६७]

चौपाई : बहुरी कूंच पातिल दल कीने। डेरा आय अजबगढ़ दीने॥
चौकी चंग चढे तिन[5] सोई। राजा राव दलन की दोई॥[३६८]

छप्पय : दीना[6] येक दल दोय जोय चौकी चढ़ि आई।
अणि अणि जुड़ गई बणी हुई[7] बरजोर[8] लड़ाई॥
हुई षवर दल दोय जोय चढ़ियेस जोर भरि।
सबल सूर[9] सावंत ध्याय धकियेस क्रोध करि॥
इत पातल नृप राज दल लइय राडि रुकै कटक।
सबल जांनि दल स्याम के चिगे[†] रावराजा कटक॥[३६९]

दोहा : षिसे राव पातिल कटक, जीते नृप दल जोय।
पातल बूझे बंधुवर, कहै सलाहै सोय॥ ३७०]

चौपाई : यों बंधू मिलि वचन उचारौ[10]। जबर जोर भूपति दल भारौ[11]॥
ताते सल्हा एक यह कीजे। चलन ठांम राजगढ़ कीजे॥[३७१]

---

१ (ख) राध। २ (ख) कोध। ३ (ख) होय। ४ (ख) ×। ५ (ख) नित। ६ (क) दीनी। ७ (क)(ख) ×। ८ (क)(ख) ×। ९ (क) सू। १० (क) उचाररौ। ११ (क) भाररौ।

[†]मत्स्यप्रदेश में 'धीरे से हटना' के अर्थ में प्रयुक्त।

दोहा : पातल बंधुन के बचन, किये पेस परवांन।
आप संगि दल बल सहत, राज राजगढ़ थांन ॥[३७२]

दोहा : राज राजगढ़ राजई, पहौंचे राव प्रताप।
तब हलकारा षत दिये, सुणी भूप परताप ॥[३७३]

छंद पधरी : चढ़ियेस गज पातिल नरेस।
संगि सहस साठ फौजे प्रवेस ॥
मघ मध्य रावगढ़ एक आन।
ते ठाम नांम सैथल[1] निधान[2] ॥
देषंत जाहि नृप हुकम दीन[†]।
अब याहि तोड़ि जब कूंच कीन ॥
लगेस मोरचा[3] जबर जोर।
जुटियेस जोध अति क्रोध होर[‡] ॥
वत कीले मध्य भारीस भीर।
जुरि ठांम ठांम रजपूत वीर ॥
टूटेत सार फूटंत पार।
कूकंत षेत[4] घायन सुमार ॥
रुपि करिय राड़ि[5] जिन मास दोय।
लजिलये नीति[6] नृप किलो जोय ॥
चलियेस भूप करि करि मुकाम।
पहुंचे स आनि बसवंस ठांम ॥[३७४]

छप्पय : बसवो सहर सुनाम ठांम भूपति दल आयव[7]।
नाम षुस्यालीराम निकट वर भूप बुलायब ॥
कहै अैन मुष बैंन कहो जव अब प्रमान करि।
लै फौजे पचरंग संगि लडि लेह राव घर ॥
सुनत वचन मंत्री उठे करि सलाम भरि वहो बलन।
बजि· त्रमाट विराट वर[8] दिस पूरब कीनो चलन ॥[३७५]

१ (क) ×। २ (क) ×। ३ (क)(ख) मोरया। ४ (ख) ×। ५ (क) गड़ि। ६ (क) नी। ७ (क)(ख) आव। ८ (क) ×।

[†]प्रति (क) में यह चरण नहीं है। होर—हौं'र (होकर), होड़, राजस्थानी यथा न्हां'र, पीं'र।

दोहा : मंत्री चढ़ नृपराज के ले, संगि सभर समाज।
गढ़पति भारे भोमिया[1]; तिन तब परी अवाज ॥[३७६]

चौपाई : भजे वास निवास तजे। गढी गढ़ा गोला[2] घन गजै ॥
लई ठाम दो च्यार लड़ाते। पातिलराव सुणी सो बातें ॥[३७७]

छप्पय : सुणी बात परताप आप चढ़ियेस तास वर।
सूर वीर सावंत संगि ले नरू नृपति वर ॥
ताजि बाजि कर तेज तुरकीस षदरीय।
वधि मोला वानेत[3] कछावा[4] छीवड़ भरिय ॥
पहुँचेस जाय नृप दल निकट सेल सर भर भूलिये।
हुलमले भूपदल हाक सुनि पातिल दल दुंदै[5] किये ॥[३७८]

दोहा : कोप होय नृप बचन कह, सब दरबार सुनाय।
अब चलि देषैं राजगढ़, अलवर राव भजाय ॥
उत[6] चलि दल भर भूप के कीने मध्य मुकाम।
नाम जामड़ोली निकट, जीति लड़ाई ठांम ॥
धरणी राजगढ़ तात के, वंधु किये वर आंन।
राज लाज की काज पर, पातिल हुकम प्रमाण ॥
मंगल दल आवन कियो, सुनी राज परताप।[7]
चाय भाय करि चित सु लीये कोकि नृप आप ॥[३७९]

छप्पय : मिलिये मंगल जाय[8] भूप आदर अति कीनब।
पातिलराज प्रताप आप आसन उठि दीनब ॥
कही राज वर बात आत तुम भली कीन अब।
करि सलाम यन कही नजर सेगाइ सौरि सब ॥
घर धणी आप आवन कीयौ अलक्ष्यौ है अन मौन अति।
लै बंधु आदि आमैरि कौ सुलझावत आमेरपति ॥[३८०]

दोहा : षुसी हुए नृप वचन सुनि, बहुरि जुवाब यों दीन।
देषन आये राजगढ़; देषि कहो सो कीन ॥[३८१]

---

१ (क) भौमिया। २ (क) घोला। ३ (क) वनित। ४ (क) बछावा।
५ (क) दुलै। ६ (क) (ख) उ। ७ (ख) आज। ८ (क) ×।

छंद भुजंगी : बजे भोर नृप के दलों सों नगारे।
चले राज सगे सुदल सथ भारे ॥
असै गोल गोले अरावां[†] सु ठठै।
पीछे कटकै चढ़े इंदु घटै ॥
उडी रैनिका भूमि भारी अघारी।
मनो वासरंग की भई भूमि कारी ॥
यसी राजगढ़ ठांम हौती अवाजै।
आये कटकै रटकैस काजै ॥
यसी रावराजा सुनी बात सोई।
हुकमै दिये सौ किसी बाज होई ॥
चढ़े सूर सावंत महमंत[1] भारे।
धरे नाहि पीछै टरै नाहि टारै ॥
कछी अरबी तुरकीस ताजी।
षदारी करंते मनु बाज बाजी ॥
दुहु वोर उडै अरावैस धुमं।
मनु इंद्र गजै अवजै स भुमं ॥
कटै सुर मथै वहै हथवारं।
लगे वाण बंदूक तेगैस तीरं ॥
रची राड़ि यतै वतै जुध भारी।
न को कोय जीते[2] न को आत हारी ॥
किले रावराजा करी यौं लराई।
जुटी भूप फौजै सु वाजी न पाई ॥[३८२]

दोहा : बोलि षुस्यालीराम सुं, कहे भूप बर बैन।
राव जु[3] आगल[4] राज की, राव रहे घर[5] चैन ॥[३८३]

चोपाई : वचन सला के अब लीष दीजै। राव कहै सोही तुम कीजै ॥
दलन चलन जैपुर दिस होई। कीजो राव कहै अब सोई ॥[३८४]

---

१ (क) (ख) मह। २ (क) जीत। ३ (ख) ज। ४ (क) (ख) अगल।
५ (ख) धर।

[†]एक प्रकार की तोपें।

छप्पय : वचन भूप कै सुण जोय मंत्री प्रमाण किय।
लिषिये जोग जुवाव रावराजा स पेस दिय॥
भूपति आये बारि आरि मिलिये सवेग अति[1]।
मति दुर[2]मति करि दुरिय सिवर धारियै सांच चित॥
अरज दास की आप लगि औगुण गुण निवारियै।
कर जोड़ेस षुस्याल कह मो सलांम अब धारियै॥[३८५]

छप्पय : ते षत पातिल बंचि संचि दरबार कीन भर।
मंत्री सब उमराव बंधु लैं कह्यौ बचन भर॥
कहण होय सो कहो सला सांची हम धारत।†
....॥
कीनीस मंत्री बंधु अरज अपगाली बुधि कों चली।
रावराज तुम धर धनी कीजै सो जाणौं भली॥[३८६]

दोहा : षत भेजे पातिल बहोरि, सलाह आप उर धारि।
मिलणो राजकवार को, भूपति कै दरबारि॥[३८७]

दोहा : मंत्री षुस्यालोराम षत, बंचि अरज जा कीन।
भूप कहै पातिल कहै, जो मंत्री करि लीन॥[३८८]

छंद पधरी : लिषियेस जोग मंत्री जुवाव।
धारीस आप कीजैसि चाव॥
चाहि आप पै भूप नाय।
कीजेस आप आवै सदाय॥
बंचि रावराजास लीन।
गज बाजि बोलि हुकम दीन॥
बजत बंब तिरमाल तुर।
सजेस सूय रजपूत सूर॥
गज चढ़े कंवर वषतेस नांव।
किलके नकीव[3] कीनी तमाम॥

१ (ख) पति। २ (ख) दर। ३ (क) मकीव।

†इस पंक्ति के पश्चात् (क) प्रति में दो पंक्तियाँ तथा (ख) प्रति में एक पंक्ति नहीं है।

सिर चवर ढाल तिरमाट तास।
पचरंग रंग अगैस पास॥
जो षबर भूप नष हुई जाय।
उमराव लीन साम्है पठाय॥[३८९]

दोहा : चाय भाय भूपति मिले, नृपित षुशी की नीति।
बासाये साम्ही सुरति, राजकवर की रीति॥[३९०]

दोहा : दीये बाज गजराज सब, सिरोपाव धर राज।
राजकवर कौ सीष दी, नरपति करी निवाज॥[३९१]

इति श्री प्रतापरासो जाचीक जीवण कृत अष्टमो प्रभाव ॥८॥

नवम प्रभाव

चौपाई : राजकवर राजगढ़ आये। वहोरि भूप दल कुंच बजाये॥
डेरा गांव सु डेरा दीने। भूप मुकाम वहोत दिन कीने॥१॥†[३९२]

दोहा : काहु कही नृपराज सूं, अरज जुगल कर जोरि।
हलद्या मंत्री राव के, मिलिया कहै किरोड़ि॥२॥[३९३]

छप्पय : सुणी राज‡ परताप कोप भरयेस आप अति।
करै दाव दल भंग अंग धारीस साच चित॥
करे बार दरबार कोकि मंत्री सु बुलायब।
षुस्याल दोल अरु नंद याद करतै त्रिहु आयब॥
देषंत भूप दीने हुकम कारंदा कर कैद किय।
आदि थांन आमैर गढ़ विकट ठाम धर धर दिये॥३॥[३९४]

दोहा : हलद्या[1]* नृप गाढ़े गहे, करे कोप अति आप।
जो बातैं सरवण सुणी, रावराज परताप॥४॥

---

१ (ख) हलधा, (क) हल।

---

†पहले प्रभाव में छंदों की क्रमसंख्या कुछ चली थी और इस अंतिम प्रभाव में भी प्रारंभ की गई हैं, किन्तु ४ तक ही चल कर रह गई। यह क्रम (क)-(ख) दोनों प्रतियों में इसी प्रकार है।

‡यहाँ (ख) में लिपिकार को भी भ्रम हुआ है—कई बार 'राव'-'राजा' में भ्रम हुआ, जो पुनः पुनः संशोधन से सिद्ध होता है।

*हलदिया, हल्दिया, हलद्या—आज भी कई रूप प्रचलित हैं।

क्रोध होय पातिल कही, सुनतैं बचन सुनाय।
काके हलद्या कोन नृप, पड़े[1] फंद कहां जाय ॥[३९५]

चौपाई : बालिक जिम पाले ब्रहु भाई। लघुता ते मैं किये बड़ाई॥
मेरे मेरे नांय विकांनें। दोय परा[2] दिस च्यार रौ जानै ॥[३९६]

दोहा : ज्याये तो मो हथ ही, मारूं तो मो हथ।
मो जीवतब न मारि हैं, नीढ़ि ग्रामवत नथ ॥[†][३९७]

छप्पय : यसी आप[3] उर धारि[‡] वारि पातिल लिष दीनी।
अहमंदान नवाब जोग ज्वाब लिष लीनी॥
ये षत बंधु बंचि संचि जानियो येक मन।
हम पै भारी भीर धीर धरिये न येक छिन॥
षत जोजि बंच नवाब नर पहर परत कीने चलन।
अराव सुठठ दल बल सबल धर पछिम कीने चलन ॥[३९८]

दोहा : कहर कुंच दर कुंच कर, कियो निकट धर आंन।
जो हलकारैं षवर दिय, पातिलराव प्रवाण ॥[३९९]

छप्पय : मिलन काज दल साजि रावराजा चढ़ि चलिब।
आवन सुनत नवाब आप साम्ही भुज मिलिब॥
बुझी आत[4] सु बात काज को कीये याद हम।
रावराज परताप करन होय सो कहो तम॥
बोलिये रावराजा बचन धरपति प्रति करिहे जलल।
स्याम सरन हम सुन हुये तुम दिली दल बल सकल ॥[४००]

दोहा : यों सुन जुवाव नवाब नर, दल साम्ही धर ध्याय।
षवरि भई भूपति कटक, तेन तपति अति ताय ॥[४०१]

चौपाई : हलभल पड़ी भूप दल भारी। षरी रहै फोजें सजि सारी॥
सांवत सूर रहै चढ सारी। बाजि पलाण र गजन अवारी ॥[४०२]

---

१ (ख) षड़े, (क) जुड़े। २ (ख) पराह। ३ (ख) अ। ४ (क) आ।

[†]इस दोहे के पिछले तीन चरण (ख) प्रति में नहीं हैं।
[‡]ऊपर के छूटे चरण यहां लिखे हैं।

दोहा : षांनदांन नहि जाणि वो, पड़ै कहर दल काम।
घर धरि[1] सूधी आत धर, पल न परत विसरांम ॥[४०३]

छंद त्रोटक : वर भूप कियो दरबार जवै। उमराव रु मंत्री संगि सबै ॥
तब बात उचारि विचार कही। वणि सज से महाराज लही ॥
कर देष वैरावक सेक[2] करी। सिर उपरि व्याधि उपाधि षरी ॥
करणी[3] महाराजसि को बरजै। हलद्या अब लायक या गरजै ॥
कर जोडि करत यसी अरजी। करीये सब आप षुसी मरजी ॥
त्रप यौ कहि ये कहियेस उसी। करिहै अब जो सब होत षुसी ॥
वर भूप[4] वरैस[5] दियो हुकमै। बुलीया[6] हलद्या सहमे[7] ठकमै ॥
वर भूप नषेस होवेस घरी। सिर नायस आप सलाम करी ॥[४०४]

दोहा : अति महैमा मनुहार करि, कानां आदर भाव।
तिहुं बंधुन को अपति नर, पहराये सिरपाव ॥[४०५]

चौपाई : नरेस पेस लै यौ फूरमाई। कीनी ते करतार कराई ॥
ये आये दिली दल भारी। यह मंत्री है वार तिहारी† ॥[४०६]

छप्पय : सुणि मंत्री नृप वचन जोड़ि कर अर्ज सु कीनीय।
करू मांन परवान हुकम भूपति मो दीनीय‡ ॥[४०७]
× × × × ×

छंद भुजंगी : यसी राज फौजै सहुंनी अवाजै।
आये कटकै रटकैस काजै ॥
दुहुं भार भारी अणी आण मंडी।
बहै गोल गोला किती सेन षंडी ॥
तबै राज की फौज बाजे बजाये।
यते हुल हाथी समाही धकाये ॥

---

१ (क) पर। २ (क) से। ३ (ख) वरणी। ४ (ख) भू। ५ (ख) करैस।
६ (ख) षुलीया। ७ (क) सते।

---

†चौथा चरण (ख) प्रति में नहीं है।
‡आगे की चार पंक्तियाँ किसी भी प्रति में नहीं हैं।

बहै तीर तरवार बानै वरछी ।
बहै बाघनो बीर बन्दूक अछी ॥
समै राव मंत्रीस कीनी[1] लड़ाई ।
षिसी राज की फौज तर ताप षाई ॥[४०८]

दोहा : मंत्री रामसेवगवि, होसदारषां संगि ।
स्यांम नाम के काम परि, जो वर जीते जंग ॥[४०९]

चौपाई : सो पटल सीधे सुनि कानन । पातिल राव जवर परवानन ॥
चाह करी मुष वातै यो बोली । लेहु बोलि दल लेहु हरोली ॥[४१०]

छप्पय : समै सैल सीधो[2] पटल छल छलै वहरि दिसि ।
हिंदवान तुरकान पाण किरवांन कियो बस ॥
दषण दल बल[3] सवल[4] तास के कहिये नायक ।
लषन[5] सेनि ता संग जंग[6] जीतंत कतायक ॥
जिम धनी राजगढ़ याद किय रावराज कीने चलन ।
षुसी आय अति चाय चित किय पातिल सिंधे मिलन ॥[४११]

दोहा : अति आदर सनमान किय, दिये बाजि गजराज ।
पातिल पाटल सिंघ प्रति, कहीये करो हम काज ॥[४१२]

चौपाई : पातिल पै सुनतै वर बोले । जानै हम वीजे सो षोलै ॥
कही पटल सीधे† यह कीजे । धरि हिंदवान दांम लै दीजै ॥[४१३]

छंद पधरी : सुनि कही रावराजास येह ।
करिहैस काज सरिहैस देह ॥
मैं दल हरवल अगैस पेस ।
लै देहु दाम चलि देस देस ॥
कीनीस बात सिंघे प्रवाण ।
दल किये देस पछिमस जांन ॥

---

१ (क) की । २ (ख) साधो । ३ (क) दल वल । ४ (क) समाज । ५ (ख) लषम । ६ (क) जगे ।

---

†पटेल सिंधिया ।

गढ़पती जोय संजै सु दाय।
भजैस वेगि गोला बजाय[1] ॥
मुरडंत जोय लीजे संमारि।
उरबंत जोय दल मिलै आरि ॥
बरबसी रावराजास कीन।
घर ठाम ठांम सो लये छीन ॥
डेरास निकट जैपुरस कीन।
धरपती भूप कौ किसत दीन ॥[४१४]

दोहा : दिना एक जैपुर दिसी, चढ़िये राव प्रताप।
तप बल[2] आप बल[3] संग लै, गज होदा सजि आप ॥[४१५]

दोहा : षरे रहे सजि वरकिसा, स्यांम धरन परवांन।
टलिये पातल तासवर, आदि ठाम सिर जान[4] ॥[४१६]

दोहा : धरा ढुंढाहर मुरधरा, लियै पटैल भरि दाम।
लियेस पातिज्ञ तासवर, गये च्यारि गढ़ ठांम ॥[४१७]

छप्पय : दल दिषणे बल सबल जाणि आमैरिनाथ नर।
मुरधरपति कौ लिषे लेहु षत येहु वंचि वर ॥
हम घर तुम घर दाय आय यन कियो दुंद दल।
हम दल तुम दल संगि होव भंजैस मारि षल ॥
ब्रिजराज बंचि मुरधर धणी आप दलन दीनो हुकम।
परतापराज आमैरिपति मिलो वेगि ता दलन तुम ॥[४१८]

छप्पय : जो सुणी राज परताप आप मुरधर दल आयब।
किये बार दरबार कोकि मंत्री सु बुलायब ॥
नामस दोलतिराम ठांम आवन वर कीनिय।
कही गाज नृपराज हुकम मंत्री प्रति दीनीय ॥
चढौ प्रात दल दिषणसी आन कियो अति दुंद धर।
आमैरिनाथ बोले बचन ल्यौ पटैल जीवत पकड़ ॥[४१९]

---

१ (ख) जोय जाय। २ (क) तत्र बल। ३ (क) अपदल। ४ (क) नान।

दोहा : यों बोले वर वचन सुणि, मंत्री दोलतराम।
देषे व्रप सिर पर रषे, षांनजाद[†] के काम ॥[४२०]

छंद पधरी : चढ़ियेस राज पातल नरेस।
दल आप वियो मुरधरस पेस॥
जो सुनी बात सिंघे[1] प्रमाण।
बूझेस राव परताप आण॥
कहयेस जोय मैं जीसी कीन।
तुम सल्हासूल सांचीस दोन॥
बोलिये राव परताप नांम।
यक वोर कीन रजपूत कांम॥
चढ़ियौस वार सींध्यौ[‡] पटेल।
तोषार[*] चढि षड़िये सुगेल ॥[††][४२१]

छप्पय × × × × ×।
× × × × × ॥[‡‡]
जौ नवाब सु ज्वाब करु सरसी विधि सारिय।
कहण होय सो कहो जिसी बल बुधि हमारिय॥
करि सलाम मंत्री उठे स्याम काम कीनो चलण।
नांम षुस्यालीराम ते पहौंचे दिली दलन॥[४२२]

दोहा : अहमंदान नवाब सुं, मिलिये मंत्री जाय।
हंसि नवाब अंसे कही, भली कीन तुम आय॥[४२३]

चौपाई : बोले मंत्री बचन सुनाये। कौन काज तुम या घर आये॥
लैण होय सो मोसुं लीजै। वहोरि कूंच दिली दिस कीजै॥[४२४]

---

१ (क) सीधे।

[†]नौकर।

[‡]सिंधिया। जैसे 'हल्दिया' से 'हलद्या', उसी प्रकार सिंधिया का 'सिंध्या'। 'हलद्याजी की हांक सों सिंध्या भाज्यो जाय'—एक प्रचलित उक्ति।

[*]घोड़ा।

[††](ख) में यह चरण नहीं है।

[‡‡]२ पंक्तियाँ नहीं मिलती हैं, छप्पय की अंतिम चार पंक्तियाँ दी जा रही हैं।

दोहा : जब नवाब अैसे कही, देहु लेहु नहीं दांम।
काम षुस्यालीरांम सूं, सदा षुस्याली राम ॥[४२५]

छंद पधरी : बोलेस बात मंत्री सजोय।
करिहै नवाब जो षुसी होय ॥
बोले नवाब यक रंग अंग।
करियेस कुंच चलियेस संग ॥
कीनीस बात मंत्री प्रवाए।
दल किये कूंच दिली दिसान ॥
सो सुणी रावराजास बात।
चढ़ियेस आप जब पहर प्रात† ॥
मग[1] मिले[2] रावराज सवार।
नवाब राज मंत्रीस लार ॥
चलियेस कुंच दर कुंच कीन।
डेरास निकट दिली सु दीन ॥[४२६]

दोहा : जा देषि दिली नगर, ढूढो ढंग कुढंग।
गिरदी होत गनीम की, छतरपति बल भंग ॥[४२७]

छप्पय : अहमंदान नवाब देष वर वचन उचारिय।
रावराज परताप आप यक सुणौ हमारिय ॥
देहु मेटि दुष दुंद करू आनन्द दिली कों।
आप रहों सिर षेड़ कियो देषव अब[3] ही को ॥
रावराज बोले बचन सिर धरिये दिली घणी।
तो जाणों सों रीस सब × × ×‡ ॥[४२८]

दोहा : गनीम मारि कीनो गरद, मिटे दिली दुष दंद।
राव लगे पतिसाह पग, दियो तषत सिर कंद ॥[४२९]

---

१ (क) ×। २ (क) ×। ३ (ख) देष अबव।

---

†यह चरण (क) प्रति में नहीं है।
‡(ख) प्रति में यह पूरी पंक्ति ही नहीं है।

दोहा : साह कियो सनमान अति, कीनो आदर भाव।
राव पटतर राज है, राज पटतर राव ॥[४३०]

दोहा : सिर सोहन सिरपेंच[1] दिय[2] जटत किलंगी हमाल।
सपत पारचे[†] षिलत[3] दिय अरु समसेर दुसाल ॥[४३१]

छप्पय : रावराज परताप आय दिली तज चलिब।
कीनौ प्रताप पयान आन देसन दिस हिलिब ॥
मग मझारि यक गांव नाव पाली प्रमाल किय।
अस[4] मग जहै वास तास कै घने माल[5] लिय ॥
यों परि धाक दिली धरन मारत आवत अपत नर।
साम्हीस आय सिर नाय[6] कै करत भोमियां भट भर ॥[४३२]

दोहा : देस पहौचे देसपति, रावराज परताप।
षुसी मान अलवर किलौ, गज तजि उतरे आप ॥[४३३]

चौपाई : राव राज अलवर गढ़ आये। षत भूपति कौं दिये पठाये ॥
(ये) षत बंचि नृपति अब तीजै। दैन कहै गढ़ च्यारिस दीजै ॥[४३४]

दोहा : जो षत भूपति बंच वर, लिषे न वहोरि जुवाब।
क्रोध होय पातिल कही, अब लै लहु सिताब ॥[४३५]

दोहा : बर हलकारै षवर द्दी, राव राज[7] पै जाय।
कोट फोज अप की पड़ी लछमनगढ़ सुधि आय ॥[४३६]

दोहा : बुझी पातल चाह[8] करि, कोन यक यो बात।
है धामाई[9] लालजी, जो हम सुणी कहात ॥[४३७]

छंद भुजंगी : सुनी रावराजा यसी[10] बात सोई।
हुकमै दियो आप मंत्रीन जोई ॥
चढ़ो वेग ही सो सबै फोज सजो।
पगै मारि जा भूप की फौज गजो ॥

---

१ (ख) पोंय। २ (ख) य। ३ (ख) षिल, (क) लिषत। ४ (क) स।
५ (ख) मालाल। ६ (ख) नाम। ७ (क) रावरा। ८ (क) (ख) चह।
९ (ख) माई। १० (क) यिसी।

[†]सात प्रकार के वस्त्र विशेष से निर्मित।

सुनतै यसी जो चढ़े राव मंत्री।
लिये[1] सूर सथै छको छोहं छत्रो ॥[४३८]

छंद पधरी : जुड़ईस दोब दल अरणी आनि।
आमैरिनाथ दिषणी दलानि॥
बाजंत गोल गोलास गुंम।
गरजंत[2] इंद्र धर परत धुंम॥
हलास हल आमैरिनाथ।
कर कटि तेग घरण सूर साथ॥
मिलियेस जाय ताते तुरंग।
रचियेस वेर दल दोय गंज॥
भर धकै छाकि छत्रीस छोह।
वर बहै[3] तेग[4] बरछास स्योह॥
कर बहै वीर दल दीष हथ।
झड़ि[5] पड़े षेत घन सूर सथ॥
यन सैन कूटि लीनी गलान।
फिरि गई पूठि दिषणी दलान॥
सीधै पटैल पाईस ताप।
जीतिये नथ[6] आमैरि आप॥[४३९]

दोहा : सेन षसति सीध्यो भजौ, छांड़ि बाज गज सज।
पातिल नर आमैरिपति, बरजीले रण जंग† ॥
फते पाय आमैरिपति, गुमरै भरो अटंच।
जुरे राव परताप तही, उतरी रणक पचंग‡ ॥[४४०]

चौपाई : सीधो दल धीरज नही धरै। धुधु प्रात जिसी जब करै॥
बुझी पातिल सो वर यैसी। दुरि दिषण अब कीजै[7] कैसी[8] ॥[४४१]

---

१ (ख) सिये। २ (क) रजंत। ३ (क) बह। ४ (ख) नेग (क) गं।
५ (ख) झड़ी। ६ (ख) तथ। ७ (ख) काजै। ८ (ख) किसी।

---

†केवल (ख) प्रति में।
‡केवल (क) प्रति में।

दोहा : वर पातिल बोले बचन, रहौ पटैल मन सेर।
जीत हार करतार हथ, करत न लागै देर ॥[४४२]

चौपाई : वर पातिल यों वचन सुनाये। दल पटैल अलवर गढ़ आये ॥
नरवर आप यसो पणधारी। कहै पटैल यह ठांम तुम्हारी ॥[४४३]

छप्पय : यसो राव परताप आप मति महा भीमबल।
गढ़ बावन धर धणी दिली आमैरि मझि थल ॥
अलवर साहि सुठांम विकट वर किलौ तास तर।
सेनि सुभर भरपुर सूर घण रहै सार सजि ॥
नरु निषत्र कुल पाटपति यसो रावराजा धरणि।
धर दिषण देस नायब दलन सो लिये राषि सीध्यो सरणि ॥[४४४]

दोहा : रषि सींध्यो दिल धीर दे, दई सीष वर आप।
हम सामिल तम काम परि, यौं कह्यौ राव प्रताप ॥[४४५]

दोहा : कहे रावराजा वचन, जाव सेष तुम संग।
बात न मानी स्यांम की, रती येकने अंग ॥[४४६]

दोहा : पन[1]धारी पातिल मनै, टारी नही न टेक।
जीवणषां होसदारषा, दिये कैद करि सेष ॥[४४७]

दोहा : समै धारि पातिल सुरति, सजी फौज घण[2] गैल।
गज होदा चढ़ि हण लिये[3], कीन किला की सैल ॥[४४८]

छप्पय : हदि नोवत नदि वजि गजि टंका[4] त्रमाट घन।
रची सुरंग सब[5] संग त्यारि तोवैस आगे वन ॥
समरि राजपुर ठांम नाम टहलैस समरि वर।
गौसिथाल कीलौ सम्हारि अपनाय नृपति वर ॥
गाजीथान वर आंनि करि समर किलो मुकाम कियो[6]।
मंत्री बंधुन तास वर हुकम रावराजा दियो ॥[४४९]

दोहा : चढो वेग या वेर ही, करो न पल विसराम।
भंजो गोला मारि गढ़, राजणोत गढ़ ठांम ॥[४५०]

---

१ (ख) गन। २ (क) ×। ३ (ख) हलिये। ४ (क) क। ५ (क) संच।
६ (ख) करि।

चौपाई : सुरिण मंत्री चढ़िये तिह वारै। फौज संग घरण तोव तयारै॥
करि मुकाम पहुँचै वा ठामैं। कहियत राजरणोत गढ़ नामैं॥[४५१]

दोहा : मंत्री रामसेवग वरै, लीनो गढ़ गिरदान।
उठे गोल गोला गिरद, जैसी असरिण प्रमारण[1]॥[४५२]

दोहा : गांव मारि करि[2] गढ़ गिरद, वहौरे मंत्री नाम[3]।
आये गाजीथान गढ़, करि पातिल सलाम॥[४५३]

छप्पय : राजरणोत गढ़ जोरि तोड़ि मंत्री वर मिलिब।
रावराज परताप आप अलवर गढ़ चलिव[4]॥
छड़ी सेन ले संगि अंगि आनंद धार चित।
मंगल मझारि तिहि वारि चल कियो तेज अति॥
पहौंचस आनि अलवर किले त्रिकालद्र जारणीस जब।
कियेस यादि करतार अब बोलि पठाये कटक सब॥[४५४]

दोहा : षत बंचत चलिये कटक†, किये यादि क्यौ राज।
उतरै आ अलवर किलै, (मिल) मंत्री बंधु समाज॥[४५५]

चौपाई : मिलि पातिल यों वचन उचारे। मंत्री बंधुन सो वा वारे‡॥
धर अमर नर कौंन रहायो। आयो गयो गयो फिरी आयो॥[४५६]

छप्पय : कहां कैरु जरजोध कहां पांडौ रु पंचधर।
कहं विक्रम कहां भोज कहां बलि दान करन कर॥
कहां चकवै मंडली कहा रावरण बलवंता।
हटवारै ज्यौं हरषि आय चलि गये अनंता॥
यों कहैं रावराजा वचन मंत्री बंधुन तास वर।
मिटै न लिषीयौ लाष बुध जो करणी करतार कर॥[४५७]

दोहा : रावराज यौं वचन कहै[5], धरौ चरन निज ध्यान।
पहर प्रात बैकुंठ धर, पातिल कियो पयांन॥[४५८]

---

१ (क) रमारण। २ (क) ×। ३ (क) सेवग नृप सु करी सलाम। ४ (क) वलिव। ५ (क) उर मांहि हरि।

---

†(क) प्रति में यह प्रथम चररण नहीं है।
‡(क) प्रति में नहीं है।

चौपाई : कूक परीस किलै अति नारी। परै कहर किलसे नर नारी॥
उर अनंद बीकावत राणी। सपत जनम अरधंगा जाणी॥[४५९]

दोहा : सोला ओर बत्तीस सजी, मन कर अनत उमंग।
सती सकति बीकावती, जरीस पातिल संग॥[४६०]

छप्पय : दिली सुणी दिषणादि सुणी आमैरिनाथ नर।
वीकाणे जोधान कह्यौ सुणि डिग्यौ थंभधर॥
त्रपति नरू साछात यसो नर करनि न कोई।
किला कोटि घर गंजि आप अजगंज गयोई॥
उतरादि दषिण पुरब पछिम ताणि तल घर जबर छक।
जग बात जगत रहसीरि घ्रूं अमर निरंजन नाव यक॥[४६१]

दोहा : धरमदान सुभ करम करि, जा करि निमत नरेस।
तव प्रत पातिल रावरो, वणो तिलक वषतेस॥[४६२]

छप्पय : राज तिलक वषतेस मुकट त्रप नर सिर सजिय।
मंगल तिय गुन गाय वार नोवत[1] वर वजिय॥
निजर वाजि गजराज हुय पोसाष[2] विविध[3] वर।
सहस नरन ते नाय सिर कर सलांम जिन सिर चवर॥
ढलि हलभल भल[4] रतीय फिरी दुहाई देस धर।
वषतेस रावराजा बली तषत तीसरै त्रपति नर॥[४६३]

दोहा : नर हैवरा सिर निजरि, राजै राजा रीति।
रावराज पातिल तणौं, वषत नरेसां नीत॥[४६४]

छद पधरी : वषतेस रावराजा नरेस।
तप वड़ो राज राजंत देस॥
नर नरु पाटपति कुल निधान।
किरवान दान छत्री प्रवाण॥

---

१ (ख) तोवत। (क) वित। २ (ख) योसाव। ३ (क) द्रधिन। (ख) इरीधन।
४ (क) ×।

---

[1]ध्रुव।

नर वाजि गज त्रय रहत गैल।
वन विकट मेर सिर होतसैल॥
चमचमैं वोठ बंदूक त्यार।
नित होत सिंह सूरां सिकार॥
लगि लोह तेज तड़फड़त जीव।
सिंहणीय भौंडि परसैं न पीव॥
सोहता माल सूरास दर।
भोगंत माल छत्री मरद॥
संग रहै सायर गरम चोड़।
माणंत छाक छत्रीस जोड़॥
रावराज परताप[1] नंद।
नित अष्टजाम आनंदकंद॥[४६५]

छप्पय : वरन हीन कुलहीन जाति आधीनवांन[2] अति।
उर विचार यो धारि अंक ये किये जोर वित॥
लघु दीरघ नही लहे चले[3] सो कहो निगम गम।
मो मति अति[4] अनुसार वार ये कहे बुधि सम॥
अरदास पती कविजन सुनों जानों नाहि न पूर कम।
लीजे सवारि कीजे क्रपा कवि पंडित परवीन तुम॥[४६६]

दोहा : मैं सिष हौ तुम चरन कों, आठौं जाम अधीन।
परु पाय परनाम करि कवि पंडित परवीन॥[४६७]

इति प्रताप रासो जाचीक जीवण कृत
नमो प्रभाव पूर्णम्
मीति फुस वदी ६ संमत् १९०४†

---

१ (ख) रताप। २ (ख) वीन। ३ (ख) ×। ४ (क) ×।

---

†(क) प्रति में इस प्रकार—
इति प्रतापरासो जाचीक जीवण कृत नवमो प्रभाव संपूर्णं। संवत् १९०७ आषाढ़े शुक्ल। ९ बुधवासरे लिषितं मिश्र गिरधारी लिषायतं राणोजी श्री मरभ्रटजी आतम भतीज चिरंजीव वकसराम पठनार्थं॥ शुभम् भवतु॥ श्री रस्तु॥ श्री जी॥

परिशिष्ट १

घुसाल कृत

प्रतापरासो (लछिमनगढ़ रासो)[1]

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

अथ प्रतापरासो प्रारम्भः

श्री गणेश-स्तुति

दोहा : प्रथम नाम सुमिरें सबै, गणपति गुन विस्तार।
ताते सब सुख पाय हैं, मंगल हैं अवतार ॥१॥
गजमुख सुमरत सकल नर, सुखदायक हैं नाम।
विघ्नहरण धरि ध्यान बहु, पावें सुख को धाम ॥२॥

कवित्त : सिन्धुरवदन बुधिसदन रदन चारु,
सिंदुर लगायो ओप उदित दिनेस के।
चारि भुजदण्डनि उमण्डनि उमण्ड दुख—
दारिद विहण्डनि बखानत हमेस के।
बर में घुसाल बर महिमा बिलन्द करि,
ऐसे जगदम्ब हरनन्द बल बेस के।
सुरहू सुरेसहू असेस गुनी ध्यावत पैं,
पावत न पार गुन गावत गणेस के ॥३॥

---

१ पुस्तक के अंत में कवि ने स्वयं इसे 'लछिमनगढ़ रासो' कहा है।

अथ राजवंशावली वर्णनम्[1]

दोहा : कूरम वंश उदित भयो, उदैकरन महाराज।
आमेरी निज थानपति, राजन को सिरताज ॥४॥
प्रगट भये बरसिंह नृप, तिनते श्री महिराज।
उदित भये तिनते महा, नरूसाहि महाराज ॥५॥
तिनही ते सब प्रगट हैं, नृपति नरूका वीर।
विपतिहरन धीरजधरन, गौरव गुन गंभीर ॥६॥
तिनते उदित महा भये, लालोजी नृपनाथ।
उदैसिंह तिनके तनुज, जिन सुजसन की गाथ ॥७॥
उदित ओप तिनते प्रगट, भये लाडखां राउ।
फतेसिंह तिनते प्रगट, जिनके सुघ सुभाउ ॥८॥
कलियानसिंह तिनते प्रगट, भये अनदसिंह राज।
तेजसिंह सुभ उदित हैं, जोरावर महाराज ॥९॥
तिनते मौहोबतसिंह हैं, उव प्रताप महाराज।
ताते सुत वषतेस सुभ, सब राजनि सिरताज ॥१०॥
तिनते सुत द्वै प्रगट हैं, बिनैसिंह बलवन्त[2]।
उद्यत उदित उदार बहु, धीरज गुन गुनवन्त ॥११॥

प्रतापसिंह[3] सुजस वर्णनम्

कवित्त : चारों ओर सरस जगौ है जगती के मांहि,
चांदनी सरस बीचि झलक सुहायो है।
सोभा को समुद सोहै सरस सुधाकर सो,
बरस बरस बीच बढतु सवायो है॥
राजत महीपनि में सकल समाज साजि,
गुन को गनेश बेस छंदनि में पायो है।
कहत 'षुसाल' श्री प्रतापसिंह महाराज,
रावरो सुजस देस देसनि में छायो है ॥१२॥

---

१ वंशावली 'प्रतापरासो' (जाचीक जीवण कृत) से मेल खाती है—कोई अन्तर नहीं है। ग्रन्थ-आकार के अनुरूप यहां "उदैकरन" से ही राजवंशावली का आरम्भ किया गया है।
२ कवि ने विनयसिंह तथा बलवन्तसिंह दोनों को समान महत्त्व दिया है।
३ प्रतापसिंह अलवर राज्य के संस्थापक तथा इस काव्य के नायक हैं।

बषतावरसिंह वर्णनम्

यथा

कवित्त : दान सनमान किरवान तप ध्यान करि,
दूसरो जहांन में न और कबर वर को।
कहत षुसाल कवि सुषमा समूह सो है,
धर्म सिद्धिदायक गरीब परवर को।
दूषे दुष भूषे नर सूषे सरवर भरो,
देवतरु दया मेघ...............दरवर को।
महा मरवाने बषतेस............... महाराज,
हिन्द में न राजा अब तेरी सरवर को ॥१३॥

विनैसिंह वर्णनम्

यथा

कवित्त : सरस सुबेस जस जाहर जगाई जोति,
जग में सुवेदन की पद्धति पढाई है।
धर्म कर्म करि पुन्यन के सलिल भरे,
बिमल बिसाल बेस बंस की बढ़ाई है॥
भक्ति की प्रतीति रीति राषत गोबिंद ही सौं,
कहत षुसाल ऐसी महिमा बढ़ाई है।
महाराज विनैसिंह आपने पराक्रम सौं,
कुल के कलस पर कीरति चढ़ाई है ॥१४॥

बलवन्तसिंह वर्णनम्[1]

यथा

कवित्त : चहचही चन्द ऐसी चरचि चारु चांदनी सी,
चन्दन सी चँवर सी चारु छबि धारी है।
छीर की सी लहरि छहरि गई छिति छोर,
छीरनिधि छीरहू की छकि छबि हारी है॥
बहबही बास बेस बनक बनाय बनी,
बसत षुसाल बलि पुरहू बिहारी है।

१ राज्य के अधिपति विनयसिंह थे, किन्तु बलवन्तसिंह को तिजारा का राजा घोषित कर दिया गया था—उनका शरीरांत होने पर फिर पूरा राज्य एक हो गया।

छाई सुरलोकनि सुहाई ओक ओक चहूँ,
राजा बलवन्त छाई कीरति तिहारी है ।।१५।।

दोहा : विनयसिंह महाराज नै, कीनी कृपा विचारि ।
सो प्रतापरासो सरस, दीजे सुघर सुधारि ।।१६।।
महाराज बलवन्त हैं, गुरवे गुन गंभीर ।
कही षुसाल दयाल ह्वै, बरनि कहो सुभ वीर ।।१७।।
प्रथम लिषो कागद सुकर, नजवषान नवाब ।
अलवर गढ़ खाली करो, तुव प्रताप महाराज ।।१८।।[1]
निवल जान नवलेस की, लई भूमि सब दाबि ।
जो सबरी यह दीजिये, कागज बांचत आवि[2] ।।१९।।
लयो देस महाराजि को, करयो उपद्रव राज ।
सो सव छांड़ि विचारि कै, करो जुद्ध सुभ साजि ।।२०।।
देषि पत्र बाँच्यो सही, कही जु राजाराव ।
पतिसाहन की फौज सों, मोहि लरन को चाव ।।२१।।
भुजा बलनि अवनी लई, बिगरि जुद्ध नहिं देव ।
निहचै मन में जानियो, यह है मेरे भेव ।।२२।।
गढ लै तुव नवलेस के, रुहलखंड किय जेर ।
ता धोखे मत भूलियो, नेंक न कीजे देर ।।२३।।
कागद लिषि या भाँति सों, दीनो पठै उताल ।
नजवषान बाँच्यो तबै, कीन्हो कोप कराल ।।२४।।
निज मंत्रीन बुलाय कै, करी जु आप सलाह ।
करो तयारी फौज की, सबै सूर नर नाह ।।२५।।
नजवषान नवाब की, चमू चली चतुरंग ।
बाँके बाँके बीर बहु, रंग भरे बहु रंग ।।२६।।
नजवषान आयो सही, दीनो द्वंद मचाय ।
राजाराव प्रताप पै, सीताराम[3] सहाय ।।२७।।

---

१ इस दोहे के दूसरे और चौथे चरणों में तुक नहीं मिलती ।
२ विशेष विवरण 'प्रतापरासो' की टिप्पणियों में देखिये ।
३ जाचीक जीवण तथा षुसाल दोनों ने ही अलवर के इष्टदेव 'सीताराम' का स्मरण कराया है ।

पद्धरी छंद :
मौहौब्रत तनय[1] सुगरुवो विसाल ।
श्री . राजनीति चल जस कि चाल ॥
पंडित प्रवीन जाके सु पौर ।
सरनो जु आय तकि करत गौर ॥२८॥
जुद्ध चाव करि मंडन सुभाव ।
तप तेज सूर विक्रम प्रभाव ॥
जाके प्रमान निज वचन एक ।
हठ करैं बीर छुट्टै न टेक ॥२९॥
नित देत दान दीनन अनेक ।
विक्रम समान जानैं विवेक ॥
भट लसत संग छत्रिय भयान ।
बलवान भूप जु मानैं आन ॥३०॥

छंद भुजंगप्रयात :
तबै राव परताप मंत्री बुलाये ।
करैं जुद्ध जंगी जहाँ जोर छाये ॥
करो मंत भीनो सबै सों नवीनो ।
सजैं तेगधारी महाक्रोध कीनो ॥३१॥

दोहा :
विनयसिंह काका[1] सुमति, लीनें बेग बुलाय ।
गरवो मंत्र विचारवो, सुमन सुषद मति भाय ॥३२॥
नजबषान नवाब नें, कीनों कोप कराल ।
सो सब यही विचारि कै, करो नैन मुष लाल ॥३३॥
नजबषान निहचै धरी, लीहैं किला छुटाय ।
सब मंत्रीन सलाह करि, लरिवो यहै बचाय ॥३४॥

छंद भुजंगप्रयात :
तबै रावराजा सु अंबा[2] बुलायो ।
बड़े तेज सूं आय के सीस नायो ॥
कहो रावराजा हमैं सोइ कीजै ।
यही बात साँची चलो जंग लीजै ॥३५॥
तबै वीर बाँको सुबायू[3] बुलायो ।
धरे रूप भारी महाक्रोध छायो ॥

---
१ रावराजा प्रतापसिंह ।
२-३ विनयसिंह, अंबा, सुवायू आदि के नाम इसी ग्रन्थ में आए हैं।

कही रावराजा करो जंग मांती।
हमें जानियो आप संग साती ॥३६॥

दोहा : दगा दयो रनजीत कों, कही जु राजाराव।
बचन कौल हमसों करौ, तौ सांचो यह भाव ॥३७॥

छंद भुजंगप्रयात : तबै वेलपत्रै सु गोला उठायो।
जबै राव के जीव सांँच आयो ॥
तबै रावराजा सुभाई बुलाये।
नजबषान आवैं सु ऐसे सुनाये ॥३८॥
सबै बीर बाँके यहै जुद्ध चाहैं।
नरूका सबै आजि जंगें सुबाहैं ॥
सुनों राज राजा करैं भूमि माथी।
तहाँ तेग झारैं जहाँ झुंड हाथी ॥३९॥
तबै रामसेवग्ग दीवान आयो।
षजानों सु षोलो महामोद भायो ॥
पुसाली[1] सुरा में यहै बात धारी।
नजबषान आवें परै जंग भारी ॥४०॥
रनै बीर दौला[2] ऐसें कही जू।
नजवषान आयो सुनी कां भई जू ॥
नदैराम[3] जोधा तबै सीस नायो।
सुनैं रावराजा बड़े नौन षायो ॥४१॥
तिलंगी फिरंगी घनैं काट डारो।
नजवषान की फौज में सोर पारो ॥
मनै मोद धारो महा बीर छायो।
गनै नांहि काहू बड़ो मान भायो ॥४२॥

छप्पै : मंगलसिंह[4] सुबोल गरज घन घोर घमंडिये।
लछमनगढ़ होरहो जंग जग में जुझु मंडिये ॥

१-३ षुशालीराम (खुशालीराम), दौलतराम तथा नंदराम—सुप्रसिद्ध हल्दिया वीर।
४ मंगलसिंह की वीरता का वर्णन दोनों काव्य-ग्रंथों में मिलता है।

नजबषान को कोप लोप राखो मन मारिये।
उतरें जहाँ विमान वीर बहु तहाँ हकारिये॥
कबि कहत षुसाल विसाल हैं जोगिनि हर हरषत तवें।
यह जानु राव मन में सुधरु गढ़ न देउँ जीवत कबै॥४३॥

दोहा : नजबषान आयो जबै, तब आयो रनधीर।
विकट कठिन फौजें चलीं, आयो गहल गंभीर॥४४॥
नजबषान नवावजी, चल्यो जुद्ध कों साजि।
बड़े बड़े रन वीर बहु, चले चारु गज बाजि॥४५॥
नगर आय डेरा किये, दीनो जलद बुलाव।
जुलफिकार कों साहिबी, हय हाथी सिरपाव॥४६॥
नजबषान नवाब नैं, कही जु बात सुनाय।
अब प्रताप महाराज सौं, हमसों रारि वनाय॥४७॥
जुलफिकार ऐसे कही, नजबषान नवाब।
देउ मोहि निहचै सही, हाथ हरौली भाव॥४८॥
सुल्याएँ डेरा किये, ठारह किये मुकाम।
विसनसिंह तो ना मिल्यो, पति राषी यह राम॥४९॥
अजबराम ऐसे सुनी, आय मिल्यो कर जोर।
नजबषान नवावजी, कीजे मेरी ओर॥५०॥
मुलक लियो सब छीन कै, एक न छोड्यो रंक।
कामदार यह राज के, नैंक न मानत संक॥५१॥
टोडे के मैदान में, जुरचो चोवटो आय।
रजपूती दावा चुके, विना काल को षाय॥५२॥
लई लीलियें घेर कै, लरे प्रहर द्वै तीन।
समयो बहुरि विचारि कै, मिल्यो आय परवीन॥५३॥
हौसदार सु बुलाय कै, ऐसे कही नवाव।
अलवर गढ़ षाली करो, यह सुनि सांच्यो ज्वाब॥५४॥
हौसदार ऐसे कही, सुनिये बली नवाव।
रजपूतन की कटक में, जुद्धं बड़ो जवाव॥५५॥
अलवर गढ़ तो कठिन अति, विकट पंथ है ठौर।
लछिमनगढ़ तो देषि कै, जब भाषो मुष और॥५६॥

छंद पद्धरी :

यह सुनि नवाब अति कोप कीन।
मन में रिसाय करि धूप लीन ॥
मैं बहुत भूप डारे बिगारि।
सब विकट ठौर किये छार छार ॥५७॥
यह जाट वज्र पर्वत समान।
सो लरैं बीर जाहर जहान ॥
दूजे रुहेल अति गर्ववंत।
करि छार छार कछु रहु न अंत ॥५८॥
यह कौन बात जो अरत राव।
रन माँहि करत मोसौं जबाब ॥
सुनि हौंसदारखां यह सुबात।
जब जुरैं जंग होवैं सुरात ॥५९॥
हौं कहत टेरि राजैं बुलाउ।
मति करैं जुद्ध मोसौं मिलाउ ॥
मन में बिचारि यह लेहु आज।
अब मिलैं राव होवैं सुकाज ॥६०॥
सुनि हौंसदारखां अति प्रवीन।
कर जोरि जुगल यह ज्वाब दीन ॥
वह राव महा बलवन्त भाव।
ताको प्रताप बरनौ न जाव ॥६१॥
अति सूर बीर बहु बल प्रचंड।
वर बानौ न जाय वहु बल उदंड ॥
जो तुम विचारि मन में ठनंत।
जब करौ जुद्ध परि हैं सुतंत ॥६२॥
यह सुनि नवाब बोल्यो सुजान।
तुव जाव बेग अपने मकान ॥
कहियो जवाब सुनि हैं नरेश।
यह मोहि जानु तुव आप देस ॥६३॥
यह हौंसदारखां करि सलाम।
वह चलौ बीर अपने सुधाम ॥

कीन्हौं नवाब मन में विचार।
सब बीर तीर लीनें पुकार ॥६४॥

दोहा : करि सलाह नवाब ने, सब ही कटक बुलाय।
लछिमनगढ़ के खेत में, करौ जुद्ध हुलसाय ॥६५॥

छंद भुजंगी : चले बीर जोधा महाक्रोध छाये।
मनो काम के ब्याल आवैं सुहाये ॥
परी धूम चारौं दिसा भूमि हालें।
मनो सेस के सीस धारैं उछालें ॥६६॥
जरी साँकरें लोह जोसैं बषानी।
नजबषान जंगी अबै रारि ठानी ॥
बड़े बीर जोधा सु बाजे बजाये।
बड़े तोबषाने अगारें चलाये ॥६७॥
तिलंगी चले सीस पै बांधि बानों।
बड़ी पांति सौं आज आवैं सुहानों ॥
चलें कोपि कैं और गोरे फिरंगी।
हजारौं सु तोबैं चढ़ो क्रोध जंगी ॥६८॥
पठानैं रुहेले मुगल्ले चढ़े जू।
लरें फौज मांती हकारें कढ़ैं जू ॥
घने घेरि लीने दिसा के सु नांके।
चहूँ ओर जानें घटासी सु हांकै ॥६९॥

दोहा : लछिमनगढ़ बहु बिकट अति, ताको बहु बिस्तार।
घेरि लियो चहूँ ओर तें, होन लगी अति मार ॥७०॥
ध्यान धरो भगवंत को, भगति करी चित लाय।
श्री प्रताप महाराज बहु, तन मन सुमिरत ताहि ॥७१॥
छाजूराम बिचारि कै, कही सुनी सब कोय।
चित दै भारत कीजिये, दूजे जनम न होय ॥७२॥
फिरि माता जनमें नहीं, सुनौ बीर दे कान।
अब भारथ मांडो सही, तुम्हैं राव की आन ॥७३॥
मंगलसिंह महाराव सौं, कही सु मन हुलसाय।
आज महाभारथ करो, गोविंद होय सहाय ॥७४॥

सलैंवास महाराज के, सबै नवायो सीस।
टूक टूक रन में लरैं, पति रावैं जगदीस ॥७५॥
गढ़तें बाहरि निकसि कैं, जुद्ध करैं बहु भेव।
नवों षंड नामी भये, अत्रकैं यह जस लेव ॥७६॥
यह कहि कै चित धीर धरि, सुमिरत श्री भगवान।
गढ़ तैं बाहर निकसि कैं, करैं खूब घमसान ॥७७॥
जोधा सब बाहर लरैं, करैं षडग की धार।
गढ़ पै तैं गोला परैं, बरषैं मेह अपार ॥७८॥
चलैं तोव च्यारचों दिसा, हलैं भूमि हहराय।
गोला पै गोला परैं, ओरा से बरसाय ॥७९॥

चौपाई : हाल देषि हलकारो गयो। कहौ राव सौं ऐसे भयो ॥
गढ़ है अब अति ही भीर। सुनौ राव गरवे गंभीर ॥८०॥
सुनी राव तब ऐसे कही। मोहि जानियों आयो सही ॥
सब गढ़ में तुव कहियो टेरि। नजबषान कूं लैहौ घेरि ॥८१॥

सोरठा : सुमिरैं श्री महाराजि, राजाराव प्रताप बहु।
लई फौज सुभ साजि, ताको बहु विस्तार कहु ॥८२॥

दोहा : जैसे सावन की घटा, बढ़त जाति चहुँ ओर।
बड़े वीर हुलसे फिरैं, ज्यौं घन गरजैं मोर ॥८३॥
समर भये धाये सकल, बड़े वीर विकराल।
धरैं तेग बषतर जिरह, पहुँचे तह ततकाल ॥८४॥

छंद पद्धरी : चहुँ चले चारू सोहैं गयन्द।
पचरँग निशान राजैं अमन्द ॥
अति रंग रंग वैरष विपंत।
बहु भाँति भाँति बाजे बजंत ॥८५॥
यह चलत तोब पाछैं अपार।
बरनौ न जात दल बहु सुमार ॥
झीने जराव जगमगत जीन।
तीषी तुरंग सुरराज दीन ॥८६॥

जब धरनि अधर पग मग धरंत।
मनु चंचरीट चंचल नचंत ॥
गुन गरब भरे सोहत अनन्त।
जे करत थूंद छिति छिति सुतंत ॥८७॥
अति चलिय पालकी पाँति पाँति।
राजै बिमान सुर भाँति भाँति॥
सब बने साज जिनके अमोल।
तहँ लगे रतन हीरा अमोल ॥८८॥
तहँ तास बादले झलमलाय।
यह बरन कौन सोभा सुहाय॥
धौंसा धुकार धरनी धसंत।
दिगपाल हलत पन्नग फसंत ॥८९॥
नौबत बजाय अति घोर होय।
अर तिजें गेह यह सुनि सुभोय॥
सहनाई बजैं चित चोर लेव।
करवाल सोर मनु जगें देव ॥९०॥
तुरही अवाज जब परत कान।
रन देस बेस सब कहत आन॥
झाझें सु बजैं झनकान होइ।
मन नैक धरै नहि धीर कोइ ॥९१॥
बहु बाजे अरबी तरतराय।
कायर मलीन यह सुर सुनाय॥
सोहत गयंद जगमगत कोर।
गूंजें सवा बहु सकल ओर ॥९२॥
बोलैं नकीब अरु चोबदार।
सब चलो बीर चलिये सभार॥
अति कठिन जुद्ध है सुन सु भाव।
रन माँह धसौ यह कहत राव ॥९३॥

दोहा : राजत अपनी फौज के, सकल तुरंग चहुँ धाव।
सजे सस्त्र रन करन कौं, चले सवारी माँह ॥९४॥

जादौ हाडा धाकरे, और नरूकाकार।
सीर करवार सीसोदिया, कछवाहे परिवार ॥९५॥
षींची बंस पवार बहु, और चँदेले आंन।
फिलो नौतरा गौंड अरु, निरबर के चहुवान ॥९६॥
सबै चले या भाँति सों, करि करि बीर विवेक।
नजबषान कह बात हैं, फूटें कटक अनेक ॥९७॥
सकल साहिबी साथ लै, चढौ राव महाराज।
देषि परें सब जगत कौं, मनौं चढ़ो सुरराज ॥९८॥
डगमगात भुव लोक सब, बड़े दलन के भार।
सूरज नैंक न देषियै, महिमा बड़ी अपार ॥९९॥
मड़कोले वर गाँउ पै, डेरा करि महाराव।
सोर परचो सब जगत में, पहुँची षवरि नवाब ॥१००॥
नजबषान सटपट भयो, आयो राव गंभीर।
मुगलन चिंता बढि गई, कोऊ धरत न धीर ॥१०१॥
लियो कटक सब घेरि कै, लूटन लगे अघाय।
राजा राव प्रताप को जगत रह्यौ जस छाय ॥१०२॥
नजबषान ऐसे कही, अब चेतो सब कोय।
रातिद्योस ठाडे रहो, होनी होइ सो होय ॥१०३॥
गरगज ऊँचो बांधि कें, तोबें दई चढाय।
नजबषान ऐसे कही, जलदी तोब दगाय ॥१०४॥

छंद भुजंगी : परी धूम च्यारौ दिसा बीर धाये।
दुहूं ओर तोवैं अरावे चलाये ॥
हलैं सेस के सीस पानें उछालें।
भई भूमि भारी जहाँ रंड मालें ॥१०५॥
चलें बान पै बान च्यारौं दिसातें।
जमूला जजालें तमंचा उमातें ॥
करें बीर घातें महामोद माते।
चलें तीर तेगा कटारी जनाते ॥१०६॥

दोहा : कटक बीचि निकसैं नहीं, बाहरि निकसैं जोय।
लूटि लेइं मारै तबै, बाहिर निकसै कोय ॥१०७॥

नजबषान फिरि कोपि कै, गढ़ पर कियो उठान।
घाम धूम चहुं ओर तें, लागे बरसन बान ॥१०८॥

करत मार बांकी तबै, मीर मुगल बहु घाय।
तोबन के छर्रा चलैं, ओर जँजीरन लाय ॥१०९॥

घेरि लियो अति विकट गढ़, बड़े बीर सामन्त।
तोबें मारें जेर कैं, कठिन बड़ो बलवन्त ॥११०॥

चहूं ओर सूं दाबि कैं, यह कहि बली नवाब।
लेउ अबै लछिमनगढै, हैं मेरे यह भाव ॥१११॥

सुरंग चलाये बहुत हैं, गुरुजर हैं नहिं एक।
पाछै लै हल्ला करो, मेरे है यह टेक ॥११२॥

कही पुकारि नवाब ने, सुनो राव अरु रंक।
मानो लंका जंग की, दई हुकम को अंक ॥११३॥

चहूं ओर लागनि करी, लपिटैं सब बलबीर।
जैसे माषि मिष्ट पैं, लपिटैं रन पै धीर ॥११४॥

गढ़ पैले गोला परें, ज्यौं बरषत हैं मेह।
मांनस की कह बात को, पंछी पंष न देह ॥११५॥

श्री महाराव प्रताप की, फौज जुरी सँग जाय।
दुंदभि बाजें विजय के, मुगल गये महराय ॥११६॥

मार भई अति कठिन सौं, परी लुथ्य पै लुथ्य।
गजराजन की मुंड कटि, रुंड मुंड है जुथ्थ ॥११७॥

स्रोनित की नदियां उमड़ि, जोगनि हरषि अघाय।
भोजन के लालच तहाँ, गिरघ सकल मडराय ॥११८॥

भई लूटि सब कटक में, जानें सकल जिहांन।
राति द्योस लरिबो रहै, मरिबो निहचै जान ॥११९॥

जुझि गये बहु कटक के, पार न पावैं कोइ।
नजबषान मन में धरी, यह बीती अब जोइ ॥१२०॥

नजबषान मुष जरद हैं, लाल रंग मुष राव।
लछिमनगढ़ तें हटि रह्यौ, जानें जग सब भाव॥१२१॥

कही नवाव पुकारि कै, सुनो मित्र सब कोय।
बरस काल आयो सही, गढ़ न टूटि हैं कोय॥१२२॥

हीये हारि नवाव जी, पटक दये दुहूँ हाथ।
पाग रही या षेत में, काहू दियो न साथ॥१२३॥

लछिमनगढ़ गाढ़ो रह्यो, रही राव की टेक।
नजबषान जीतो नहीं, तामें भई न एक॥१२४॥

पैंज रही परताप की, और हिन्द की लाज।
नजबषान जीत्यो नहीं, जीत्यो श्री महाराज॥१२५॥

राषी रजपूती सकल, नुव प्रताप महाराव।
दै दै दान कवीश्वरन, जाहर जग जस पाव॥१२६॥

कवित्त : राषी रजपूती सब उपमा चढ़ाई कुल,
दै दै दान कबिन जिहान जस करिबौ।
बांके बांके बिकट गढ़ चूरि डारे,
काटि काटि बैरिन कौं आगे पग धरिबौ॥
मुगल पठान सब मींजि कै मरोर डारे,
राम के भरोसै एक काहू सौं न डरिबौ।
आगरे दिली के बीच बिजै राव राजाजी,
हाथिन के दांन पातिसाहिन सौं लरिबौ॥१२७॥

जंग जुरै सामुहैं न आवैं कोऊ जाके,
आगै बिरद बषान करैं कौन बलवान को।
जाहि सुनि भाजैं दल मुगल पठान बीर,
विक्रम अपार रंग सोहत भुजान को॥
कहत पुसाल तैंसे दिल की बलेली ही सौं,
कबिन कौं दान मान सनमान कौं।
कूरम नरेस श्री प्रतापसिंह महाराज,
राषि लीनों करम धरम हिंदुवान को॥१२८॥

दोहा : संवत दस वसु सत बरस चौतिस अब्द प्रमान।
लछमनगढ़ के षेत में भयो जुद्ध बलवान ॥१२६॥

इति श्री श्री श्री श्री श्री महाराव राजा नरूवंस कछवाह कुल भूषण भूषितायाँ प्रतापसिंह विरचितायां लछिमनगढ़ रासो बर्णन समाप्तम् ॥ लिषायतं महाराव राज श्री ५ विनैसिंहजी लिषितं शुभस्थाने अलवरगढ़ मध्ये देवा मिती पोस सुदी ५ संवत् १८७३ शुभम्भवतु। श्री ॥

परिशिष्ट २

शब्दानुक्रमणिका

(१) व्यक्तियों की सूची

(अंक छंद-संख्या के सूचक हैं)

(२) स्थानों की सूची

(२) स्थानों की सूची

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक : पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य

प्रेसों में छप रहे

राजस्थानी-हिन्दी ग्रन्थ

१. गोरा बादल पदमणी चऊपई, कवि हेमरतनकृत, सम्पा०—श्री उदयसिंह भटनागर, एम.ए.

२. राठौड़ांरी वंशावली, सम्पादक—पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य।

३. सचित्र राजस्थानी भाषा साहित्य-ग्रन्थ-सूची,
सम्पादक—पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य।

४. मीरां-बृहत्-पदावली, स्व० पुरोहित हरिनारायणजी विद्याभूषण द्वारा संकलित,
सम्पादक—पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य।

५. राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग ३, सम्पा०—श्री लक्ष्मीनारायण गोस्वामी दीक्षित।

६. पश्चिमी भारत की यात्रा, ले० कर्नल जेम्स टॉड,
हिन्दी अनुवादक और सम्पादक—श्री गोपालनारायण बहुरा, एम०ए०।

७. पृथ्वीराज रासो, महाकवि चन्दवरदाई कृत,
सम्पादक—पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य।

८. सोढ़ायण, महाकवि चिमनजी कविया कृत, सम्पादक—श्री शक्तिदान कविया, एम०ए०।

९. बिन्हैं रासो, कवि महेशदास राव कृत, सम्पादक—श्री सौभाग्यसिंह शेखावत।

१०. पाबूजीरे जुद्धरा छन्द, मेहाजी विठू कृत, सम्पादक—श्री उदैराजजी उज्ज्वल।

११. मुंहता नैणसी री ख्यात, भाग ४, सम्पादक—श्री बदरीप्रसाद साकरिया।

सूचना : पुस्तक-विक्रेताओं को २५% कमीशन दिया जाता है।

अजन्ता प्रिन्टर्स